श्री

भारती-भूषण

अलंकार-शास्त्र का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों
और मननशील विद्वानों के परिशीलनार्थ
अलंकार-विषय का विवेचनापूर्ण

नवीन

हिंदी-अलंकार-ग्रंथ

रचयिता
बीकानेर राज्यांतर्गत रतननगर निवासी
सेठ अर्जुनदास केडिया
(मारवाड़ी अग्रवाल)

प्रकाशक
भारती-भूषण कार्यालय
काशी

प्रथमबार २२००] तुलसी-जयंती १९८७ वि० [मूल्य २) रुपया

५८

मुद्रक
श्री पं० बा० वि० पराड़कर
ज्ञानमंडल यंत्रालय, काशी
[मूल पुस्तक पृष्ठ १ से २८४ तक]
और
बजरंगबली 'विशारद'
श्रीसीताराम प्रेस, विश्वेश्वरगंज, काशी
[शेष पुस्तक]

भारती-भूषण

श्रीभारती

समर्पण

सवैया

कोटिन काव्य कवीस्वर हू किय

दीठ दयामयि मातु ! तिहारिय ।

भूमि-मरुद्भव मूरख मो हिय

काव्य-सुधा बरस्यौ बलिहारिय ॥

दीन्ह सुबर्न तुही तिहिँ तें बिर-

च्यौ यह सोधि सुधारि निहारिय ।

'भारती-भूषन' भेंट करौं करि

भारती ! भूषन याहि बिहारिय ॥

समर्पणकर्ता—

अर्जुनदास केडिया

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

अलंकार-शास्त्र

आज से एक सहस्र वर्ष पूर्व क्षेमेंद्र नाम के उद्भट विद्वान् ने 'कवि-कंठाभरण' नाम का एक ग्रंथ लिखा। इसमें कवित्व-शिक्षा प्राप्त करने के उपाय बताए गए हैं। महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा ने हाल ही में 'कवि-रहस्य' नाम की एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में आपने केवल हिंदी जाननेवालों के लिये क्षेमेंद्रजी के विचारों का स्पष्टीकरण कर दिया है। उक्त पुस्तक के पृष्ठ ६० पर झा महोदय लिखते हैं—

"कवि-कंठाभरण के अनुसार शिक्षा की पाँच कक्षाएँ होती हैं-

(१) "अकवेः कवित्वाप्तिः' कवित्व-शक्ति का यत्किंचित् संपादन।

(२) 'शिक्षाप्राप्त गिरः कवेः' पद-रचना-शक्ति संपादन करने के बाद उसकी पुष्टि करना।

(३) 'चमत्कृतिश्च शिक्षाप्तौ' कविता-चमत्कार।

(४) 'गुणदोषोद्गतिः' काव्य के गुण-दोष का परिज्ञान।

(५) 'परिचयप्राप्ति' शास्त्रों का परिचय।"

इसके आगे झा महोदय ने कवित्व-शिक्षा की इन पाँचों कक्षाओं का विस्तार-पूर्वक उदाहरण-समेत वर्णन किया है। तीसरी कक्षा अर्थात् 'कविता-चत्मकार' के विषय में आपका कथन है—

"इस तरह जो कवि शिक्षित हो चुका उसके काव्य में चमत्कार या रमणीयता परम आवश्यक है। विना रमणीयता के

काव्य में काव्यत्व नहीं आता। पंडितराज जगन्नाथ ने इसीलिये काव्य का लक्षण ही ऐसा किया है—'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' यह रमणीयता इस प्रकार होती है—

(१) अविचारित रमणीय
(२) विचार्यमाण रमणीय
(३) समस्तसूक्तव्यापी
(४) सूक्तैकदेशदृश्य
(५) शब्दगत रमणीयता
(६) अर्थगत रमणीयता
(७) शब्दार्थोभयगत रमणीयता
(८) अलंकारगत रमणीयता
(९) रसगत रमणीयता
(१०) रसालंकारोभयगत रमणीयता"

उपर्युक्त उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि क्षेमेंद्रजी की कवित्व-शिक्षा की तीसरी कक्षा अर्थात् 'कविता-चमत्कार' में 'अलंकार-रमणीयता' का आदरणीय स्थान है। यह अलंकार-रमणीयता अलंकार-शास्त्र के ग्रंथों का परिशीलन करने से प्राप्त हो सकती है। ऐसी दशा में यह स्पष्ट हो जाता है कि कवित्व-शिक्षा के लिये अलंकार-शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। संस्कृत के विद्वान् आचार्यों ने काव्य-शास्त्र का बहुत गंभीर विवेचन किया है। इस विवेचन में अलंकार-शास्त्र का अत्यंत सूक्ष्म और पांडित्यपूर्ण परिचय दिया गया है। काव्य-शास्त्र एवं तदंतर्गत अलंकार-शास्त्र पर संस्कृत के जिन आचार्यों ने प्रकाश डाला है उनमें भरत, व्यास, भोज, आनंदवर्द्धनाचार्य, वामन, रुद्रट, दंडी, वाग्भट, जयदेव, भानुदत्त, मम्मट, शोभाकार, राजानक रुय्यक, अप्पयदीक्षित, विश्वनाथ, गोविंद, हेमाचार्य, विद्यानाथ, विश्वेश्वर, यशस्क, विश्वनाथदेव, केशव और जगन्नाथजी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'साहित्य-दर्पण' में विश्वनाथजी ने अलंकार का जो लक्षण दिया है वह विद्वत्समाज में

अधिक लोक-प्रिय है और मुझे भी अत्यंत उपयुक्त जान पड़ता है। वह लक्षण इस प्रकार है—

"शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥"

शब्दार्थ के ये शोभातिशायी धर्म-अलंकार-कृत्रिम नहीं हैं। कवि की उक्तियों में इनकी आवृत्ति सहज में ही हो जाया करती है। मामूली बोलचाल में भी अलंकारों का प्रयोग आप से आप होता रहता है। प्राचीन आचार्यों ने इन शोभातिशायी धर्मों का विश्लेषण कर डाला है, फिर उनको शृंखलाबद्ध करके उनका वैज्ञानिक विभाजन संपादित करके प्रत्येक विशेष धर्म का नाम कल्पित कर लिया है। इन नामों के अलग-अलग लक्षण निर्धारित किए गए हैं। इन लक्षणों के बनाने में अत्यंत सूक्ष्म बुद्धि का परिचय दिया गया है। लक्षणों के अनुसार उदाहरणों का संकलन किया गया है जिनमें लक्षण-लक्ष्य का सुंदर समन्वय है। अनेक अलंकार स्थूल बुद्धि से देखने पर एक से जान पड़ते हैं; पर जब सूक्ष्म दृष्टि से उनपर विचार किया जाता है तो उनका पार्थक्य स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। आचार्यों ने इन भिन्नता की बारीकियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अलंकार-शास्त्र में इन्हीं सब बातों की चर्चा है। इस शास्त्र के बन जाने के बाद बहुत से नीचे दर्जे के कवियों ने सचमुच अपने काव्यों में ज़बर्दस्ती ला-ला कर अलंकार ठूँसे हैं। ऐसे काव्य कृत्रिम और भद्दे जान पड़ते हैं। पर जिन सत्कवियों ने अलंकारों को अपने काव्य में स्वाभाविक रीति से आने दिया है उनका काव्य उज्वल मणि की तरह जगमगाता है। भारतीय काव्य में अलंकारों का जो प्रमुख स्थान है वह पाश्चात्य काव्य में नहीं है। हमारे यहाँ के सर्व-श्रेष्ठ कवि कालिदास की जब प्रशंसा की जाती है

तब सबसे पहले उनकी उपमालंकार के प्रयोग की सफलता का उल्लेख होता है—उपमा कालिदासस्य—पाश्चात्य समालोचकों को इस प्रकार की प्रशंसा कुछ अखरती है; परंतु अलंकारों की महत्ता मानने को वे विवश हैं। देखिए ऐसे प्रसंग के संबंध में प्रसिद्ध अँगरेज़ समालोचक 'कीथ' क्या कहता है—

"Kalidas's forte is declared to lie in similes and the praise is well deserved. True, the world of India is a different one from the west; the divine mythology and the belief of every day life are far other; but even so the beauty and force of the similes and metaphors must be recognised by any one who appreciates poetry."

हिंदी में आजकल जो दल अलंकारों का विरोधी है वह भी यदि देखेगा तो उसे जान पड़ेगा कि आधुनिक रहस्यवादी अथवा छायावादी कवियों की रचनाओं में भी आप से आप अलंकारों की छाप बैठती रहती है। सर्वथा अलंकार-हीन कविता बना सकना कठिन काम है। कविवर केशवदास ने 'कविप्रिया' में एक छंद दिया है जिसकी बाबत उनका कथन है कि इसमें अलंकार नहीं है; परंतु ध्यान से देखने पर उसमें कई अलंकार साफ़ दिखलाई पड़ते हैं। केशवदासजी ने अलंकार न लाने का उद्योग किया; पर सफल न हो सके। प्राचीन आचार्यों ने अलंकार-शास्त्र की रचना करने में बड़ा परिश्रम किया है। इस परिश्रम का अनुभव वही लोग कर सकते हैं जो अध्यवसाय के साथ इस शास्त्र का अध्ययन करेंगे। जो लोग पहले से ही इसकी अनुपयोगिता मानकर इसकी ओर निगाह भी उठाना नहीं चाहते, मुझे खेद है कि वे इस शास्त्र की व्यापकता और महत्ता का अनुमान नहीं कर सकते हैं। प्राचीन आचार्यों ने जिन अलंकारों के नाम कल्पित किए हैं उनके अतिरिक्त भी नये अलंकारों की सृष्टि की जा सकती है। समय-समय पर होनेवाले परवर्त्ती

आचार्यों ने ऐसा किया भी है। उन्होंने अपने पूर्ववर्त्ती आचार्यों के माने अलंकार-भेदों और उनके लक्षणों का खंडन ही नहीं किया है; वरन् कभी-कभी नये अलंकारों की कल्पना भी की है। आज भी यदि कोई सूक्ष्मदर्शी विद्वान् ऐसा करे तो उसका यह प्रयत्न उपहास्य नहीं माना जा सकता है। यद्यपि ऐसा करने के लिये अत्यंत गंभीर अध्ययन और व्यापक विद्वत्ता की आवश्यकता है। निदान कवित्व-शिक्षा के लिये अलंकार-रमणीयता का ज्ञान आवश्यक है। यह ज्ञान अलंकार-शास्त्र के ग्रंथों के अध्ययन से भली भाँति समझ में आता है। इसलिये अलंकार-शास्त्र कवि के लिये उपयोगी विद्या है। 'कवि-रहस्य' में झा महोदय ने पृष्ठ ५२ पर शायद 'काव्य-मीमांसा' के आधार पर लिखा है—

"काव्य करने के पहले कवि का कर्त्तव्य है, उपयोगी विद्या तथा उपविद्याओं का पढ़ना और अनुशीलन करना। नाम-पारायण, धातु-पारायण, कोश, छंदः शास्त्र, अलंकार-शास्त्र—ये काव्य की उपयोगी विद्याएँ हैं। गीत-वाद्य इत्यादि ६४ कलाएँ 'उपविद्या' हैं। इसके अतिरिक्त सुजनों से सत्कृत कवि की सन्निधि (पास बैठना) देशवार्ता का ज्ञान, विदग्धवाद (चतुर लोगों के साथ बातचीत), लोक-व्यवहार का ज्ञान, विद्वानों की गोष्ठी और प्राचीन काव्य-निबंध—ये काव्य की 'माताएँ' हैं।"

मेरी तुच्छ सम्मति में केवल कवि के ही लिये नहीं; वरन् जो कोई भी काव्य का मर्म समझना चाहता हो उसके लिये भी अलंकार-शास्त्र का ज्ञान आवश्यक प्रतीत होता है।

संस्कृत में अलंकार-शास्त्र का विशद विवेचन देखकर देशी भाषाओं में भी इस शास्त्र की चर्चा फैली और समय-समय पर भिन्न-भिन्न भाषाओं में अलंकार-शास्त्र समझानेवाले ग्रंथ लिखे गए। इनके मूलाधार प्रायः संस्कृत-ग्रंथ ही रहे और इनके द्वारा

अलंकार-शास्त्र के ज्ञान की वृद्धि यद्यपि संस्कृत न जाननेवाली जनता में हुई फिर भी देशी भाषाओं में इस शास्त्र के लिखनेवालों में कोई ऐसा विद्वान् नहीं हुआ जो संस्कृत के अलंकार-शास्त्रज्ञों की विवेचना की अपेक्षा कोई विशेष बात लिख सके; इसलिये अलंकार-शास्त्र का गंभीर अध्ययन संस्कृत के पंडितों के ही आधिपत्य में रहा। 'रस-गंगाधर' के रचयिता पंडितराज जगन्नाथ ने काव्य-शास्त्र की जैसी गहन विवेचना की वैसी उनके बाद संस्कृत के अन्य किसी पंडित से भी नहीं बन पड़ी। कहते हैं हिंदी कविता के प्रसिद्ध आचार्य और 'रस-रहस्य' ग्रंथ के रचयिता कविवर कुलपति मिश्रजी पंडितराज जगन्नाथ के शिष्य थे। ऐसे उद्भट विद्वान के शिष्य होकर भी कुलपतिजी ने हिंदी में अलंकार-शास्त्र पर कोई परम गंभीर विवेचनापूर्ण ग्रंथ नहीं लिखा। यह हिंदी-साहित्य का दुर्भाग्य ही था। फिर भी उनका 'रस-रहस्य' ग्रंथ हिंदी के अन्य बहुत से काव्य-शास्त्रीय ग्रंथों से अच्छा है।

हिंदी में अलंकार-शास्त्र के ग्रंथ

हिंदी के पुराने कवियों ने अलंकार-शास्त्र से संबंध रखनेवाले ग्रंथों की रचना प्रचुर परिमाण में की है। इनमें से कुछ ग्रंथ तो प्रकाशित हो गए हैं; पर अधिकांश अब तक अप्रकाशित हैं। यदि अलंकार-शास्त्र संबंधी सभी ग्रंथ एकत्रित किए जायँ तो उनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँचेगी। हिंदी-साहित्य के इतिहास में ऐसे ग्रंथों का एक विशेष स्थान है। जो लोग हिंदी के पुराने काव्य साहित्य के संरक्षण के पक्षपाती हैं उनका यह पवित्र कर्त्तव्य है कि इन ग्रंथों के नष्ट हो जाने अथवा विस्मृति के गर्भ में विलीन होने के पूर्व ही कम से कम एक सूची बनालें और

प्राप्त ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियों को एक स्थान पर एकत्रित करलें एवं महत्वपूर्ण ग्रंथों के प्रकाशन का कार्य आरंभ कर दें। अनुमान तो यह किया जाता है कि इस समय जितने ग्रंथों का पता है उसके दुगुने ग्रंथ उपेक्षा और असावधानी के कारण नष्ट हो चुके हैं। इस समय के कुछ काव्य-शास्त्र के विद्वानों का कहना है कि इन ग्रंथों के एकत्रित करने में जो परिश्रम और व्यय होगा उससे हिंदी-साहित्य का उपेक्षाकृत उपकार कम होगा क्योंकि एक तो इन ग्रंथों में मौलिकता बहुत कम है दूसरे विषय के प्रतिपादन में कवियों ने सामाजिक सदाचार को उन्नति की ओर अग्रसर न करके उसकी निर्दयता-पूर्वक हत्या की है। यह आक्षेप अलंकारों के उदाहरणों को प्रकट करनेवाले छंदों के प्रति है। लक्षणों के संबंध में भी इन विद्वानों का कहना है कि लक्षण निर्धारित करने में सूक्ष्मदर्शिता का परिचय बहुत कम दिया गया है और अधिकतर लक्षण अपूर्ण, भ्रामक और अशुद्ध हैं, यह भी कहा गया है कि यदि इन ग्रंथों के सहारे कोई अलंकारों का शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो उसे सर्वथा निराश होना पड़ेगा। यदि ये सभी आक्षेप ठीक हों—यद्यपि इनके ठीक माने जाने में बहुत कुछ संदेह है—तो भी काव्य के इतिहास में हमारे आचार्यों का मानसिक विकास कैसा था, इसका पता तो ये ग्रंथ देंगे ही। ऐसी दशा में इनका संरक्षण अनुपयुक्त नहीं कहा जासकता है। हिंदी कविता के पुराने आचार्य विद्वान् थे अथवा मूर्ख इसका निश्चय तभी हो सकता है जब उनके ग्रंथ उपलब्ध हों। इतिहास का काम तो तथ्य का समय के अनुसार वर्णन करना है, फिर चाहे वह हमारे आजकल के विचारों के अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल। हिंदी के जो पुराने अलंकार-संबंधी ग्रंथ मेरे देखने में आए हैं उनके पाठ से तो मेरा

यह विचार है कि आचार्य के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाले हिंदी के अधिकांश पुराने विद्वान् प्रधान रूप से कवि थे और गौण रूप से आचार्य। तत्कालीन साहित्य-समाज अथवा अपने आश्रयदाता राजा के सम्मुख उनका प्रधान लक्ष्य अपनी कवित्व-शक्ति दिखलाने का था। उनको यशस्वी कवि होने में जो आनंद आता था वह अत्यंत सूक्ष्मदर्शी आचार्य होने में नहीं। उन्होंने यह मान सा लिया था कि आचार्यता के ग्रंथ तो संस्कृत में हैं ही उनसे अधिक अब और क्या विवेचन किया जाय। उनके लक्षणों में उन्हीं संस्कृत-लक्षणों की धुँधली छाया पड़कर रह जाती थी, इन लक्षणों की विवेचना करने की प्रवृत्ति उनमें न थी। यही कारण है कि उनके लक्षणों में वह चमत्कार नहीं है जो उनके उदाहरणों में। कई आचार्यों के लक्षणों को देखने से तो ऐसा जान पड़ता है कि वे उनकी रचना हृदय की सच्ची लगन के साथ नहीं कर रहे हैं, वरन् एक बेगार सी भुगत रहे हैं। उनका हृदय लक्ष्य में अपनी कवित्व-प्रतिभा प्रदर्शित करने को छटपटा रहा है; पर लक्षण पहले देना आवश्यक है; इसलिये किसी प्रकार उससे अपना पिंड छुड़ाकर वे आगे बढ़ते हैं। पर यह बात सभी आचार्यों के विषय में नहीं कही जा सकती। कुछ भी हो इस बात से तो कदाचित् कोई भी असहमत न होगा कि जैसे भी हो पुराने हिंदी-कवि-संसार को जैसे आचार्य प्राप्त हुए थे यदि वैसे भी न होते तो हिंदी-साहित्य अलंकार-शास्त्र की चर्चा से बिलकुल कोरा रह जाता। शायद अलंकार-शास्त्र की अपूर्ण विवेचना की अपेक्षा तादृशी विवेचना का सर्वथा अभाव किसी को भी पसंद न पड़े। ऐसी दशा में हिंदी के जिन पुराने आचार्यों ने अलंकार-संबंधी ग्रंथों की रचना की है उनके प्रति कृतज्ञता के भाव प्रकट करने के सिवाय हम और कर ही क्या सकते हैं। एक बात और

है। हिंदी-काव्य-शास्त्र का विकास जिस समय प्रारंभ हुआ उस समय शास्त्रीय विवेचना का काम संस्कृत के प्रकांड पंडितों के हाथ में था। क्या दर्शन, क्या वेदांत, क्या साहित्य सभी शास्त्रों का विवेचन संस्कृत के पंडित लोग करते थे। हिंदी भाषा में लिखना विद्वान् कहला सकने का साधन न था। फिर उसी हिंदी में शास्त्रीय विवेचना तो असंगत बात सी मानी जाती थी। हिंदी के आचार्य संस्कृत के पंडितों के वातावरण में ही पनपे थे। वह वातावरण उनको हिंदी में अलंकार-शास्त्र की विवेचना करने के लिये प्रोत्साहन नहीं प्रदान कर रहा था। उनको साहस न होता था कि संस्कृत के विशाल राज-मार्ग को छोड़कर अलंकार-शास्त्र की विवेचना की गाड़ी हिंदी के किसी निर्जन गलियारे में चलाई जाय। संस्कृत के पंडितों के इस आतंक के कारण भी हिंदी में काव्य-शास्त्र की आलोचना संकुचित दशा में रही। यह ठीक है कि बाद में यह आतंक बहुत कुछ कम हो गया; परंतु फिर तो जो बात चल पड़ी वही बनी रही। उसमें फेर-फार नहीं हुआ।

हिंदी में जिन विद्वानों ने अलंकार-शास्त्र-संबंधी लक्षण-लक्ष्य-समन्वित ग्रंथ बनाए हैं, उनका कुछ परिचय यहाँ पर दिया जाता है। इस परिचय में उन्हीं विद्वानों के ग्रंथ का उल्लेख किया जायगा जिनका उक्त शास्त्र के अध्ययन करनेवालों में विशेष प्रचार रहा है। इन विद्वानों में कुछ तो ऐसे हैं, जिन्होंने संपूर्ण काव्य-शास्त्र पर ग्रंथ लिखे हैं और उन्हीं में अलंकार-शास्त्र भी आ गया है। कुछ ऐसे हैं, जिन्होंने केवल अलंकार-शास्त्र का निरूपण किया है तथा कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने संपूर्ण काव्य-शास्त्र पर भी लक्ष्य-लक्षण ग्रंथ लिखे हैं और अकेले अलंकार-शास्त्र पर भी। कहा जाता है कि पुष्प या पुण्य नाम के एक कवि ने पहले-पहल विक्रम संवत्

७०० के लगभग अलंकार-विषयक एक ग्रंथ की रचना की। खेद है कि यह ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है। मालूम नहीं इस ग्रंथ में केवल अलंकार-शास्त्र ही था अथवा काव्य-शास्त्र के रस, ध्वनि आदि अन्य अंग भी।

महाकवि केशवदास, चिंतामणि, कुलपति, भिखारीदास; सोमनाथ, देव, नाथ, एवं गुरदीनजी ने संपूर्ण काव्य-शास्त्र का विवेचन अपने ग्रंथ में किया है। अलंकार-शास्त्र का निरूपण इन्हीं ग्रंथों के अंतर्गत हो गया है। केशवदास की 'कविप्रिया' में अलंकारों का विशद विवेचन है। चिंतामणिजी ने अपने 'कवि-कुल-कल्पतरु' में अलंकारों पर अच्छा प्रकाश डाला है। 'रस-रहस्य' में कुलपतिजी ने अपने आश्रयदाता महाराजा रामसिंह की प्रशंसा में बहुत से छंद दिए हैं जिनमें अलंकारों का लक्षण-लक्ष्य-समन्वित सुंदर स्पष्टीकरण है। दासजी के 'काव्य-निर्णय' ग्रंथ में अलंकारों का विस्तार-पूर्वक श्रृंखलापूर्ण वर्णन है। सोमनाथजी के 'रस-पीयूष-निधि' में भी अलंकारों का बहुत सरल और सहज बोधगम्य निरूपण है। महाकवि देवजी ने काव्य-शास्त्र पर व्यापक रूप से जो ग्रंथ लिखे हैं, उनमें अलंकारों का भी वर्णन है। देवजी ने 'शब्द-रसायन' में अलंकारों का बहुत प्रौढ़ वर्णन किया है। हिंदी के पुराने आचार्यों में से देवजी ने उपमा का जैसा विस्तृत वर्णन इस ग्रंथ में किया है वैसा शायद हिंदी के अन्य किसी आचार्य ने नहीं किया है। 'भाव-विलास' में भी अलंकारों का वर्णन है; पर वह उतना विशद नहीं। देवजी अलंकारों में 'उपमा' और 'स्वभावोक्ति' को ही मुख्य मानते हैं। श्रीपति तथा देवकीनंदन एवं अन्य कई आचार्यों ने अलंकार-शास्त्र पर अलग भी ग्रंथ लिखे हैं और कविता के सभी अंगों पर लिखे अपने ग्रंथों में भी अलंकार-शास्त्र का सुंदर विवेचन किया है। 'काव्य-

सरोज' अथवा 'श्रीपति-सरोज' में अलंकारों का अलग 'दल' है तथैव 'अलंकार-गंगा' में केवल अलंकारों का ही निरूपण है।

महाराज जसवंतसिंह, मतिराम, भूषण, रसिकसुमति, राजा गुरदत्तसिंह, दलपतिराय, बंसीधर, रघुनाथ, दूलह, शंभुनाथ, ऋषिनाथ, बैरीसाल, दत्त, नाथ, चंदन, रामसिंह, भान, बेनी, बेनीप्रबीन, पद्माकर, ग्वाल, प्रतापसाहि, रामसहाय, शिव, कलानिधि, गोकुलनाथ, सूरति, हरिराम निरंजनी, लेख-राज तथा उत्तमचंद भंडारी आदि अनेक आचार्यों ने अलग-अलग ग्रंथ बनाकर उनमें केवल अलंकारों ही का वर्णन किया है। इनमें मैंने जिन ग्रंथों को देखा है उनमें भाषा-भूषण, ललित-ललाम, अलंकार-चंद्रोदय, अलंकार-रत्नाकर, काव्याभरण, टिकैतराय-प्रकाश, भाषाभरण, पद्माभरण, गंगाभरण तथा कंठाभरण मुख्य हैं। रघुनाथ कवि का 'रसिक-मोहन' ग्रंथ बड़ा सुंदर है। 'अलं-कार-रत्नाकर' भाषा-भूषण की एक प्रकार की टीका है। दूलह का 'कंठाभरण' सचमुच कंठ करने योग्य ग्रंथ है। 'गंगाभरण' ग्रंथ मेरे पितामह लेखराजजी का बनाया हुआ है। इसमें सभी उदा-हरण गंगाजी पर घटाए गए हैं। गोकुलदास कायस्थ-कृत 'दिग्विजय-भूषण' बड़ा ग्रंथ है। इसमें पुराने आचार्यों के उदाह-रण भी संकलित किए गए हैं और व्रज-भाषा-गद्य में उनपर कुछ विवेचना भी की गई है। 'जसवंत-जसोभूषण' के रचयिता कवि-राजा मुरारिदानजी हैं। यह बहुत बड़ा ग्रंथ है। मुरारिदानजी ने अलंकारों के नामों को ही उनका लक्षण माना है। यही इस ग्रंथ की विशेषता है। नाम में ही लक्षण की कल्पना करने से खींचा-तानी का बहुत कुछ आश्रय लेना पड़ा है और ऐसे उद्योग में सर्वत्र सफलता भी नहीं हुई है। 'जसवंत-जसोभूषण' अलंकार-शास्त्र का आधुनिक ग्रंथ है और इसके रचयिता की इसके द्वारा

ख्याति भी हुई है और द्रव्य-लाभ भी। सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार का 'अलंकार-प्रकाश' ग्रंथ विद्वत्तापूर्ण है। हिंदी में संस्कृत-आचार्यों की विवेचना को भलीभाँति समझाने का सबसे पहले सेठजी ने ही प्रयत्न किया है। हाल में सेठजी ने 'काव्य-कल्पद्रुम' नाम का एक ग्रंथ लिखा है और 'अलंकार-प्रकाश' को उसी का अंग बना दिया है। जगन्नाथप्रसाद भानु ने अपने 'काव्य-प्रभाकर' ग्रंथ में अलंकारों के समझाने का अच्छा उद्योग किया है यद्यपि इनका अलंकार-विवेचना का ढंग 'अलंकार-प्रकाश' से बहुत कुछ मिलता है। श्रीयुत लाला भगवानदीन-रचित 'अलंकार-मंजूषा' भी अच्छा ग्रंथ है। पं० रामशंकरजी शुक्ल 'रसाल' ने 'अलंकार-पीयूष' नामक एक ग्रंथ गत वर्ष प्रकाशित किया है। अलंकार-शास्त्र पर अँगरेज़ी ढंग से जैसी समालोचनाएँ लिखी जाती हैं 'अलंकार-पीयूष' उसी का एक नमूना है। हिंदी में अपने ढंग की यह अनूठी पुस्तक है। कुछ विद्वानों ने इसमें प्रकट की गई बातों का खंडन भी किया है; पर इसमें संदेह नहीं कि इस ग्रंथ में जितने विस्तार के साथ अलंकार-शास्त्र के ऐतिहासिक विकास पर विचार किया गया है, उतना हिंदी के अन्य किसी ग्रंथ में नहीं है।

जहाँ हिंदी के पुराने आचार्यों का प्रधान लक्ष्य अलंकारों के उदाहरणों में अपनी कवित्व-शक्ति दिखलाने का था, वहाँ आजकल अलंकारों के लक्षणों को विस्तार के साथ समझाने और उनकी बारीकियों को दिखलाने की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। यह काम अधिकतर अलंकार-शास्त्र पर लिखे गए संस्कृत-ग्रंथों के आधार पर हो रहा है। अलंकार-शास्त्र की ऐतिहासिक विवेचना का मूलाधार उक्त शास्त्र पर लिखी गई अँगरेज़ी की आलोचनाएँ हैं। हमको इस बात के मानने में कुछ

भी संकोच नहीं है कि इस समय पहले की अपेक्षा हिंदी में अलंकार-शास्त्र का अध्ययन गंभीरता के साथ हो रहा है। संस्कृत के अलंकार-शास्त्र के कई ग्रंथों के हिंदी अनुवाद भी हो गए हैं इससे केवल हिंदी जाननेवाले विद्यार्थियों को बड़ा सुभीता हो गया है। पं० शालग्रामजी शास्त्री ने 'साहित्य-दर्पण' पर हिंदी में 'विमला' टीका लिखी है। 'दर्पण' में अलंकार-शास्त्र का अच्छा विवेचन है। जयदेवजी के 'चंद्रालोक' का श्रीब्रजजीवन-दासजी ने अच्छा अनुवाद किया है। 'काव्य-कल्पद्रुम' में 'काव्य-प्रकाश' से बहुत कुछ सहायता ली गई है। हिंदी के पुराने कवि ऋषिनाथ ने 'काव्य-प्रकाश' का अनुवाद किया था। उनका वह ग्रंथ अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है। यदि भली भाँति संपादन कराके उसका प्रकाशन किया जाय तो उससे हिंदी-साहित्य का बड़ा उपकार हो।

इस प्रकार जहाँ एक ओर हिंदी के काव्य-संसार में अलंकार-शास्त्र के गंभीरता-पूर्वक अध्ययन का प्रयत्न हो रहा है वहाँ दूसरी ओर हिंदी के कवि-समाज में एक दल अलंकार-शास्त्र के सर्वथा विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है। वह काव्य में अलंकार-शास्त्र के महत्त्व को मानने से इनकार करता है। अलंकार-प्रधान कविता को वह अत्यंत निम्न कोटि की कविता मानता है। यद्यपि प्राचीन समय में भी रस-प्रधान और अलंकार-प्रधान कविता को लेकर वाद-विवाद होते थे; पर अलंकार-प्रधान कविता की सार-हीनता उस समय इतने जोरों के साथ नहीं घोषित की जाती थी। पर आज तो कवियों का एक समुदाय अलंकारों के नाम से भी चिढ़ता है। इस दल के कुछ कवि तो सचमुच विद्वान् हैं और अलंकारों को हृदय-स्पर्शिनी कविता का घातक समझकर उनका विरोध करते हैं; पर कुछ कवि ऐसे हैं

जो अविद्वान् हैं और शास्त्र के अध्ययन में अपने को असमर्थ पाकर उक्त शास्त्र की महत्ता ही अस्वीकार करते हैं।

हिंदी के अलंकार-शास्त्र-संबंधी ग्रंथों का ऊपर जो संक्षिप्त परिचय दिया गया है उससे यह बात प्रकट है कि हमारी हिंदी भाषा में इस विषय के ग्रंथों की कमी नहीं है, फिर भी शास्त्रीय ढंग से अलंकारों के लक्षण देनेवाले एवं उन लक्षणों का उदाहरणों में स्पष्ट समन्वय दिखलानेवाले अलंकार-ग्रंथ हिंदी में अब भी बहुत थोड़े हैं। पुराने अलंकार-ग्रंथों में लक्षण प्रायः पद्य में दिए गए हैं, जिससे उनमें स्पष्टता का अभाव है। जिन दो-एक आधुनिक ग्रंथों में लक्षण गद्य में दिए गए हैं उनमें लक्षणों के साथ उदाहरणों का समन्वय भली भाँति नहीं दिखाया गया। उदाहरणों में यह त्रुटि दृष्टगत होती है कि एक तो उनकी संख्या कम है। दूसरे वे प्रायः संस्कृत-पद्यों के अनुवाद हैं। अनुवाद होने के कारण ऐसे बहुत से पद्यों में मूल की सरसता न्यून मात्रा में दिखलाई पड़ती है। इसी कमी को पूरी करने के लिये श्रीयुत सेठ अर्जुनदासजी केडिया ने इस 'भारती-भूषण' ग्रंथ की रचना की है। मेरे ख़याल से केडियाजी को इस ग्रंथ के बनाने में अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। मेरा विश्वास है हिंदी-अलंकार-शास्त्र के जिज्ञासु इस ग्रंथ से बहुत लाभ उठावेंगे।

ग्रंथकर्ता का परिचय

यहाँ पर 'भारती-भूषण' के रचयिता श्रीअर्जुनदासजी केडिया का भी संक्षिप्त परिचय दे देना आवश्यक प्रतीत होता है।

राजपूताना की प्रसिद्ध रियासत जयपुर में 'महनसर' नामक एक गाँव है। इसी गाँव में संवत् १९१४ में श्रीअर्जुनदासजी

केडिया का जन्म हुआ था। ये जाति के अग्रवाल वैश्य हैं। इनके पितामह सेठ नंदरामजी का बड़ा नाम था। उन्होंने सं० १९१७ में बीकानेर राज के अन्तर्गत 'रतननगर' नाम का एक शहर बसाया। यह शहर बड़ा ही भव्य है और अब भी मौजूद है। सारे भारतवर्ष में और विशेष करके बीकानेर के राज-दरबार में एवं मारवाड़ी-समाज में सेठ नंदरामजी की बड़ी प्रतिष्ठा थी। इन्होंने पंजाब में अँगरेज़ सरकार से फिरोज़पुर के पास दो गाँव ख़रीदे। यह भू-संपत्ति इनके वंशजों के पास अब भी है। श्रीअर्जुनदासजी केडिया का बाल्यकाल 'रतननगर' में ही व्यतीत हुआ। इनको अक्षर-ज्ञान श्रीसूर्यमल्लजी जालान ने कराया। इनके काव्य-गुरु बारहठ जाति के प्रसिद्ध कवि स्वामी गणेशपुरीजी थे। फिर भी इन्होंने अधिकतर ज्ञानोपार्जन स्वयं पुस्तकों का अवलोकन करके प्राप्त किया। संस्कृत, फ़ारसी, गुजराती, गुरुमुखी, उर्दू एवं हिंदी का इनको अच्छा ज्ञान है। अँगरेज़ी में भी आपकी गति है। आप पुराने ढंग के आस्तिक हिंदू हैं। व्यापार आदि में अच्छी सफलता प्राप्त करने के बाद इस समय आप काशी-सेवन कर रहे हैं। वहाँ इनका सारा समय विद्या-व्यसन और भगवद्भजन में व्यतीत होता है। कविता पर आपका बड़ा अनुराग है। मारवाड़ी जाति में आपका आदर और ख्याति है। पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने मार्च सन् १९३० की 'सरस्वती' में केडियाजी की विस्तृत जीवनी प्रकाशित की है।

केडियाजी कवि भी हैं और काव्य-कला के पारखी भी। इसके अतिरिक्त संगीत आदि अन्य कई कलाओं एवं ज्योतिष और वैद्यक आदि विषयों का भी आपको ज्ञान है। इन्होंने अपनी कविताओं का संग्रह 'काव्य-कलानिधि' नाम से तैयार किया है। यह तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग का नाम 'रसिक-

रंजन' है इसमें शृंगार रस की कविताएँ हैं। दूसरे भाग का नाम 'नीति-नवनीत' है इसमें नीति-संबंधी पद्य हैं। तीसरे भाग का नाम 'वैराग्य-वैभव' है इसमें भक्ति-वैराग्य-संबंधी रचना है। केडियाजी सत्कवि हैं, इनका यह ग्रंथ भी शीघ्र प्रकाशित होगा। प्रस्तुत 'भारती-भूषण' ग्रंथ में अलंकार-शास्त्र का विवेचन है। इसके देखने से केडियाजी की अलंकार-मर्मज्ञता का परिचय मिलता है। केडियाजी सुखी गृहस्थ हैं। इनके दो पुत्र हैं। बड़े पुत्र का नाम शिवकुमारजी है। आप बड़े ही मिलनसार और कविता-प्रेमी हैं। आप भी कवि हैं। आप ही के आग्रह और स्नेह से प्रेरित होकर मुझे 'भारती-भूषण' की भूमिका लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

भारती-भूषण

'भारती-भूषण' ३८३ पृष्ठों का एक बड़ा ग्रंथ है। जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ इसमें अलंकार-विषय का प्रतिपादन बड़े अच्छे ढंग से हुआ है। इसकी शैली प्राचीनता की परिपाटी में बँधी हुई है। आजकल अंगरेज़ी ढंग से पुस्तकों को आकर्षक बनाने का जो उद्योग किया जाता है, वह इसमें बहुत कम है। अलंकार-शास्त्र में विवाद की बहुत बड़ी गुंजाइश है। एक साधारण से लक्षण को लेकर अलंकार-शास्त्र के विद्वान् गंभीर शास्त्रार्थ उपस्थित कर सकते हैं। उदाहरणों में तो इस विवाद का अवसर पद-पद पर है। जिस उदाहरण में एक शास्त्रज्ञ एक अलंकार बतलाता है उसी में दूसरे को दूसरे अलंकार की सत्ता प्रतीत हो सकती है। इस प्रकार का मतभेद स्वाभाविक है और ऐसे मतभेदों को लेकर विवेचन-कार्य होने से ही अलंकार-शास्त्र प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ है। केडियाजी के इस ग्रंथ में ऐसे बीसों स्थल

उपलब्ध हो सकते हैं, जहाँ पर शास्त्रार्थ का पूरा मौक़ा है, यह भी असंभव नहीं है कि आलोचक महोदयों को कहीं-कहीं पर केडियाजी का मत भ्रांत स्थापित करने में सफलता भी प्राप्त हो। अलंकार-शास्त्र ही ऐसा है जिसमें उक्त शास्त्र के विशेषज्ञों को ऐसी सुविधाएँ बराबर मिल सकती हैं; पर इतनी बात मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि केडियाजी ने अलंकारों और उनके लक्षणों को सरल, स्पष्ट और अविवादास्पद बनाने में कोई बात नहीं उठा रखी है।

प्रस्तुत पुस्तक 'भारती-भूषण' में इस विषय की अन्य पुस्तकों की अपेक्षा कौन-कौनसी विशेषताएँ हैं यह जान लेना भी आवश्यक है। स्वयं लेखक महोदय ने इस संबंध में मुझे अपने विचार दिए हैं। पुस्तक को ध्यान-पूर्वक देखने से लेखक के निम्न लिखित विचार यथार्थ जान पड़ते हैं—

(१) जिन अलंकारों के कई भेद हैं उन अलंकारों में से बहुत कम ऐसे हैं जिनके मूल लक्षण अन्य ग्रंथों में मिलते हों। वहाँ पर भेदों के ही भिन्न-भिन्न लक्षण लिखे हुए हैं; किंतु इस ग्रंथ में ऐसे सभी अलंकारों के मूल लक्षण इस ढंग से अनुस्यूत करके लिख दिए हैं कि उनके जितने भेद हैं उन सबमें वे घटित हो जायँ। नमूने के तौर पर निदर्शना, पर्यायोक्ति, विभावना, विशेष, पर्याय उदात्त, हेतु आदि देखे जा सकते हैं।

(२) अधिकांश भाषा-अलंकार-ग्रंथों के उदाहरण चंद्रालोक, कुवलयानंद आदि के संस्कृत-उदाहरणों के अनुवादित रूप ही पाए जाते हैं, किंतु प्रकृत पुस्तक के उदाहरणों में न तो अन्य कवियों द्वारा अनुवादित पद्यों को स्थान दिया गया है और न स्वयं ग्रंथकार ने किसी का अनुवाद किया है।

(३) इस समय के प्रचलित दो ग्रंथ अलंकार-प्रकाश और

अलंकार-मंजूषा (चतुर्थावृत्ति) हैं जिनका कोई उदाहरण इसमें नहीं दिया गया है। उक्त ग्रंथों से उदाहरण न लेने से लेखक को बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा क्योंकि हिंदी-साहित्य में से चुनकर अच्छे-अच्छे उदाहरण उनमें पहले से ही दिए जा चुके हैं फिर भी "जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ" के अनुसार इसमें भी उत्तमोत्तम और नवीन उदाहरण पाठकों को मिलेंगे।

(४) अन्य ग्रंथों में प्रायः वक्रोक्ति, श्लेष, विवृतोक्ति आदि कठिन अलंकारों के उदाहरण एक-एक ही मिलते हैं; वरन् सरल अलंकारों में भी कहीं-कहीं एक से ही काम चलाया गया है; परंतु केवल एक उदाहरण से विद्यार्थी को न तो संतोष ही होता है और न अलंकार ही भली भाँति हृदयंगम हो पाता है; इसलिये इसमें प्रत्येक भेदोपभेदों तक में कम से कम दो उदाहरण तो (अनिवार्य नियम से) अवश्य मिलेंगे। अन्यथा प्रायः भेदों में तो तीन-चार तक दिए गए हैं। कुछ भेद ऐसे भी हैं जिनमें इससे भी अधिक हैं; किंतु इतनी अधिक संख्या में भी उदाहरण नहीं दिए गए हैं जिससे गड़बड़ी होने की संभावना हो जाय।

(५) अलंकार के लक्षण से उदाहरण का मिलान स्पष्ट कर देने से उदाहरण के ठीक-ठीक घटित होने का निश्चय हो जाता है और अलंकार की सूक्ष्मता भी पाठकों की समझ में भली भाँति आ जाती है। इसीलिए संस्कृत-ग्रंथों में समन्वय (मिलान) सविस्तर देखे जाते हैं। किंतु भाषा-ग्रंथों में से 'अलंकार-प्रकाश' में तो इस बात पर कुछ ध्यान रखा गया है, अन्य ग्रंथों में नहीं। 'भारती-भूषण' में प्रत्येक उदाहरण की स्पष्ट व्याख्या की गई है। एक ही भेद के कई प्रकार के उदाहरण

होते हैं। यदि उनकी व्याख्या न की जाय तो उनमें किस प्रकार वह अलंकार किस स्थल पर है, इस बात का पूरा पता नहीं लग सकता; और यदि उस लक्षण से वह उदाहरण नहीं मिलता या कम मिलता है तो उसका पता भी व्याख्या करने से चल जाता है।

(६) अलंकारों के लक्षण, मिलान, सूचनाएँ आदि इस ग्रंथ में यथासाध्य सरल भाषा में लिखे गए हैं। लच्छेदार शब्दावली बनाकर क्लिष्टता नहीं आने दी गई है। भाषा में सीधापन है, कदाचित् इससे रोचकता कम मिले; किंतु यह लक्षण-ग्रंथ है, इसमें उपन्यासों की भाषा रखने से ग्रंथ का गौरव बढ़ने की अपेक्षा कम ही होता।

(७) मिलते-जुलते अलंकारों की भिन्नता-बोधक सूचनाएँ अधिक संख्या में विस्तार-पूर्वक लिखी गई हैं। इन सबकी सूची भी परिशिष्ट में दे दी गई है।

(८) आज-कल ग्रंथों के मुद्रण में प्रायः एक-एक अक्षर और पंक्ति का संकोच किया जाता है। इसमें वैसा नहीं किया गया। छपाई बहुत स्पष्ट और कई प्रकार के टाइपों में बड़े परिश्रम से कराई गई है।

(९) इसमें पूरे ७५० उदाहरण दिए गए हैं; जिनमें ३७५ स्वयं लेखक के निर्माण किए हुए हैं जो प्रत्येक भेदोपभेद में नियमित रूप से दिए गए हैं, शेष ३७५ उदाहरण अन्य प्राचीन-अर्वाचीन उत्तमोत्तम कवियों के हैं जो बहुत अधिक परिश्रम से खोज करके दिए गए हैं। इनमें लगभग १२५ कवियों की कविताएँ देखने को मिलेंगी। इनसे पाठकों को 'एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा' के न्यायानुसार संग्रह-ग्रंथ का भी आनंद प्राप्त होता रहेगा।

इन कविताओं की सूची पुस्तक के अंत में दी गई है। वर्तमान कवियों के नये उदाहरण ढूँढ़कर दिए गए हैं। इन ७५० उदाहरणों में प्राय: सभी विषयों की कविताएँ आ गई हैं। इसके अतिरिक्त लक्षण, मिलान, सूचनाओं और टिप्पणियों में प्रमाण-स्वरूप दिए हुए और भी बहुत से पद्य हैं।

(१०) बहुत सी खोजपूर्ण नई बातें इस ग्रंथ में बड़े परिश्रम से लिखी गई हैं और उनके संबंध में काशी के बड़े-बड़े विद्वानों से भी परामर्श किया गया है। ये बातें बहुत उपयोगी हैं। ये प्राय: टिप्पणियों और सूचनाओं में लिखी गई हैं। इनका कुछ ब्यौरा इस प्रकार है—

१	पृष्ठ	८	टिप्पणी नंबर १
२	"	१४	सूचना
३	"	१५	विशेष सूचना
४	"	२१	सूचना
५	"	६४	सूचना
६	"	१२४	टिप्पणी नं० १
७	"	१३५	सूचना
८	"	१३७	सूचना
९	"	१३७	विशेष सूचना
१०	"	१५५	सूचना नं० २
११	"	१८९	विशेष सूचना
१२	"	२०२	सूचना नं० १
१३	"	२१२	टिप्पणी नं० २
१४	"	२६६	सूचना नं० १
१५	"	३२२	सूचना नं० १

१६ पृष्ठ ३८० सूचना
१७ " ३८२ अलंकारों के विषय *

अंत में मुझे यही कहना है कि 'भारती-भूषण' अलंकार-शास्त्र का हिंदी में एक अनूठा ग्रंथ है। मेरा विश्वास है कि हिंदी-जगत्

---

* 'भारती-भूषण' की जिन १० विशेषताओं का उल्लेख पंडितवर श्रीकृष्णविहारीजी मिश्र महोदय ने ऊपर किया है, उनमें जो जो नियम बतलाए गए हैं, वे सब यथार्थ हैं। उनके पालन की ओर हमने पूरा ध्यान रखा है। फिर भी विशेषता नंबर २ और ३ (जो भूमिका के पृष्ठ १७ में दी गई हैं) के विषय में हम यह निवेदन कर देना आवश्यक समझते हैं कि यदि उनमें लिखे हुए नियमों का पालन करने में कहीं भूल हो गई हो तो पाठकगण हमें उसकी सूचना देकर उपकृत करेंगे और उसके लिये क्षमा करेंगे।

"अलंकारों के विषय" के संबंध में भी हम एक निवेदन कर देना चाहते हैं। पृष्ठ ३८२ और ३८३ में २७ अलंकारों के विषय लिखे गए हैं। इनमें से अधिकांश 'अलंकार-आशय' नामक ग्रंथ के आधार पर लिखे गए हैं। इस ग्रंथ को श्रीउत्तमचंद भंडारी नामक उत्कट विद्वान् ने बहुत ही परिश्रम-पूर्वक लिखा है। इसमें देश का नाम मुरधर (मरुस्थल), राजा का नाम भीमसिंह और ग्रंथ-निर्माण-समय विक्रमीय संवत् १८५७ विजयादशमी दिया हुआ है। इसमें १२८ अलंकारों का निरूपण है और सुंदर-सुंदर उदाहरणों का संग्रह अत्यंत ध्यान-पूर्वक किया गया है। मिलते-जुलते अलंकारों की भिन्नताएँ भी प्रचुर परिमाण में लिखी हुई हैं। इसकी एक हस्तलिखित प्रति हमारे पास है। हमारी यह धारणा है कि यदि यह ग्रंथ सुचारु रूप से प्रकाशित किया जाय तो साहित्य-संसार के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध होगा।

—ग्रंथकर्ता।

में इसका यथेष्ट आदर होगा। केडियाजी की यह इच्छा थी कि मैं इसकी एक बृहत् भूमिका लिखूँ। एक तो अलंकार-शास्त्र का मैं विशेषज्ञ नहीं हूँ; दूसरे मेरे पास समय का अभाव भी था; इस कारण केडियाजी की इस इच्छा का पूर्ण रूप से पालन करने में मैं असमर्थ रहा; इसका मुझे बड़ा खेद है। यदि ईश्वर की कृपा से 'भारती-भूषण' का यह प्रथम संस्करण शीघ्र समाप्त हो गया, जिसकी मुझे दृढ़ आशा है, तो इसके दूसरे संस्करण में मैं अपने विचार अधिक विस्तार के साथ लिखने की चेष्टा करूँगा।

लखनऊ
वैशाख कृष्णा सोमवती अमावस्या
संवत् १९८७

कृष्णविहारी मिश्र।

श्रीहरिः

ग्रंथकार का वक्तव्य
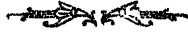
बेद-बदनि बिधि-बदन बसि, बिघन-बिनासन बान ।
बंदौं बानि बिनायकहु, बितरहु बुद्धि-बिधान ॥

काव्य और साहित्य

'काव्य' और 'साहित्य' इन दोनों शब्दों का प्रयोग शास्त्रों में भी होता है और व्यवहार में भी। कुछ लोग इन दोनों शब्दों को पर्याय-वाचक समझते हैं; किंतु शास्त्रकारों का यह मत नहीं है। पर्याय-वाचक शब्दों का वह मुख्य धर्म एक ही हुआ करता है जिसे शास्त्रकारों ने 'शक्यतावच्छेदक धर्म' कहा है। जैसे 'घट' और 'कलश' ये दोनों पर्याय-वाची शब्द हैं, क्योंकि इनका मुख्य धर्म 'घटत्व' एक ही है। पर उक्त 'काव्य' और 'साहित्य' इन दोनों शब्दों के शक्यतावच्छेदक धर्म पृथक्-पृथक् हैं। 'काव्य' का शक्यतावच्छेदक धर्म "लोकोत्तर-वर्णना-निपुण कवि-कर्मत्व' कहा गया है। इस धर्म में 'कवि-कर्म' के दो विशेषण दिए गए हैं—एक है 'निपुण' और दूसरा 'लोकोत्तर-वर्णना'। 'निपुण' विशेषण इसलिये रखा गया है कि कवि-कर्म भोजनादि भी हो सकते हैं; किंतु उन्हें 'काव्य' नहीं कहा जा सकता। परंतु यह 'निपुण' विशेषण रखने पर भी कवि का वास्तविक कर्म प्रकट नहीं होता, जो अभीष्ट है। उससे कवि के और-और कर्मों की ओर भी ध्यान जा सकता है; अतः 'वर्णना' शब्द उसके

साथ रखा गया है। परंतु इतने पर भी वह आपत्ति ज्यों की त्यों बनी रही जो पहले केवल 'निपुण' विशेषण रखने पर हो सकती थी। अर्थात् अतिव्याप्ति बनी ही रही, जो इतिहासादि में भी हो जाती है। अतः उक्त वर्णना के साथ 'लोकोत्तर' विशेषण का संयोग किया गया है। यहाँ लोकोत्तर वर्णना रूपी निपुण कवि-कर्म का संबंध विवक्षित है। 'साहित्य' शब्द का शक्यतावच्छेदक धर्म 'तादृश-काव्य-परिष्कारकत्व' होता है। इस धर्म में आए हुए 'तादृश-काव्य' का विवरण तो ऊपर दिया जा चुका है, अब रहा उसका 'परिष्कारकत्व'। यदि इसका तात्पर्य केवल दोषों का दूरीकरण हो तो कवि-संप्रदाय से विरोध होता है; यदि 'गुणों का दिग्दर्शन कराना' कहा जाय तो आलंकारिक सिद्धांत के विरुद्ध होगा; और यदि 'रस का प्रतिपादन करना' अभीष्ट हो तो यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि प्रकारांतर से 'काव्य' में ही यह बात आ गई है। सुतरां यहाँ 'उक्त काव्य के संपूर्ण लक्षणों का प्रतिपादन करना' अभिप्रेत है। इस प्रकार 'काव्य' और 'साहित्य' के स्वरूपों का स्पष्टीकरण हो गया; और सिद्ध हो गया कि 'काव्य' तथा 'साहित्य' दोनों एक नहीं हो सकते।

काव्य का महत्व

काव्य वास्तव में मानव-जीवन, मानव-अनुभूतियों और मानव-अंतर्वृत्तियों का विशद चित्र है। यही कारण है कि काव्य अजर और अमर है। काव्य का प्रकाश मानव-जीवन के प्रायः साथ ही साथ हुआ है और वह तबतक देदीप्यमान रहेगा जबतक इस विशाल ब्रह्मांड में मनुष्य का अस्तित्व है। केवल मानव-जीवन के साथ ही नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि के साथ काव्य का इतना घनिष्ट संबंध है कि उसका स्रष्टा ईश्वर तक 'कवि' कहा

गया है; श्रुतियों एवं शास्त्रों ने एक स्वर से ईश्वर को 'कवि' की उपाधि से उद्घोषित एवं विभूषित किया है। यथा—

"कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः"

—यजुःसंहिता (अध्याय ४०)।

"कविम्पुराणमनुशासितारम्"

—श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय ८)।

"वेदाङ्गो वेदवित्कविः"

—महाभारत (अनुशासन पर्व)।

जब स्वयं परब्रह्म परमात्मा के लिये 'कवि' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो इससे स्पष्ट सिद्ध है कि 'कवि' एक असाधारण तथा अत्युत्कृष्ट उपाधि है, और इसी लिये उसकी कृति 'काव्य' भी सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। जिस प्रकार ईश्वर को 'कवि' कहा गया है, उसी कार उसकी रची यह सृष्टि भी 'काव्य' कही जा सकती है। यदि हम 'काव्य' को उसके परम व्यापक अर्थ में लें तो कह सकते हैं कि मनुष्य को काव्य के ही द्वारा समस्त जड़ और चेतन पदार्थों का ज्ञान हुआ है, होता है और होगा। पृथ्वी आदि प्रत्यक्ष दृश्य पदार्थों का परिज्ञान भी पहले-पहल इसी के द्वारा हुआ है। इसके अभाव में संसार के संपूर्ण पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय और गुण, कर्म, स्वभावों का वास्तविक स्वरूप समझना असंभव ही था।

काव्य का मुख्य विषय जीवन तथा सृष्टि की व्याख्या करना है। काव्य जैसा रमणीय एवं अलौकिक आह्लादकारक है, वैसा ही जटिल एवं क्लिष्ट भी है। यही कारण है कि प्राचीन से प्राचीन दिव्यदर्शी काव्याचार्यों ने भी अपने को इसका सांगोपांग मर्मज्ञ तथा यथार्थवेत्ता नहीं माना। काव्य का [illegible] भी अनिर्व-

चनीय और अत्यंत दुर्लभ है। अन्यान्य शास्त्रों का सम्यक् एवं समुचित ज्ञान प्राय: काव्य के ज्ञान पर ही निर्भर रहता है; अत: सभी शास्त्रों के परिशीलन करनेवालों को इसका अवलंब अवश्य लेना पड़ता है; और जो लोग काव्य का ठीक-ठीक उद्देश्य तथा तथ्य नहीं समझते, उनका और सब प्रकार का ज्ञान एकांगी तथा अधूरा होता है। जीवन का जो प्रधान सौंदर्य सरसता या सहृदयता है, वह केवल काव्य के द्वारा ही प्राप्त होता है।

काव्य में अलंकारों का आदरणीय स्थान

काव्य के भेदों की संख्या के विषय में आचार्यों में मतभेद है। रस-गंगाधरकार पंडितराज जगन्नाथ त्रिशूली ने काव्य के चार भेद—ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य, शब्द-चित्र (शब्दालंकार) और अर्थ-चित्र (अर्थालंकार)—माने हैं। काव्य-प्रकाशकार श्रीमम्मटाचार्य आदि ने ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य और चित्र (अलंकार) तीन भेद लिखे हैं। ध्वन्यालोककार श्रीमदानंदवर्द्धनाचार्य आदि ने गुणीभूत व्यंग्य को व्यंग्य में अंतर्भूत करके व्यंग्य और वाच्य (अलंकार) दो ही भेद माने हैं। किंतु इन तीनों मतों का तात्पर्य एक ही है।

यद्यपि मम्मटाचार्य ने काव्य के उक्त तीन भेद मानते हुए "शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यङ्ग्यं त्ववरं स्मृतम्" वाक्य में अलंकार को अवर (नीची श्रेणी का) कह डाला है, तथापि राजानक रुय्यक ने अपने 'अलंकार-सर्वस्व' में दंडी, रुद्रट और वामन आदि प्राचीन आचार्यों के मत का सार यों लिखा है—

"अलङ्कारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्यानां मतम्"

चंद्रालोककार कविवर जयदेव तो यहाँ तक लिखते हैं—

"अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती ॥"

अर्थात् जो विद्वान् अलंकार-रहित शब्द और अर्थ को काव्य मानता है, वह अग्नि को उष्णता-रहित क्यों नहीं मानता ?

अग्निपुराण में भगवान् वेदव्यास ने भी आज्ञा की है—

"अलङ्करणमर्थानामर्थालङ्कार इष्यते ।
तं विना शब्दसौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम् ॥
अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती ।"

अर्थात् अर्थों में जो रमणीयताकारक (धर्म) है, वही अर्थालंकार है। उसके विना शब्द का सौंदर्य भी मनोहर नहीं होता, और उससे हीन सरस्वती (बाणी) विधवा तुल्य है।

इसी प्रकार महाकवि दंडी ने भी लिखा है—

"काव्यशोभाकरान्धर्मानलङ्कारान्प्रचक्षते ।"

अर्थात् काव्य में सौंदर्यकारक धर्म ही अलंकार कहे जाते हैं।

'अलंकार' शब्द का अर्थ 'आभूषण' है। अलंकारों का मुख्य कार्य भावों तथा कल्पनाओं को सुंदर और मनोहर रूप प्रदान करना है। अलंकारों के अभाव में सुंदर से सुंदर भावों और विचारों का सौंदर्य अपेक्षाकृत कम जँचता है; और अलंकारों के योग से साधारण भाव तथा विचार भी परम चित्ताकर्षक हो जाते हैं। जैसे कोई रमणी स्वतः सुंदरी होने पर भी जब भूषणों द्वारा भूषित की जाती है, तब उसका वह सौंदर्य बहुत अधिक बढ़ जाता है। वैसे ही कविता व्याकरण, पिंगल आदि से शुद्ध होने पर भी जब अलंकारों द्वारा सुसज्जित होती है, तभी

अत्यंत चमत्कारपूर्ण और मनोहर होती है। महाकवि केशवदास ने 'कविप्रिया' में कहा है—

"जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिन न बिराजई, कविता बनिता मित्त!॥"

श्रीउत्तमचंद भंडारी अपने 'अलंकार-आशय' नामक ग्रंथ में लिखते हैं—

"कविता बनिता रस भरी, सुंदर होइ सुलाख।
बिन भूषन नहिं भूषहीं, यहै जगत की साख॥"

इन सब प्रमाणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि काव्य में चित्ताकर्षक रमणीयता के उत्पादक अलंकार हैं। इतना ही नहीं, वरन् काव्य के समस्त अंगों में सर्व-श्रेष्ठता का सेहरा भी इनके सिर बाँधा जा सकता है। वस्तुतः कविता-कामिनी का सौभाग्य और सौंदर्य अलंकार ही हैं। इनके विना उसके सब अंग यथावत् होते हुए भी उतने सुंदर नहीं जान पड़ते, जितने सुंदर वे होने चाहिएँ।

अलंकारों की व्यापकता

विचार-विनियम के लिये जब से वाणी का व्यवहार आरंभ हुआ है, प्रायः तभी से अलंकारों का प्रचलन है। केवल किसी विशेष देश, जाति या समाज में ही अलंकारों का विशिष्ट रूप से प्रचार नहीं है, प्रत्युत् प्रत्येक देश, जाति और समाज में इनका अखंड साम्राज्य दिखाई देता है। बात यह है कि मनुष्य सौंदर्य का उपासक है। वह अपनी समस्त वस्तुओं को परम सुंदर रूप देकर लोगों के सामने प्रस्तुत करना चाहता है; और इसी इच्छा से वह अपनी उक्तियों तथा विचारों को भी यथासाध्य सुंदर रूप

देता है। यही कारण है कि संसार की समस्त भाषाओं के प्रत्येक ग्रंथ में अलंकारों का सिक्का जमा हुआ है और वे साहित्य-क्षेत्र में बहुत ऊँचा स्थान ग्रहण किए हुए हैं।

जिस प्रकार वेद अनादि हैं, उसी प्रकार हम कह सकते हैं कि अलंकार भी अनादि हैं; क्योंकि इनका अस्तित्व वेदों की रमणीय ऋचाओं में भी प्रत्यक्ष रूप से पाया जाता है। देखिए—

"यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्तऽ आदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥"*

—श्रीशुक्लयजुर्वेद-संहिता (अ० १२ मंत्र ८५)।

यहाँ 'अत्यंतातिशयोक्ति' अलंकार है।

"यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाऽइव ॥"†

—श्रीशुक्लयजुर्वेद-संहिता (अ० १७ मंत्र ४८)।

यहाँ 'पूर्णोपमा' और 'बाणाः' तथा 'विशिखाः' में 'पुनरुक्तवदाभास' अलंकार है।

"व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥"‡

—श्रीशुक्लयजुर्वेद-संहिता (अ० १९ मंत्र ३०)।

---

* जिस समय मैं यह ओषधी पूजन करता हुआ (वा सत्कार-पूर्वक) हाथ में धारण करता हूँ, उस समय 'यक्ष्मा' रोग का स्वरूप (वा निदान) भक्षण से पहले ही उसी प्रकार नाश को प्राप्त होता है, जिस प्रकार वध के निमित्त ले जाया जानेवाला प्राणी वध से पहले ही हत हो जाता है।

† जहाँ (रणक्षेत्र में) शिखा-रहित (वा लटदार बालोंवाले) बालकों की तरह इधर-उधर चलकर बाण गिरते हैं।

‡ व्रत से दीक्षा को प्राप्त होता है। दीक्षा से दक्षिणा को प्राप्त

यहाँ 'प्रथम कारणमाला' और 'आप्नोति' क्रिया की आवृत्ति से 'पदार्थावृत्ति-दीपक' अलंकार है।

इसी प्रकार अन्य संहिताओं और ब्राह्मणों में भी अलंकारों का प्रयोग बहुत अधिकता से देखने में आता है। यहाँ इतने ही उदाहरण पर्याप्त हैं। उपनिषदों में तो अलंकार और भी प्रचुर परिमाण में देखे जाते हैं।

इनके अतिरिक्त स्मृतियों और इतिहास-ग्रंथों में भी अलंकारों की भरमार है। यथा—

"यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥"

—मनुस्मृति।

यहाँ 'दृष्टांत' अलंकार का प्रयोग है।

"रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥"

—श्रीमद्भगवद्गीता (अ० ७ श्लोक ८)।

यहाँ 'द्वितीय उल्लेख' अलंकार है। *

केवल संस्कृत के धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक ग्रंथों में ही नहीं, प्रत्युत् संसार के सभी प्रसिद्ध मतों की धार्मिक पुस्तकों आदि में भी अलंकारों की छटा पर्याप्त मात्रा में देखी जाती है। बाइबिल और कुरान में भी कितने ही अलंकार स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

होता है। दक्षिणा द्वारा श्रद्धा को और श्रद्धा द्वारा सत्य (परमात्मा) को प्राप्त होता है।

* इसके अतिरिक्त महाभारत का एक श्लोक हमने पृष्ठ ७२ पर 'समुच्चयोपमा' के उदाहरण में दिया है।

जो साधारण तुकबंदी करनेवाले लोग यह भी नहीं जानते कि अलंकार किसे कहते हैं, उनकी रचनाओं को भी अलंकार स्वयमेव अलंकृत करते चले आते हैं। अलंकार-शास्त्र से अनभिज्ञ, पर शिक्षित लोगों के वार्तालाप * और पत्र-व्यवहार में भी अलंकार अपना चमत्कार बहुधा आप से आप और अनजान में दिखला जाते हैं; और इसका कारण मनुष्य की वही सौंदर्योपासनावाली वृत्ति है। साधारण से साधारण और अपढ़ से अपढ़ व्यक्तियों की बोलचाल में भी अलंकार बरवश आ जाते हैं। यथा—

"जल में रहे मगर से बैर"

यहाँ 'लोकोक्ति' अलंकार तो है ही; 'विशेष-निबंधना (अप्रस्तुत-प्रशंसा)' भी है।

"उसकी बातों के जाल में मत फँस जाना"

यहाँ 'बातों के जाल' में 'निरंग रूपक' है।

कहने का तात्पर्य यही है कि अलंकार सर्वव्यापी हैं। जो लोग अलंकारों के विरोधी हैं, उनकी बातों में, उनकी कृतियों

---

* एक बार की बात है। मैं फीरोजपुर में एक मजिस्ट्रेट मित्र से मिलने गया था; किंतु वे घर पर नहीं मिले, एक उच्च पदाधिकारी के यहाँ गए हुए थे। मैं भी वहीं चला गया। बातों ही बातों में प्रसंग-वश उक्त पदाधिकारी महाशय ने (जो ढलती अवस्था के थे) मजिस्ट्रेट से कहा—"मेरी आँख लग गई थी"। इसपर उन्होंने तुरंत ही मुस्कराते हुए कहा—"क्या अब भी आपकी आँख लगती है?" इस वार्तालाप में उन दोनों सज्जनों ने आनंद का जो कुछ अनुभव किया, वह तो किया ही; किंतु उसमें 'वक्रोक्ति' की चमत्कृति देखकर मेरे हृदय में जो आनंद का उद्रेक हुआ, उसका अनुमान तो अलंकार के रसिक ही कर सकते हैं।

में और उनके अलंकार-विरोधी लेखों तथा निबंधों तक में अलंकार स्वयमेव अपना अधिकार जमा लेते हैं; और जबतक उनमें आलंकारिक शब्दावली नहीं होती या यों कहिए कि भाषा को अलंकार का सहारा नहीं मिलता, तबतक उनमें रोचकता तथा ओजस्विता आ ही नहीं सकती।

ग्रंथ-निर्माण-कारण

अलंकार-शास्त्र-संबंधी गंभीर गवेषणा-पूर्ण और मार्मिक विवेचना-संयुक्त ग्रंथों से जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य का भंडार भरा हुआ है, उस प्रकार के उच्च कोटि के ग्रंथों का हिंदी-साहित्य में प्रायः अभाव ही है। प्राचीन हिंदी में गद्य का एक प्रकार से विकास ही नहीं हुआ था; इसलिये 'कविप्रिया' आदि जितने लक्षण-ग्रंथ बने, उनमें लक्षणों का निरूपण करने के लिये भी पद्य का ही व्यवहार हुआ। लक्षणों का जैसा विश्लेषण और स्पष्टीकरण गद्य में हो सकता है, वैसा पद्य में नहीं हो सकता; क्योंकि पद्य लिखते समय लेखक को अपना विचार-विहंगम पिंगल के पिंजड़े में बंद करके रखना पड़ता है। इससे वह स्वच्छंद उड़ान लेने में असमर्थ होता है। उसका ठीक-ठीक अभिप्राय समझना लोगों के लिये बहुत कठिन होता है; और जिस उद्देश्य से उस पद्य की रचना की जाती है, वह उद्देश्य प्रायः अपूर्ण ही रह जाता है।* यद्यपि 'अलंकार-आशय'

* हिंदी ही में नहीं वरन् संस्कृत-साहित्य में भी जहाँ कहीं अलंकारों के लक्षण संकुचित पद्य में लिखे गए हैं, वहाँ अपूर्णता रह गई है; प्रत्युत् कहीं-कहीं तो दो लक्षण एक ही हो गए हैं। यथा—

"मीलितं यदि सादृश्याद्भेद एव न लक्ष्यते"

"सामान्यं यदि सादृश्याद्विशेषो नोपलक्ष्यते"

जैसे किसी-किसी प्राचीन ग्रंथ में अलंकार-विषयक कुछ बातों के समझाने का उद्योग पद्य के साथ-साथ गद्य में भी किया गया है; और कुछ ग्रंथों की अन्य विद्वानों ने गद्य में टीका करके अलंकारों के स्पष्ट करने का भी प्रयत्न किया है, तथापि वह गद्य तत्कालीन प्रणाली के अनुसार होने के कारण पद्य से भी अधिक दुरूह हो गया है। हिंदी में गद्य का विकास हो जाने पर जितने अलंकार-ग्रंथ बने, उनमें से केवल सेठ कन्हैयालाल पोद्दार-प्रणीत 'अलंकार-प्रकाश' में ही अलंकारों के तत्वों और सिद्धांतों पर विद्वत्ता एवं मार्मिकता के साथ परिष्कृत गद्य में प्रकाश डाला

'चंद्रालोक' के इन उद्धरणों में पहला 'मीलित' का और दूसरा 'सामान्य' का लक्षण है। इनसे पाठकों को दोनों अलंकारों का वास्तविक स्वरूप लक्षित नहीं हो सकता। (चंद्रालोक में पद्य की संकीर्णता के ही परिणाम-स्वरूप विवेचन के लिये पं० अप्पय दीक्षित को उसपर 'कुवलयानंद' की और पं० वैद्यनाथ को 'अलंकार-चंद्रिका' टीका की रचना करनी पड़ी।) किंतु 'रस-गंगाधर' में, इन्हीं अलंकारों के लक्षण गद्य में होने के कारण, देखिए कितने स्पष्ट हुए हैं—

"स्फुटमुपलभ्यमानस्य कस्यचिद्वस्तुनो लिङ्गैरतिसाम्याद्भिन्नत्वेनागृह्यमाणानां वस्त्वन्तरलिङ्गानां स्वकारणाननुमापकत्वं मीलितम्"

अर्थात्—जहाँ अपर वस्तुओं के हेतुओं (ज्ञात करानेवाले कारणों) से अप्रत्यक्ष वस्तु का भेद ज्ञात न होने पर अप्रकटता होती है, वहाँ 'मीलित' होता है।

"प्रत्यक्षविषयस्यापि वस्तुनो बलवत्सजातीयग्रहणकृतं तद्भिन्नत्वेनाग्रहणं सामान्यम्"

अर्थात्—जहाँ (प्रत्यक्ष वस्तु के) अत्यंत तुल्य (समानता रखनेवाली) वस्तु के ज्ञान से (उस) प्रत्यक्ष वस्तु के भेद का अज्ञान कराया जाय (उसका भेद ज्ञात न हो), वहाँ 'सामान्य' होता है।

गया है। अन्य ग्रंथों में लक्षणों के लिये प्राचीन हिंदी-पद्यों का व्यवहार किया गया है, जो प्राय: संस्कृत के श्लोकों का उलथा मात्र है। हमारे विचार से जिज्ञासु पाठकों और विशेषत: नवयुवक विद्यार्थियों की ज्ञान-पिपासा तबतक नहीं बुझ सकती जबतक हिंदी भाषा की प्रकृति का ध्यान रखते हुए लक्षणों का सरल और स्पष्ट गद्य में निरूपण न किया जाय। लक्षणों के संबंध में एक और बात बड़े मार्के की है। संस्कृत के प्राय: ग्रंथों में ❀ एवं हिंदी के जितने अलंकार-ग्रंथ हमारे देखने में आए, उन सबमें भेदोंवाले अलंकारों में से कुछ प्रधान अलंकारों के मूल लक्षण तो लिखे हैं; किंतु अधिकांश के मूल स्वरूप नहीं समझाए गए हैं, उनमें केवल भेदों के ही भिन्न-भिन्न लक्षण लिखे हैं। हमारे विचार से यह एक भारी त्रुटि रह गई है; क्योंकि ऐसा न होने से इस बात का पता नहीं चलता कि

❀ संस्कृत के 'साहित्य-दर्पण' में तो भेदोंवाले सब अलंकारों के मूल लक्षण बनाए गए हैं; किंतु अन्य कुछ प्रचलित लक्षण-ग्रंथों के उन अलंकारों का विवरण उद्धृत किया जाता है, जिनमें मूल लक्षण आवश्यकता होते हुए भी नहीं दिया गया है—

'काव्य-प्रकाश' में—निदर्शना, समुच्चय, पर्याय, उत्तर, विशेष।

'चंद्रालोक' में—उल्लेख, अपह्नुति, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, निदर्शना, पर्यायोक्ति, आक्षेप, विभावना, असंगति, विषम, सम, अधिक, विशेष, व्याघात, पर्याय, समुच्चय, प्रहर्षण, पूर्वरूप, उत्तर, हेतु।

'रस-गंगाधर' में—विशेष, पर्याय, प्रतीप।

['काव्य-प्रकाश' एवं 'रस-गंगाधर' में अल्पसंख्यक अलंकारों के ही भेद दिए गए हैं; इसीसे वहाँ बहुत से अलंकारों के मूल लक्षण की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।]

उक्त अलंकार का मूल स्वरूप क्या है और उसका कौनसा व्यापक लक्षण है, जो सभी भेदों में स्थूल रूप से घटित होता हो या माना जा सकता हो। यह गड़बड़ वास्तव में संस्कृत के लक्षण-ग्रंथों से ही चली आ रही है, हिंदीवालों ने भी उन्हीं का अनुकरण किया है।

इसके अतिरिक्त जब हम उदाहरणों की ओर देखते हैं, तो कठिन अलंकारों के एक से अधिक उदाहरण बहुत कम ग्रंथों में मिलते हैं। सरल अलंकारों के उदाहरण यदि अधिक मिलते भी हैं तो वे प्रायः संस्कृत-ग्रंथों के उदाहरणों के किए हुए अनुवाद के रूप में ही हैं। हिंदी के प्राचीन अलंकार-ग्रंथों में से अधिकांश ने 'चंद्रालोक' एवं 'कुवलयानंद' का ही विशेष रूप से सहारा लिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्रायः ग्रंथों के उदाहरण एक से हो गए हैं; अतः जिन लोगों ने हिंदी के अलंकार-ग्रंथों से इनका संग्रह किया, उनके भी प्रायः उदाहरण एक से हो गए।*

---

* नमूने के तौर पर 'तृतीय असंगति' अलंकार के उदाहरण कुछ ग्रंथों से उद्धृत किए जाते हैं—

कुवलयानंद— मोहं जगत्त्रयभुवामपनेतु मेत-
दादाय रूपमखिलेश्वर देहभाजाम् ॥
निःसीमकान्तिरसनीरधिनामुनैव ।
मोहं प्रवर्द्धयसि मुग्धविलासिनीनाम् ॥

भाषा-भूषण— मोह मिटायौ नाहिं प्रभु, मोह लगायौ आनि ।

अलंकार-आशय, काव्य-प्रभाकर } मोह मिटायौ नाहिं प्रभु, मोह लगायौ और ।

जसवंत-जसोभूषण— मोह मिटावन आइ प्रभु, मोह बढ़ायौ और ।

अलंकार-प्रकाश, अलंकार-मंजूषा, हिंदी-अलंकार-प्रबोध } मोह मिटावन हेत प्रभु !, लीन्हौं तुम अवतार ।
उलटो मोहन रूप धरि, मोहीं सब ब्रज-नार ॥

अब यह कहने की आवश्यकता न होगी कि ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों अथवा अलंकार का मनन करनेवालों की भलीभाँति मनस्तुष्टि नहीं हो सकती।

उदाहरणों को छोड़कर जब हम समन्वय (मिलान) और अलंकारों की भिन्नताओं पर विचार करते हैं, तो अच्छे ग्रंथों में भी इनका सम्यक् प्रकार से किया हुआ प्रतिपादन नहीं मिलता। प्रत्येक अलंकार की परिभाषा से उसके उदाहरणों का यथावत् 'मिलान' होना परमावश्यक है; क्योंकि ऐसा करने से एक तो पाठक के अंतस्तल में वह अलंकार अच्छे प्रकार से स्थान कर लेता है, दूसरे मिलान की कसौटी पर उसकी पूरी-पूरी जाँच हो जाती है। अलंकारों के भेदोपभेद अधिक संख्या में हो जाने के कारण बहुत से ऐसे अलंकार भी हो गए हैं, जो आपस में बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। ऐसे मिलते-जुलते अलंकारों में परस्पर बहुत ही सूक्ष्म भेद हुआ करता है; इसलिये यदि उसका स्पष्टीकरण भिन्नताएँ लिखकर न किया जाय तो पाठक अलंकारों के पहचानने में धोखा खा जाते हैं। प्रायः ग्रंथों में तो भिन्नताएँ लिखी ही नहीं गईं; और जिनमें हैं भी, उनमें थोड़े ही अलंकारों की हैं और वे भी अपर्याप्त शब्दों में लिखी गई हैं जिससे अस्पष्ट हो गई हैं। इसी अभाव के कारण कहीं-कहीं तो मिलते-जुलते अलंकारों के लक्षण और उदाहरण तक एक हो गए हैं।

यह तो निर्विवाद ही है कि हिंदी में अलंकार-शास्त्र की सभी बातें संस्कृत से ही आई हैं। परंतु जैसा संस्कृत-साहित्य के विद्वान् हिंदी के साहित्यकारों पर आक्षेप करते हैं—और ठीक आक्षेप करते हैं—कि हिंदी के अधिकांश अलंकार-ग्रंथों के रचयिताओं ने संस्कृत के अलंकार-शास्त्र के सूक्ष्म भाव

ठीक-ठीक न समझकर कहीं-कहीं कुछ का कुछ कर दिया है। जहाँ तक हमारी अल्प बुद्धि में आया है हमने इस प्रकार की भूलों से बचने का यथा-साध्य प्रयत्न किया है; पर एक बात और है वह यह कि व्याकरण तथा भाषा-विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत-भाषा की प्रकृति से हमारी हिंदी की प्रकृति बहुत कुछ भिन्न है; इसलिये हमें कुछ स्थलों पर विवश होकर संस्कृत का अनुकरण छोड़ना भी पड़ा है। उदाहरण के लिये 'लाटानुप्रास' अलंकार को ही लीजिए। संस्कृत में 'पद' और 'नाम' की आवृत्ति के विचार से इसके दो भेद किए गए हैं; परंतु जैसा कि हमने 'लाटानुप्रास' के अंत की सूचना में बतलाया है, संस्कृत-व्याकरण में जिन्हें 'पद' और 'नाम' कहते हैं, उनका हमारे हिंदी-व्याकरण में कोई स्थान ही नहीं है। अतः हमारे लिये उसका ज्यों का त्यों अनुकरण करना असंभव है। हमारे यहाँ तो शब्द और वाक्य का ही भेद है; और इन्हीं दोनों के अनुसार हमने 'लाटानुप्रास' के दो भेद रखे हैं। इसी प्रकार 'यथासंख्य' अलंकार को लीजिए। संस्कृत में इसके 'शाब्द' और 'आर्थ' ये दो भेद किए गए हैं। संस्कृत में ये भेद इसलिये उपयुक्त हैं कि उसमें समास और उसके परिणाम-स्वरूप अन्वय आदि की विस्तृत और जटिल परिपाटी है; पर हमारी हिंदी में वह प्रायः नहीं के समान है। हमारे यहाँ समासों का अपेक्षाकृत बहुत कम व्यवहार होता है और शब्दों का परस्पर वह दुरान्वय नहीं होता जो संस्कृत में होता है। इसीलिये हमने 'यथासंख्य' अलंकार का कोई भेद नहीं माना है। जिन लोगों ने संस्कृत के अनुकरण पर ऐसे स्थलों पर अलंकारों के भेद माने हैं, वे अपने उदाहरणों में ऐसे भेदों का पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं कर सके हैं।

आधुनिक काल में जब कि हिंदी-साहित्य की उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है, हम बहुत दिनों से इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि कोई न कोई उद्भट एवं अनुभवी विद्वान् इस विषय पर अपनी लेखनी उठावेंगे; और उपर्युक्त त्रुटियों से रहित कोई अलंकार-ग्रंथ प्रस्तुत करके अलंकार-शास्त्र के अध्येताओं एवं रसिकों की मनस्तुष्टि करेंगे। किंतु ऐसा होता न देखकर हमने वृद्धावस्था में भी अपनी दुर्बलताओं की उपेक्षा करते हुए केवल उत्साह के बल पर कमर कसकर इस साहित्यिक अखाड़े में उतरने का दुस्साहस किया है; और ऊपर बतलाए हुए अभावों की पूर्ति करने का यथा-शक्ति प्रयत्न किया है।

ऊपर हमें अपने पूर्ववर्ती लेखक महानुभावों के ग्रंथों में दिखाई पड़नेवाले कतिपय अभावों का उल्लेख करना पड़ा है, जिसके लिये हम क्षमा-प्रार्थी हैं; और हम निस्संकोच भाव से यह कहते हैं कि यदि उन ग्रंथों की महती सहायता न मिलती तो हम अपना यह ग्रंथ प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं हो सकते थे। इसमें जो कुछ है, वह उन्हीं के खजानों से लिया गया है। हमने तो केवल उसका परिष्कार करके अर्थात् उसमें अपनी अल्प-बुद्धि के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन तथा परिवर्द्धन करके उसे साहित्य-संसार के समक्ष रख दिया है। अलंकार-शास्त्र में नवीन अन्वेषण होते पर आगे चलकर हमारी इस पुस्तक में भी भावी रचयिताओं को अनेक त्रुटियाँ दृग्गोचर होंगी; क्योंकि यह परंपरा ही है।

हमने 'नभःपतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः' के अनुसार प्रस्तुत पुस्तक को परिपूर्ण एवं उपादेय बनाने का यथा-साध्य पूरा प्रयत्न किया है और इसमें बहुत सी विशेषताएँ या नवीनताएँ

रखी हैं जिनमें से मुख्य दस विशेषताओं का उल्लेख पंडित-प्रवर श्रीकृष्णविहारीजी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० महोदय ने 'भूमिका' में (पृष्ठ १७ से २१ तक) किया है। शेष गौण विशेषताओं का निर्देश करके व्यर्थ का विस्तार इसलिये नहीं किया गया कि विज्ञ पाठक तथा पारखी लोग उन्हें स्वयं ही समझ लेंगे। हमारा कर्तव्य तो इतना ही था। अब इस पुस्तक की उपादेयता का निर्णय करना साहित्य-मर्मज्ञ सत्समालोचकों पर निर्भर है।

अलंकारों की संख्या

अलंकारों की संख्या के विषय में क्या संस्कृत के और क्या हिंदी के सभी आचार्यों में बहुत बड़ा मतभेद है। किसी ने बहुत थोड़े अलंकार माने हैं और किसी ने बहुत अधिक। किसी अलंकार को यदि एक आचार्य मुख्य मानता है, तो दूसरा उसको किसी दूसरे अलंकार का भेद मानता है; और तीसरा उसका अस्तित्व ही स्वीकृत नहीं करता। यही अवस्था भेदों और प्रभेदों की भी है।

हमने संस्कृत और हिंदी के बहुत से प्रसिद्ध तथा प्रामाणिक ग्रंथों का अवलोकन किया; * और हमें अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार जिसका मत यथार्थ और समीचीन जान पड़ा, उसी को ग्रहण करके अलंकारों और उनके भेद-प्रभेदों की संख्या का निर्णय किया है। पुस्तक में यथा-स्थान उल्लेखनीय निर्णयों का विवरण दे दिया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में मूल अलंकारों और उनके अवांतर भेदों की संख्या इस प्रकार है—

* इन ग्रंथों के नाम पुस्तक के परिशिष्ट भाग में सहायक ग्रंथों की सूची में दिए हुए हैं।

(१) शब्दालंकार ८
(२) अर्थालंकार १००
(३) उभयालंकार २

इन ११० प्रधान अलंकारों के अतिरिक्त सूचनाओं में गौण रूप से निम्नोक्त चार अलंकार और लिखे गए हैं—

(१) बैण-सगाई (अनुप्रास में) ।
(२) देहरी-दीपक (आवृत्ति-दीपक में) ।
(३) उदाहरण (दृष्टांत में) ।
(४) जाति (स्वभावोक्ति में) ।

इन सब अलंकारों के भेद-प्रभेद आदि के योग से समस्त संख्या २७५ हो गई है। *

यहाँ प्रसंग-वश हम एक बात और कह देना चाहते हैं। जब यह पूरी छपी हुई पुस्तक पूज्यपाद आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी की सेवा में सम्मति के लिये भेजी गई तब आपने अपनी सम्मान्य सम्मति प्रदान करते हुए एक बहुत ही उपयोगी प्रश्न किया था। इस अवसर पर हम वह प्रश्न और उसका उत्तर भी इसलिये दे देना उचित समझते हैं कि उसका

---

* निम्नोक्त चार अलंकारों में दूसरे प्रकार के उदाहरण भी दिए गए हैं; किंतु वहाँ पर उदाहरणांतर मात्र है, भेदांतर नहीं; अतएव उनकी भेदों में भिन्न गणना नहीं की गई है—

(१) 'स्मरण' में वैधर्म्य-संबंधी ।
(२) 'प्रतिवस्तूपमा' में भी वैधर्म्य-संबंधी ।
(३) 'निदर्शना' में विना वाचक-संबंधी ।
(४) 'मुद्रा' में संक्षिप्तत: कथा-निर्देश-संबंधी ।

संबंध अलंकार-शास्त्र के सभी मर्मज्ञों से है। वह प्रश्न इस प्रकार है—

"केडियाजी साहब से मेरा एक प्रश्न है। भूषण, अलंकार, जेवर या गहने सदा सबके एक से नहीं होते। प्रांत और देश-विशेष के कारण भी उनमें भिन्नता होती है और काल-विशेष के भी कारण। राजपूताने के जेवर बंगाल में प्रचलित नहीं और डेढ़ सौ दो सौ वर्ष पहले के जेवर सबके सब अब प्रचलित नहीं। मतलब यहाँ स्त्रियों के आभूषणों से है। फिर क्या कारण कि बेचारी भारती के जेवर वही भरत, कालिदास, भोज इत्यादि के जमाने के ज्यों के त्यों बने हुए हैं? भारती को क्या नवीनता पसंद नहीं? न हो तो न सही। हो तो केडियाजी! कुछ नये भूषणों की खोज या कल्पना करने की भी कृपा करें। ये पुराने भूषण भाषण के भिन्न-भिन्न ढंग हैं। क्या इनके सिवा बोलने और लिखने में सरसता या चमत्कार उत्पन्न करने के लिये कोई अन्य ढंग हो ही नहीं सकता? मेरा यही प्रश्न है जिसे मैं केडियाजी के समक्ष सादर उपस्थित करता हूँ।"

द्विवेदीजी ने प्रश्न के रूप में जो आज्ञा की है, वह ध्यान देने योग्य है। इस संबंध में हमारा निवेदन यह है कि नये-नये आभूषणों का आविष्कार बराबर होता रहा है* क्योंकि अलंकारों का ज्यों-ज्यों विकास होता गया त्यों-त्यों आचार्य लोग अन्यान्य अलंकारों की कल्पना भी करते गए। मुख्य-मुख्य

---

* उदाहरण-स्वरूप 'विकल्प' अलंकार का प्रादुर्भाव राजानक रुय्यक द्वारा हुआ। यह अलंकार अबतक चला आता है। यही बात कतिपय अन्यान्य प्रचलित अलंकारों के संबंध में भी समझनी चाहिए।

आचार्यों ने जितने-जितने अलंकारों का निरूपण किया है उनकी तालिका नीचे दी जाती है—

आचार्य	ग्रंथ	समय	संख्या*
भगवान् भरत	नाट्य-शास्त्र	विक्रम के पूर्व	४ †
रुद्रट	काव्यालंकार	वि० नवीं शताब्दी	७३
वामनाचार्य	काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति	,, दशवीं ,,	३१
भोजराज	सरस्वती-कंठाभरण	,, ग्यारहवीं ,,	७२‡
महाकवि दंडी	काव्यादर्श	,, ,, ,,	३८
मम्मटाचार्य	काव्य-प्रकाश	,, बारहवीं ,,	६७
वाग्भट	वाग्भटालंकार	,, ,, ,,	३९
पीयूषवर्षी जयदेव	चंद्रालोक	,, तेरहवीं ,,	१०४
विश्वनाथ	साहित्य-दर्पण	,, चौदहवीं ,,	८४
केशव मिश्र	अलंकार-शेखर	,, सोलहवीं ,,	२२
पंडितराज जगन्नाथ	रस-गंगाधर	,, अठारहवीं ,,	७०

* यहाँ सभी प्रकार के अलंकारों की संख्या मिलाकर लिखी गई है।
† उपमा, दीपक, रूपक और यमक। ‡ इनको २४ शब्दालंकार, २४ अर्थालंकार और २४ उभयालंकारों में विचित्र ही ढंग से विभक्त किया है।

इनके अतिरिक्त अन्य आचार्यों ने भी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार न्यूनाधिक अलंकारों का निरूपण किया है। कितने ही आचार्यों ने पुराने अलंकारों को विकसित किया, कितनों ने नये-नये आभूषण गढ़े और कितनों ने आगे चलकर उनकी काट-छाँट भी की। यही बात हिंदीवालों की है। हिंदी के आदि आचार्य महाकवि केशवदास ने 'कविप्रिया' में अलंकारों के 'सामान्य' और 'विशिष्ट' दो मुख्य विभाग करके 'सामान्य' के अंतर्गत ४ और 'विशिष्ट' के अंतर्गत ३६, इस प्रकार कुल चालीस अलंकारों का निरूपण किया है; और उनके परवर्ती आचार्यों ने अपने-अपने मतानुसार संख्या रखी है। जिसकी उन्नति होते-होते सौ के ऊपर संख्या पहुँच गई है।

वर्तमान समय में भी प्राचीन अलंकारों के परिष्कार के साथ ही साथ नवीन आभूषणों का आविष्कार भी हो सकता है; किंतु आविष्करण तो कला-कुशल आचार्यों का कार्य है। हमने तो आज तक के बने हुए समस्त आभूषणों को एकत्र करके केवल जाँचा है। अपूर्ण एवं टूटे-फूटे गहनों को गलाकर ग्राह्य अलंकारों का संस्कार किया है। उन्हें सर्वांग-सुंदर बनाया है, माँजकर चमकाया है और आवश्यकतानुसार उनमें नये-नये रत्न भी अपनी ओर से जड़े हैं। हमने माता भारती को उन्हीं प्राचीन रोचक एवं मनोहर भूषणों से अपनी शक्ति भर सुसज्जित एवं प्रसन्न करने का प्रयत्न किया है। हमने (कल्पना से प्रेरित होने पर भी) नये ढंग के भूषणों के निर्माण का साहस इसलिये नहीं किया कि कदाचित् भगवती भारती* को नये फैशन के अलंकार अरुचिकर हों। यदि भारती के भक्त उसे नवीन अलंकारों से अलंकृत करना चाहें तो वे प्रसन्नता-पूर्वक ऐसा कर सकते हैं; परंतु वे नये अलंकार ऐसे होने चाहिएँ जो सर्व-प्रिय

हों। तभी उनका प्रचलन हो सकता है।* हम द्विवेदीजी महोदय का प्रश्न विद्वद्वरों के समक्ष ज्यों का त्यों इस आशा से उपस्थित करते हैं कि वे लोग इसपर अपने विचार प्रकट करने की कृपा करेंगे।

आवश्यक सूचनाएँ

प्रस्तुत पुस्तक के विषय में हम अपने प्रिय पाठकों को निम्नांकित बातों की सूचना दे देना आवश्यक समझते हैं—

(१) उदाहरणों में अन्य कवियों के सभी पद्य, एक आध को छोड़कर, पूरे-पूरे दिए गए हैं; और एक पद्य एक ही स्थल पर दिया गया है। स्वयं हमारे पद्य प्रायः पूरे लिखे गए हैं; किंतु जो थोड़े से पद्य दो अलंकारों में दिए गए हैं, वे एक में

---

* कुछ धुरंधर आचार्यों के बनाए हुए भी नये-नये अलंकार प्रचलित नहीं हो सके। यथा—

(१) रुद्रट का उभयन्यास, पूर्व और मत।

(२) भोज का अहेतु, भाव और वितर्क।

(३) दंडी का आशी।

(४) भानुदत्त के अनध्यवसाय और भंगि।

(५) शोभाकर के अचिंत्य, अतिशय, अनादर, अनुकृति, अवरोह, अशक्य, आदर, आपत्ति, उद्भेद, उद्रेक, क्रियातिपत्ति, गूढ़, तंत्र, तुल्य, नियम, प्रतिप्रसव, प्रतिभा, प्रतिमा, प्रत्यादेश, प्रत्यूह, प्रसंग, वर्द्धमानक, विनोद, विपर्यय, वैधर्म्य, व्यत्यास, व्याप्ति, व्यासंग और समता।

(६) विश्वनाथ का अनुकूल।

(७) यशस्क के अंग, अनंग, अप्रत्यनीक, अभीष्ट, अभ्यास, तत्सदृशादर, तात्पर्य, प्रतिबंध और संस्कार।

(८) मुरारिदान के अतुल्ययोगिता, अनवसर और अपूर्वरूप।—

तो पूरे हैं और दूसरे में उनका उतना ही अंश दिया गया है जितने में वह अलंकार है; तथा वहाँ पर टिप्पणी में यह संकेत कर दिया गया है कि पूरा पद्य अमुक अलंकार में देखिए।

(२) अन्य कवियों के उदाहरण-पद्यों के नीचे कवि अथवा ग्रंथ का नाम लिख दिया गया है। जहाँ पता नहीं चला वहाँ 'अज्ञात कवि' लिखा है। स्वयं हमारे पद्यों के नीचे इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है।

(३) उदाहरणों में संस्कृत के हमारे दो और अन्य कवियों के तीन पद्य हैं तथा हमने अपने उर्दू के दो पद्य भी पाठकों के मनोरंजनार्थ दे दिए हैं।

(४) 'रामचरित-मानस' के उदाहरणों का पाठ बाबू रामदास गौड़ की प्रति के अनुसार और 'बिहारी-सतसई' के दोहों का पाठ ग्रियर्सन साहब द्वारा संपादित 'लालचंद्रिका' के अनुसार रखा गया है।

(५) उदाहरण-पद्यों के कठिन शब्दों पर टिप्पणी तो दी ही गई है और आवश्यतानुसार कहीं-कहीं पूरी टीका भी दे दी गई है।

(६) उदाहरण-पद्यों के जिन अंशों में अभिप्रेत अलंकार हैं, वे आवश्यकतानुसार रेखांकित कर दिए गए हैं।

(७) व्रज-भाषा की प्रकृति के अनुसार शब्दों के जो रूप काव्य-परंपरा में गृहीत हैं, वे ही हमने भी ग्रहण किए हैं। उनमें से कुछ मुख्य रूप नीचे लिखे जाते हैं—

(क) 'ण' के स्थान पर 'न' और 'क्ष' की जगह 'च्छ' लिखा है।

(ख) 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग किया गया है; पर प्राचीन ग्रंथों में 'श्री' अपने शुद्ध रूप में ही पाई जाती है; अतः हमने 'श्री' को तो शुद्ध रूप में रखा ही है, साथ ही 'श्र' के

अन्य रूपों को भी तालव्य 'श' से ही लिखना उचित समझा है; क्योंकि प्राचीन पुस्तकों में यह भी प्राय: अपने शुद्ध रूप में ही मिलता है। मूर्द्धन्य 'ष' को ज्यों का त्यों रखा है।

(ग) कहीं-कहीं 'ज्ञ' के स्थान पर 'ग्य' और 'ऋ' के स्थान पर 'रि' का प्रयोग भी पाया जाता है; किंतु प्राय: ये अक्षर शुद्ध रूप में ही मिलते हैं। हमने भी शुद्ध लिखना समीचीन समझा है।

(घ) शब्दों के आदि में आनेवाले 'य' को 'ज' और 'व' को 'ब' लिखा गया है।

यद्यपि उपर्युक्त नियमों का पालन बड़ी सावधानी के साथ किया गया है तथापि किसी विशेष स्थल पर आवश्यकता के अनुरोध से इनका अतिक्रमण भी हो गया है।

(८) दो या दो से अधिक अलंकारों की भिन्नता-बोधक सूचना क्रम के विचार से अंत में पड़नेवाले अलंकार में दी गई है; और पाठकों के सुभीते के लिये ऐसी सभी सूचनाओं की एक सूची भी पुस्तक के अंत में लगा दी गई है।

(९) गद्य और पद्य में कुछ सानुनासिक प्रत्यय एवं शब्द ऐसे हैं जिनमें वस्तुत: चंद्रबिंदु का व्यवहार होना चाहिए; पर मुद्रण की कठिनता के कारण लोग अनुस्वार का ही प्रयोग करते हैं, अत: लेखक और पाठक इस प्रथा के पूरे अभ्यासी हो गए हैं। तो भी हमने 'कीं' में, मैं, कों, सौं, कमों, हर्षीं, हर्षें, भौंहें, आदि के स्थान पर 'कीँ' मेँ, कर्मोँ आदि रखने के लिये बड़ी दौड़धूप की और यंत्रालय के प्रबंधकों ने भी इसके लिये व्यय और श्रम करने का वचन दिया। हमने कई टाइप-फाउंडरियों में इन टाइपों के बनवाने का प्रयत्न किया; पर उन्होंने ऐसे अप्रचलित टाइपों के बनाने में असमर्थता प्रकट की तब हमें बाध्य होकर प्रचलित परिपाटी का ही अनुगमन करना पड़ा।

(१०) हिंदी-गद्य-लेखन की कोई निश्चित प्रणाली नहीं है। प्रायः उसमें मनमानी ही देखने में आती है। शब्दों, प्रत्ययों एवं क्रियाओं को कोई किसी रूप में लिखता है और कोई किसी रूप में। जैसे—अलंकार, अलङ्कार; लिये (वास्ते के अर्थ में), लिए; गई, गयी; दिए, दिये; आदि। हमने इस विषय में 'काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा' की नीति को समीचीन जानकर समस्त ग्रंथ में उसी का अनुसरण किया है। मुख्य-मुख्य नियमों का ब्यौरा यहाँ दिया जाता है—

शब्दों को पंचम वर्ण से न लिखकर अनुस्वार से लिखा है। यथा—शंकर, पंचम, तांडव, आनंद, जगदंबा। वास्ते के अर्थ में आनेवाले 'लिये' को हमने 'लिये' ही लिखा है 'लिए' नहीं लिखा है। क्रियाओं के अंत में 'ई' और 'ए' रूप ग्रहण किए हैं। यथा—आई, किए। विभक्तियों को शब्दों से अलग रखा है। जैसे—गंगा को, किंतु सर्वनाम के साथ विभक्तियाँ मिलाकर लिखी गई हैं। जैसे—उसको, सबकी इत्यादि।

उपसंहार

कुछ ग्रंथों में अलंकार-दोषों का निरूपण भी पाया जाता है; पर उन्हें विशेष प्रयोजनीय न समझकर हमने उनको लिखकर विस्तार नहीं किया।

कई प्राचीन ग्रंथों में 'रसवत्' आदि सात वा आठ अलंकार और भी माने गए हैं; परंतु उनका संबंध रसों और भावों से है। जबतक रसों और भावों का निरूपण न किया जाय, तब-तक उनका यथार्थ स्वरूप समझाना कठिन ही नहीं, असंभव है। हमने इस ग्रंथ में रस-भावों का वर्णन नहीं किया है; अतः उनकी बिवेचना भी नहीं की गई है।

यहाँ पर हम इस पुस्तक के नाम के संबंध में भी कुछ निवेदन कर देना चाहते हैं। जिस समय हमने इस ग्रंथ का आरंभ किया था, उसी समय हमने इसका नाम 'भारती-भूषण' रखा था; परंतु जब इसका कुछ अंश छप गया, तब हमें पता चला कि "भारती-भूषण" नाम की एक और अलंकार-संबंधी पुस्तक सन् १८६७ ई० में काशी के 'लाइट प्रेस' में प्रकाशित हुई थी जिसके रचयिता श्रीयुत गिरिधरदासजी कवीश्वर थे। वह बहुत छोटी केवल २४ पृष्ठों की पुस्तक थी। वह पुस्तक अब साहित्यिक समाज के स्मरण-पथ से निकल चुकी थी, और इस समय उसका अस्तित्व नहीं के समान था। इसीलिए हमने अपने इस ग्रंथ का नाम 'भारती-भूषण' ही रहने दिया।

इस पुस्तक के प्रस्तुत करने में हमने जिन-जिन कवियों के पद्य उदाहरण-स्वरूप उद्धृत किए हैं उनकी और संस्कृत तथा हिंदी-भाषा के जिन-जिन ग्रंथों से मत एवं प्रमाणादि के रूप में सहायता ली है उनके रचयिताओं की सूचियाँ पुस्तक के परिशिष्ट भाग में दे दी हैं। उन सभी महाशयों के हम अत्यंत कृतज्ञ हैं और उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

परम पूज्य गुरुवर गोस्वामी गणेशपुरीजी 'पद्मेश' के भी हम आभारी हैं जिनकी कृपा से अलंकार-शास्त्र की ओर हमारी प्रवृत्ति हुई।

सर्वतंत्र-स्वतंत्र साहित्यदर्शनाचार्य गोस्वामी दामोदरलालजी शास्त्री, महामहोपाध्याय पं० देवीप्रसादजी शुक्ल कवि-चक्रवर्ती, पं० देवकीनंदनजी शास्त्री प्रिंसिपल-टीकमाणी-संस्कृत-कालेज काशी, साहित्याचार्य पं० ताराचंदजी भट्टाचार्य, वेदाचार्य पं० विद्याधरजी शास्त्री (अग्निहोत्री) प्रिंसिपल धर्म-विज्ञान-विभाग, हिंदू विश्वविद्यालय काशी, साहित्याचार्य पं० रामप्रियजी कवि,

पं० रामचंद्रजी शुक्ल प्रोफेसर हिंदू-विश्व-विद्यालय, काव्य-मर्मज्ञ सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार तथा साहित्य-रत्न बाबू रामचंद्रजी वर्मा (सहायक संपादक हिंदी-शब्द-सागर) ने समय-समय पर अपने अमूल्य परामर्श द्वारा सहायता पहुँचाकर इस ग्रंथ को गौरवान्वित किया है; अतः इन महानुभावों के हम अत्यंत कृतज्ञ हैं और इन्हें धन्यवाद देते हैं।

इनके अतिरिक्त 'माधुरी' एवं 'साहित्य-समालोचक' के संपादक पं० कृष्णविहारीजी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी महोदय ने अधिक कार्य-भार होते हुए भी हमारी प्रार्थना पर परिश्रम-पूर्वक प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका लिखकर इसको अधिक उपादेय बना दिया है, जिसके लिये हम उनके बड़े अनुगृहीत और कृतज्ञ हैं। विशेषतः कविवर पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, प्रोफेसर लाला भगवानदीनजी 'दीन' और साहित्य-रत्न पं० विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र 'मुकुंद' ने अपना बहुमूल्य समय देकर अपने सत्परामर्शों द्वारा इस ग्रंथ को उपयोगी बनाने में कोई बात उठा नहीं रखी है; अतएव हम इन तीनों महोदयों को अंतःकरण से अनेकानेक धन्यवाद देते हैं।

शुद्ध सच्चिदानंद परमात्मा के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति निर्दोष नहीं हो सकता। संसार में भूल-चूक सभी से होती है। हाँ, इतना अवश्य है कि जो लोग प्रौढ़ पंडित होते हैं, उनसे बहुत कम और हमारे ऐसे अल्पज्ञों से बहुसंख्यक भूलें होती हैं। जिस-पर यह अलंकार-शास्त्र तो बहुत ही विवाद-ग्रस्त तथा गहन है; और इसमें भूल न होना ही आश्चर्य की बात है, भूल होना तो प्रायः स्वाभाविक ही है। निदान हमारा ग्रंथ भी उक्त सिद्धांत का किसी प्रकार से अपवाद नहीं हो सकता; परंतु सहृदय सज्जन गुणों पर ही ध्यान देते हैं, दोषों पर नहीं। किसीने कहा भी है—

"दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्न निर्दोषं न निर्गुणम् ।
आवृणुध्वं यतो दोषान् विवृणुध्वं यतो गुणान् ॥"

अतः आशा है कि विद्वद्वृंद एवं प्रवीण पाठक-गण हमें भूलों के लिये केवल क्षमा ही नहीं करेंगे, अपितु हमें भूलों की सूचना देकर भविष्य में इस पुस्तक के सुधार करने में सहायक होते हुए अनुगृहीत भी करेंगे।

अंत में हम यह भी निवेदन कर देना चाहते हैं कि यह ग्रंथ विद्वद्वरों के समक्ष चाहे कैसा ही क्यों न सिद्ध हो; किंतु अलंकार का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों के लिये तो अवश्य कुछ न कुछ उपयोगी होगा। यदि ईश्वर की कृपा से हमारी यह धारणा सत्य हुई तो हम इतने से ही अपने परिश्रम को सफल और अपने-आपको कृतकृत्य समझेंगे।

विनम्र निवेदक—

अर्जुनदास केडिया

रतननगर (बीकानेर) निवासी

संप्रति काशीस्थ।

अलंकारों की अनुक्रम-सूची

श्री

भारती-भूषण

मंगलाचरण

श्रीगणेश-सरस्वती-स्तुति।

आर्य्या छंद।

वीणावाद्यप्रवीणां वाणीविततय वागधिष्ठात्रीम्।
वन्दे वारणवक्त्रं विकटं विघ्नाय विघ्नानाम्॥ ❀

कवित्त।

बिघन अतोक[1] ओक-ओक[2] अवलोकि, उमा-
उर मैं दया-प्रबाह उमग्यौ अपार है।
तिनके विनासन ग्रसन लौं गनेसजू को,
गिरिजा निजांगन तें बिरच्यौऽवतार है॥

---

१ भारी। २ स्थान।

❀ वीणा-वाद्य के बजाने में चतुर और वाणी की अधीश्वरी श्रीसरस्वतीजी को अपनी वाणी के विस्तार के निमित्त एवं हस्ती के मुखवाले तथा विकट (स्थूल-शरीर) श्रीगणेशजी को विघ्नों में विघ्न करने (विघ्न-निवारण) के लिये नमस्कार करता हूँ। यहाँ नमस्कारात्मक मंगल है। इस पद्य के 'वाद्य' का 'द्य' ह्रस्व ही समझना चाहिए; क्योंकि संस्कृत के 'प्रह्रेवा' पिंगल-सूत्र के अनुसार 'प्र' और 'ह्र' के पूर्व के अक्षर को लघु भी मान सकते हैं।

सुकुमारी सुंदरी कृसोदरी सिवा[1] पै सृज्यौ ,
थूल बिकराल लंबउदर कुमार है।
पूजि पाद, पूजा-पद-आदि दै अजादि[2] कह्यौ ,
"जय हो गनेस जै गनेस" बार-बार है ॥ ❀

दोहा ।

गिरा कला-सकलार्थमय करि[3] मोहि करिय कृतार्थ ।
प्रनवौं करिय परार्थ[4], निज गिरा[5] नाम चरितार्थ ॥

श्रीशिव-स्तुति ।

कवित्त ।

मख[6]-हन, मरदन-मयन[7], नयन त्रय ,
बट-तर अयन[8] रजत-परबत[9]-पर ।
चरम-बसन, तन भसम, प्रमथ गन ,
ससधर[10]-धरन, गरल-गर-गरधर[11] ॥
हरन-ब्यसन[12]-जन, करन-अमल-मन ,
भज मन! असरन-सरन अमर-बर ।
चढ़त बरद[13], बर बरद[14] प्रनत-रत ,
हरत जगत-भय, जय जय जय हर ॥

---

१ पार्वती । २ ब्रह्मादिक देवताओं ने पाद-पूजा करके आदि-पूजा का अधिकार दिया । ३ मेरी गिरा (वाणी) को सकल (चौंसठ) कलाओं से युक्त करके । ४ परोपकार । ५ सरस्वती । ६ यज्ञ । ७ काम । ८ घर । ९ कैलास । १० चंद्रमा । ११ गले में विष और गर-धर (विष-धर साँप) हैं । १२ दुःख । १३ बैल । १४ वर देनेवाले ।

❀ यहाँ आशीर्वादात्मक मंगल है ।

श्रीगंगा-स्तुति ।

सवैया ।

कारन आदि तिहारो कह्यौ कमलासनजू को कमंडलु कारो ।
दूजो भयौ घन स्याम[1] जबैं पदमापति[2] को पद पूत पखारो[3] ॥
त्यौं ही तृतीय भयौ है त्रिलोचन-जूट-जटान को घोर अँधारो ।
तीनहुँ[4] अंब ! अचंभित हैं लखि, कंबु-कदंबक-अंबु[5] तिहारो ॥

श्रीसाहित्य-स्तुति ।

छप्पय ।

प्रतिभा उभय प्रकार अवनि आधार बारि बर ।
प्रतिपादक-रमनीय-अर्थ-पद मूल मनोहर ॥
गुन-गुंफित त्रय बृत्ति साख सब रसिक-रिझावन ।
बृत्त-व्रात बहु पात, सुलच्छन सुमन सुहावन ॥
फल सरस-भाव-ध्वनि चित्र पुनि माली मुनि-कवि-आदि अरु ।
भरतादि ब्यास तुलसी, जयतु सुख-सर्मद साहित्य-तरु ॥❀

---

१ अत्यंत श्याम । २ विष्णु । ३ प्रक्षालन किया । ४ ब्रह्मा, विष्णु, महेश और त्रिलोक । ५ शंख-समूह के समान जल ।

❀ सहजा (ईश्वर-दत्त या पूर्व संस्कार-जन्य स्वयमेव प्राप्त साहित्य बीज रूप संस्कार) एवं उत्पाद्या (निपुणता और अभ्यास द्वारा स्वार्जित) ये दो प्रकार की प्रतिभाएँ (शक्ति) ही आधार रूप पृथ्वी एवं उत्तम जल हैं । "रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः" (रमणीय अर्थ देनेवाला शब्द) मनोहर मूल है । माधुर्यादि गुणों से ग्रथित उपनागरिकादि तीनों वृत्तियाँ सब साहित्य-रसिकों को प्रसन्न करनेवाली शाखाएँ हैं । नाना प्रकार के छंदों के समूह अनेक पत्र हैं । शुभ लक्षण मनोहर पुष्प हैं । स्थायी आदि चारों भावों सहित, शृंगारादि नवों रसों से युक्त ध्वनि (व्यंग्य) एवं

अलंकार

जिसमें स्पष्ट व्यंग्य के विना (अप्रधान रूप से कुछ आंतरीय व्यंग्य होते हुए) अथवा व्यंग्य के सर्वथा अभाव में काव्य के शब्दों वा अर्थों की चमत्कारिक रचना हो, उसको "अलंकार" कहते हैं। * यद्यपि इसके अनेक भेद होते हैं, तथापि प्राचीन आचार्यों ने उनको (१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार इन तीन भागों में विभक्त करके फिर इनके अंतर्भेद बनाए हैं।

शब्दालंकार

शब्दगत चमत्कार को 'शब्दालंकार' कहते हैं। † यदि ऐसे चमत्कारपूर्ण शब्दों के स्थान पर पर्यायवाची शब्द रख दिए जायँ तो चमत्कार न रहेगा। इनकी संख्या के विषय में ग्रंथकारों में मतभेद है; किंतु हमने निम्नोक्त आठ शब्दालंकारों का विवेचन समीचीन समझा है—

चित्र (अलंकार) फल हैं और साहित्य-निर्माता मुनि आदि-कवि (वाल्मीकि), भरतादि, भगवान् वेदव्यास एवं गोस्वामी तुलसीदास माली हैं। इस प्रकार का जो साहित्य-वृक्ष (सांसारिक) सुख तथा शर्म (परम-शांति) दायक है, उसकी जय हो। यहाँ 'वस्तुनिर्देशात्मक' मंगल है।

* इसका सविस्तर वर्णन भूमिका में किया गया है।

† व्याकरणादि शास्त्रों में शब्द को ब्रह्म माना है। यथा—

(१) अनुप्रास

जहाँ केवल वर्ण[1] (अक्षर) की अथवा स्वर-सहित वर्ण की समता हो (एक बार कथन किए हुए वर्ण का फिर कथन किया जाय), वहाँ 'अनुप्रास' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥"
—भर्तृहरि (वाक्यपदीय ब्रह्मकांड)।

अर्थात् आदि-अंत-रहित जो नित्य ब्रह्म है, वही शब्द का स्वरूप है और वही अर्थ भाव से जगत् में विवर्त रूप से प्रतीत होता है। पुनः—

"शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम्।
अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत्॥"
—श्रीमद्भागवत (एकादश स्कंध)।

इन प्रमाणों से शब्द का विशेष महत्व सिद्ध होता है और वही शब्द-ब्रह्म परंपरा से वैखरी (मुख से जो शब्द बाहर निकलता है, उसको वैखरी बाणी कहते हैं) रूपी विवर्त द्वारा अर्थ को समझाता है, अर्थ से पहले श्रवण द्वारा शब्द का ही अनुभव होता है; अतः अर्थालंकारों से पहले शब्दालंकार लिखे गए हैं।

१ अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः (स्वर) और क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व, श ष स ह, (व्यंजन) ये सब वर्ण (अक्षर) कहलाते हैं। इनकी समता यों है—'अति उदार' में अ, उ की तथा 'कंचन-कलश' में 'क' की। २ यथा—'राम नाम' में प्रथम अक्षर में मिले हुए 'आ' (ा) स्वर-सहित 'म' अक्षर की।

१ छेकानुप्रास

जिसमें एक अक्षर वा अनेक अक्षरों की, स्वर-संयुक्त वा अक्षर मात्र की समता (दो बार कथन) हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

मैं हौं एक मात्र सो अनेक होहुँ इच्छा भई,
चित्त मैं स्वतै ही स्वतःसिद्ध[1] सुखकंद के।
ताही छिन ताके संकलप ही तें बिस्व-बीज[2],
प्रगट्यौ बिरंचि, बीच नाभि-अरबिंद के॥
ताके भए मन तें मरीचि अत्रि आदि पुत्र,
अत्रि के भयौ है चंद औसर अनंद के॥
तासु बंस माँहि भो ययाति भयौ ताके यदु,
पुरुषा ये कान्हर कटैया दुख द्वंद के॥

यहाँ 'एक नेक' में 'ए' स्वर युक्त 'क' का, 'चंद नंद' में अनुस्वार-युक्त 'द' का तथा 'बिस्व-बीज', 'बिरंचि बीच', 'मन मरीचि', 'अत्रि आदि', 'औसर अनंद', 'कान्हर कटैया' एवं 'दुख द्वंद' में क्रमशः ब, ब, म, अ, अ, क, द, वर्णों का सादृश्य (दो दो बार कथन) है।

२ पुनः यथा—दोहा।

कवि केसव-आसय गहन, गूढ़ अमल अकलंक।
मैं मतिरंक कह्यौ चहौं, ज्यौं सिसु चहै मयंक॥

यहाँ भी 'कवि केसव' में 'क' की, 'गहन गूढ़' में 'ग' की, 'अमल अकलंक' में 'अ' की और 'मैं मतिरंक' में 'म' की आवृत्ति हुई है।

---

१ परमात्मा। २ कारण।

३ पुनः यथा—दोहा ।

मुख मंजुल सुखमहिं लसत, मित्र-मयूखनि[1] कंज ।
चख अंजन-अंजित, झखरु खंजन चपल सुरंज ॥

यहाँ भी 'मुख मंजुल' एवं 'मित्र-मयूख' में 'म' की, 'मुख सुख' में 'उ' स्वर के साथ 'ख' की, 'चख झख' में 'अ' स्वर-सहित 'ख' की, और 'अंजन-अंजित' में 'अ' 'ज' की आवृत्ति हुई है ।

सूचना—कुछ ग्रंथकारों का मत है कि केवल एक अक्षर का सादृश्य होने से 'छेकानुप्रास' नहीं हो सकता; किंतु प्रायः ग्रंथकारों के मत से और हमारे विचार से एक वर्ण की समता से 'छेकानुप्रास' अवश्य हो जाता है । जैसे—उपर्युक्त तीनों पद्यों के 'बिम्ब-बीज' में 'ब' की, 'कवि केसव' में 'क' की एवं 'मुख मंजुल' में 'म' की है । किंतु यदि यही समता 'अमल अकलंक' में 'ल' की, 'मतिरंक कह्यौ' में 'क' की एवं 'खंजन सुरंज' में 'ज' की मानी जाय तो चमत्कार का अभाव होगा ।

२ वृत्ति अनुप्रास

जिसमें वृत्तियों के नियमित वर्णानुसार एक वा अनेक अक्षरों का स्वर-संयुक्त वा केवल अक्षर का अधिक बार सादृश्य हो (तीन वा अधिक बार कथन हो)। वृत्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं—

(क) उपनागरिका (वैदर्भी) वृत्ति

जिसमें प्रायः माधुर्य गुण[2]-सूचक वर्णों से वर्णन किया जाय, वह 'उपनागरिका' वृत्ति होती है—

---

१ सूर्य की किरणों से । २ प्रसाद गुण तीनों वृत्तियों में व्याप्त रह सकता है ।

यह वृत्ति शृंगार, करुणा एवं हास्य रस में उपयोगी होती है। इसके दो भेद हैं—

[१] एक अक्षर-समता

१ उदाहरण यथा—दोहा।

पंचम[1]-पूरित जो करै, पिय-पुर पहुँचि पुकार।
तो पावै प्रिय पथिक पिक! तुहुँ परभृत[2] उपकार॥

यहाँ माधुर्य गुण-व्यंजक[3] एक पकार की कई बार आवृत्ति है, रकार लघु हैं और टवर्ग का अभाव है।

२ पुनः यथा—सवैया।

अकलंक मयंक सो आठम को रचि श्रीहरि-ही रिझिएँ ही गयौ।
सुखमा की सभा दरबार-सिँगार को सार निकार लिएँ ही गयौ॥
गुन-आगर रूप-उजागरता नय नागरताई दिएँ ही गयौ।
लिखतो पति-प्यार अपार लिलार बड़ो करतार किएँ ही गयौ॥

यहाँ भी टवर्ग-रहित प्रायः मधुराक्षरों की रचना है और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में 'आ' स्वर-सहित रकार का अनेक बार प्रयोग हुआ है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

कंकन करन कल किंकिनी कलित कटि,
कंकन कँगूर कुच केस-कारी-यामिनी।
कानन करनफूल कोमल कपोल कंठ,
कंबुक-कपोत-ग्रीव कोकिला कलामिनी[4]॥

---

१ गाने का स्वर-विशेष। २ अन्य द्वारा पाला हुआ। ३ बोध करानेवाला। ४ बोलनेवाली।

केसर कुसुंभ कलधौत[1] की कछू न कांति,
कोबिद 'प्रबीन-बेनी' करिवर-गामिनी।
कोक-कारिका[2] सी किन्नरीक-कन्यका सी कैधौं,
काम की कला सी कमला सी कोई कामिनी॥
—बेनी-प्रबीन-बाजपेयी।

यहाँ भी केवल मधुराक्षर ककार की अनेक बार आवृत्ति हुई है और अनुस्वारों की अधिकता है।

४ पुनः यथा—कवित्त।

बालक बनावै बुध बिमल बिबेकवंत,
बिबिध बजावै बीन बीन-बैनवारी है।
बेदन बखानी, बेद-बानी तैं बखानी बानी!
बिबुध-बिपच्छिन[3] की बुद्धि लैनवारी है॥
बारी बैसवारी बर बिसद सवारी, बेष
बिमल बिराजै बारिजात-नैनवारी है।
बिधु से बदनवारी बैठिकै बदन-बारी[4],
बेदन-बदनवारी बुद्धि दैनवारी है॥
—शिवकुमार 'कुमार'।

यहाँ भी मधुराक्षर बकार की अनेक आवृत्तियाँ हैं और प्रायः इसी वृत्ति के अक्षर हैं।

[२] अनेक अक्षर-समता

१ उदाहरण यथा—सोरठा।

चरचा-नंदकिसोर, अरचा उनही की करै।
बर चाहै नहिं और, हर चाहै बिधि होंहिं किन॥

---

१ सुवर्ण। २ कोकशास्त्र की कारिका (सूत्र)। ३ शत्रु। ४ खिड़की।

यहाँ टवर्ग-वर्जित प्रायः मधुराक्षरों की योजना है और चारों चरणों में 'अ' स्वर के साथ रकार चकार का सादृश्य है।

२ पुनः यथा—सोरठा।

सिद्धि-सदन मुद-मूल, मदन-कदन-सुत गज-बदन।
बिघन-हरन, अनुकूल कीजिय गन सबदन बरन॥

यहाँ भी टवर्ग-रहित मधुराक्षरों की रचना है और 'अ' स्वर-युक्त 'द' 'न' की कई बार समता है।

३ पुनः यथा—सोरठा।

बिकसत बौर[1]-मिठास, निकसत नव पल्लव निदरि।
पिक! सतराय[2] पलास, धिकसत सेवत मंदमति॥

यहाँ भी चारों चरणों में 'इ' स्वर-युक्त 'क' 'स' 'त' अक्षरों की समता और प्रायः मधुराक्षरों की रचना है।

४ पुनः यथा—कवित्त।

मीन-मन-रंजन त्यौं खंजन मुदित मन,
कूदत कबहुँ बन[3] सघन सिधारे हैं।
बिकसत कंज हरषत ही[4]-हरिन-पुंज,
दीखत दुख्यारे कबहूँक मन मारे हैं॥
समता मिलें तें उपमान सब राजत पै,
कबहूँ अनादर तें लाजत बिचारे हैं।
रोचन सकल सोच-मोचन मरोरवारे,
वे ही अनरोचन बिलोचन तिहारे हैं॥

१ आम्र-पुष्प। २ गर्व करके। ३ जल और जंगल। ४ हृदय।

यहाँ भी चतुर्थ चरण में 'ओ' स्वर-युक्त 'च' 'न' अक्षरों की समता है।

(ख) परुषा (गौड़ी) वृत्ति

जिसमें प्रायः ओज गुण-व्यंजक परुषाक्षरों[1] का प्रयोग हो, वह 'परुषा वृत्ति' होती है—

(अ) इस वृत्ति के लिये ट, ठ, ड, ढ, श, ष, व्यंजन नियत हैं।

(आ) द्वित्व वर्ण; यथा—स्वच्छ, मत्त, युत्थ, मल्ल आदि और संयुक्त वर्ण; यथा—लक्ष, पुष्ट आदि हों।

(इ) रकार-मिश्रित वर्ण तथा रेफ-युक्त हों; यथा—चक्र, पत्र, तर्क, दर्प आदि।

(ई) लंबे (अधिक शब्दों के) समास हों।

यह वृत्ति रौद्र, वीर एवं भयानक रस में उपयोगी होती है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

उलटि वृच्छ, फल भच्छि, हनि रच्छक रच्छस लक्ख।
कटकटाय मर्कट-मुकुट, झट पटकेउ भट अक्ख[2]॥

यहाँ ओज गुण-बोधक द्वित्व वर्ण एवं टकार की भरमार और रेफ है।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

बच्छ माल तच्छक बिसाल की। अच्छ[3] दच्छ-दुहिता-कपाल की॥

---

1 कठोर अक्षर। २ रावण का पुत्र अक्षयकुमार। ३ रुद्राक्ष की।

यहाँ भी 'अ' स्वर-पूर्वक ओज गुण-वर्द्धक द्वित्व अक्षर 'च्छ' की अनेक आवृत्तियाँ हैं।

३ पुनः यथा—कवित्त।

राम! भुव-मंडल-अखंडल[1] तिहारे भुज-
दंड लेत कोदँड अखंड बैरी कूटे जात।
मंडि ना सकत रन-मंडल, अखंड तेज
खंडे खंड-खंड के मवास बास लूटे जात॥
चलत उदंड दल-मंडल-बितुंड-झुंड,
खैंचे सुंडादंडनि उदग्ग[2] दुग्ग[3] छूटे जात।
छंडे दिग-मंडरीक पुंडरीक[4] भू को भार,
कुंडली सँकोरै फन पुंडरीक[5] फूटे जात॥

—कुमारमणि भट्ट।

यहाँ भी 'अं' एवं 'उं' स्वर-युक्त ओज-गुण-वर्द्धक डकार की अनेक आवृत्तियाँ हैं, द्वित्व वर्ण हैं और टकार का प्रयोग भी है।

(ग) कोमला (पांचाली) वृत्ति

जिसमें प्रायः य, र[6], ल, व, स, ह, व्यंजनों का व्यवहार हो और समास का अभाव हो वा छोटे समास हों, वह 'कोमला वृत्ति' होती है। यह वृत्ति शांत, अद्भुत और वीभत्स रस में व्यवहृत होती है।

---

१ इंद्र। २ उदग्र (ऊँचे)। ३ दुर्ग (गढ़)। ४ एक दिग्गज। ५ श्वेत छत्र। ६ यहाँ दीर्घ रकार से तात्पर्य है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

इहिं असार संसार मैं, सार चार कह ब्यास।
गंग-सलिल सत-संग सिव-सेवन कासी-बास॥

यहाँ सकार की अनेक आवृत्तियाँ और ल, व, ह अक्षरों का बाहुल्य है; अतः यह माधुर्य तथा ओज गुण-रहित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

गोपी ग्वाल माली जुरे आपुस मैं कहैं आली!
कोऊ जसुधा के अवतर्‍यौ इंद्रजाली है।
कहै 'पद्माकर' करै को यौं उताली जापै,
रहन न पावै कहूँ एकौ फन खाली है॥
देखैं देवताली भई बिधि के खुसाली कूदि,
किलकत काली हेरि हँसत कपाली है।
जनम को चाली एरी अद्भुत है ख्याली आजु,
काली की फनाली पै नचत बनमाली है॥

—पद्माकर।

यहाँ भी 'आ' स्वर-सहित लकार की अनेक आवृत्तियाँ हैं।

सूचना—राजपूताने के बारहठ कवियों में पिंगल की भाँति 'डिंगल' छंद-शास्त्र का भी प्रचार है। पद्य के प्रत्येक चरण का प्रथम शब्द जिस अक्षर के आदि का हो, उसी अक्षर के आदि का कम से कम एक और शब्द उसी चरण में रखने का नियम इसमें अनिवार्य है। इससे 'अनुप्रास' का चमत्कार होता है। इसका नाम 'बैण-सगाई' प्रसिद्ध है (इसका उल्लेख श्रीउत्तमचंद-भंडारीकृत 'अलंकार-आशय' नामक ग्रंथ में भी है।)—

१ उदाहरण यथा—सोरठा ।

कीजै कृपा बिसेस, मा करणी[1] ! करणी-सुमति ।
पूजै पूरब[2] 'देस', उत्तर[3] 'णोक' अणी-धणी[4] ॥

यहाँ 'कीजै' 'कृपा', 'मा' 'मति', 'पूजै' 'पूरब' और 'उत्तर' 'अणी' शब्दों में 'वैण-सगाई' है ।

२ पुनः यथा—सोरठा ।

जा बिन रह्यौ न जाय, एक घड़ी अळगो हुवाँ ।
दोष करै बे-दाय[5], रोष न कीजै राजिया ! ॥

—बारहठ कृपाराम ।

यहाँ भी 'जा' 'जाय', 'एक' 'अळगो', 'दोष' 'दाय' और 'रोष' 'राजिया' क्रमशः चारों चरणों में कहे गए हैं ।

३ पुनः यथा—सोरठा ।

आवै बस्तु अनेक, हद नाणो गाँठै हुवै ।
अकल न आवै एक, कोड़ रुपैये 'किसनिया' ॥

—किशनिया ।

यहाँ भी चारों चरणों में 'आवै' 'अनेक' आदि 'वैण-सगाई' हैं ।

विशेष सूचना—कई ग्रंथों में स्वर-समता के विना, व्यंजन मात्र की समता ही (इस अलंकार के लक्षण में) पर्याप्त मानी गई है; किंतु हमारे विचार से केवल व्यंजन-सादृश्य के अतिरिक्त स्वर-व्यंजन दोनों की समता से भी अवश्य यह अलंकार होता है । और केवल वर्ण-समता की अपेक्षा स-स्वर वर्ण-समता के उदाहरण कहीं अधिक होते हैं । 'चंद्रालोक'

---

१ श्रीकरणी देवी । २ प्रथम । ३ पश्चात् । ४ 'देशणोक' नामक ग्राम में राजा लोग पूजते हैं । ५ व्यर्थ ।

के छेक तथा वृत्ति अनुप्रास के लक्षणों और उदाहरणों से भी स्वर-व्यंजन दोनों का सादृश्य स्पष्ट रूप से मान्य है—

छेकानुप्रास—

"स्वरव्यञ्जनसन्दोहव्यूढाः सन्दोहदोहदाः ।
गौर्जगज्जाग्रदुत्सेका च्छेकानुप्रासभासुरा ॥"

वृत्ति अनुप्रास—

"अमन्दानन्दसन्दोहस्वच्छन्दस्यन्दमन्दिरम् ।"

वीररसाचार्य 'भूषण' ने भी सस्वर व्यंजनों की समता कैसी स्पष्ट लिखी है—

"स्वर-समेत अक्षर कि पद, आवत सदृस प्रकास ।
भिन्न अभिन्ननि पदनि कहि, छेक लाट अनुप्रास ॥"

इसी प्रकार श्रीउत्तमचंद-भंडारी-कृत 'अलंकार-आशय' नामक भाषा-ग्रंथ में भी व्यंजन के साथ स्वर-समता का स्पष्ट विधान है ।

इसके अतिरिक्त संस्कृत एवं भाषा के उदाहरणों से भी स्वर-समता स्पष्ट सिद्ध होती है—

"भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम् ।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेतिगर्जनम् ॥"

—रामरक्षा स्तोत्र ।

"चण्डकोदण्डखण्डनम्"

—रामस्तवराज स्तोत्र ।

"पिय-हिय की सिय जाननिहारी, मनि-मुँदरी मन मुदित उतारी ।"

—रामचरित-मानस ।

जो 'अंत्यानुप्रास' संस्कृत-साहित्य में इस अलंकार का भेद माना गया है, उसके लक्षण में भी स्वर-युक्त व्यंजन के सादृश्य का विधान है—

"यथास्थितं व्यञ्जनमादिमेन
स्वरेण पादस्य पदस्य वाऽन्ते।
आवर्त्तते प्रज्ञ गिराऽयमन्त्याऽ-
नुप्रास उक्तो भृशमुल्लसन्त्या ॥"
—कविकंठाभरण।

अर्थात् जिसमें किसी शब्द वा चरण के अंत में वर्ण की समता, उसके आदि-अक्षर की स्वर-समता-सहित हो, उसको 'अंत्यानुप्रास' कहते हैं।

केवल वर्ण-समता की तरह वर्ण-समता के विना स्वर-समता मात्र के प्रसिद्ध कवियों के उदाहरण भी भाषा में पाए जाते हैं—

"बिघन-हरन मंगल-करन, 'तुलसी' सीताराम।
अष्ट सिद्धि नव निद्धि के, बर-दायक हनुमान॥"
—गो० तुलसीदास।

"कण कीड़ी, मण कुंजराँ, अनड़पंख[1] गज पंच।
मोती देत मराल कों, पूरत हैं भगवंत॥"
—अज्ञात कवि।

---

(२) लाटानुप्रास

जहाँ वाक्य वा शब्द और अर्थ में भेद न हो और आवृत्ति हो; किंतु केवल अन्वय करने से तात्पर्य में भिन्नता हो जाय; वहाँ 'लाटानुप्रासालंकार' होता है। इसके दो भेद हैं—

१ वाक्यावृत्ति

जिसमें वाक्य (अनेक शब्दों) की आवृत्ति हो।

---

१ एक बड़ा पक्षी।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

सुत सपूत तो है बृथा, धन-संचय को खेद ।
सुत कपूत तो है बृथा, धन-संचय को खेद ॥

यहाँ शब्द एवं अर्थ में भेद नहीं है। केवल पूर्वार्द्ध के (सपूत के) 'स' और उत्तरार्द्ध के (कपूत के) 'क' के साथ अन्वय करने से तात्पर्यों में भिन्नता हुई है और वाक्य की आवृत्ति है।

२ पुनः यथा—दोहा ।

पूजे पितर भए सबैं, सुकृत याग तप त्याग ।
पूजे पितर न, गे सबैं, सुकृत याग तप त्याग ॥

यहाँ भी शब्द एवं अर्थ अभेद है और पूर्वार्द्ध के 'भए' एवं उत्तरार्द्ध के 'न गे' के साथ अन्वय होने के कारण तात्पर्यों में भेद हुआ है।

३ पुनः यथा—दोहा ।

स-धरम-अर्जित अर्थ की, रक्षा करिय किमर्थ ।
अ-धरम-अर्जित अर्थ की, रक्षा करिय किमर्थ ॥

यहाँ भी समस्त पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध का लाट है, जिसमें 'स' और 'अ' के अन्वय मात्र से तात्पर्य-भिन्नता हुई है।

२ शब्दावृत्ति

जिसमें एक शब्द की आवृत्ति हो। इसके दो भेद होते हैं—

(क) जिसमें मुक्त (समास-रहित) शब्द की आवृत्ति हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

लाल बिलोचन लाल पल, लालहि जावक भाल ।
रस-रंजित चित लाल अब, बने बिहारीलाल ! ॥

यहाँ पूर्वार्द्ध में एकार्थवाची 'लाल' शब्द का तीन बार व्यवहार हुआ है, जिनमेंसे प्रथम 'लाल' का 'बिलोचन' द्वितीय का 'पल' और तृतीय का 'जावक' शब्द से अन्वय होने के कारण सबके तात्पर्यों में भिन्नता हुई है।

२ पुनः यथा—सवैया।

पृश्नि[1] सती सुतपा सु प्रजापति, दंपति श्रीपति तें बर पाइकै।
देवकी औ बसुदेव भए तिनके मथुरा प्रगटे प्रभु आइकै॥
त्यौं बर दै बसु द्रोण धराहिँ[2] भए सुत नंद यसोमति माइ कै।
दासी ह्वै मुक्ति रही ब्रज मैं रह्यौ गोकुल तें गऊ-लोक लजाइकै॥

यहाँ भी 'पति' शब्द की तीन आवृत्तियाँ हैं। प्रथम का 'प्रजा' द्वितीय का 'दं' एवं तृतीय का 'श्री' के साथ अन्वय होने के कारण सबमें अभिप्रायांतर हुए हैं।

(ख) *जिसमें समासगत शब्द की आवृत्ति हो। इसके तीन भेद होते हैं—*

[१] जिसमें लाट का एक शब्द समास-युक्त और एक विना समास का हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कीन्हहु कृपा कृपायतन, दीन्हहु दुर्लभ देह।
अब अधमन-सिर-मौर लखि, तोरन लगे सनेह॥

यहाँ 'कृपा' शब्द का लाट है। प्रथम 'कृपा' विना समास का और दूसरा समास-युक्त है। इनमेंसे प्रथम का 'कीन्हहु' और द्वितीय का 'आयतन[3]' शब्द से अन्वय होने के कारण तात्पर्यांतर हुआ है।

---

१ देवकी और वसुदेवजी पूर्वजन्म में पृश्नि एवं सुतपा प्रजापति थे।
२ नंद और यशोदा पूर्वजन्म में द्रोण और धरा (इनकी भार्या), वसु थे। ३ स्थान।

२ पुनः यथा—दोहा।

संकर! सं[1] कतहुँ न लह्यौ, दौरि रह्यौ चहुँ ओर।
करुनाकर! करुना करौ, बिनय करौं, कर जोर॥

यहाँ भी 'करुना' शब्द का लाट है, जिनमेंसे प्रथम समास-युक्त और दूसरा विना समास का है। प्रथम का 'आकर' और द्वितीय का 'करौ' शब्द से अन्वय होने के कारण तात्पर्यों में भिन्नता हुई है।

[२] जिसमें भिन्न-भिन्न समासों में लाट के शब्द हों।

१ उदाहरण यथा—भुजंगी (अर्द्ध)।

महावीर बीराग्रनी बीर-पूजे। इन्हैं देखिकै धीर बीरों के धूजे।

यहाँ एकार्थवाची 'बीर' शब्द की तीन आवृत्तियाँ हैं। प्रथम का 'महा' द्वितीय का 'अग्रनी' एवं तृतीय का 'पूजे' शब्द के साथ भिन्न-भिन्न समासों में अन्वय होने से तात्पर्यांतर हुए हैं।

२ पुनः यथा—कवित्त।

बानी-बाल-बानी[2] बेद-बानी औ बिबुध-बानी[3],
ऋषिन बखानी ते न पूरी पहिचानिए।
अन्य देस-बानी काव्य-अंगन-अयानी अति,
जानी मनमानी पै न पंडित प्रमानिए॥
ठाकुर–बिहारी–ब्रह्म–केसव–कवित्तन की,
कहाँ लौं कहै, को कवि कीरति-कहानिएँ।
श्रौन[4]-अभिलाषा भूमि-भारती-पताका, ऐसी,
भाषा जो न जानै ताहि साखामृग[5] जानिए॥

---

१ शं=कल्याण। २ सरस्वती की बाल-बाणी (प्राकृत)। ३ संस्कृत। ४ कान। ५ बंदर।

यहाँ भी एकार्थवाचक 'बानी' शब्द की तीन आवृत्तियाँ हैं। प्रथम का 'बाल' द्वितीय का 'बेद' और तृतीय का 'बिबुध' शब्द से भिन्न-भिन्न समासों में अन्वय होने से तात्पर्यांतर हुए हैं।

[३] जिसमें एक ही समास में लाट के (दो वा अधिक) शब्द हों।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

मेरे मनमोहन की मूरति मिली है जिमि,
तेल मैं सुबास ताहि कैसे, क्यौं निकारौं मैं ?।
त्रास गुरुजन को, उसास सौति-गन को त्यौं,
हास सखियन को न लेस उर धारौं मैं॥
स्याम तामरस की सुबास सुकुमारता त्यौं,
मार[1]-मुख-मोर[2] मन-मारि अनुहारौं मैं।
नंद-चख-चंद, चंद-बंस-नभ-चंद, ब्रज-
चंद-मुख-चंद पै अनेक चंद वारौं मैं॥

यहाँ 'चंद-बंस-नभ-चंद' एवं 'ब्रज-चंद-मुख-चंद' समासों में एकार्थवाची 'चंद' शब्द की आवृत्ति हुई है।

२ पुनः यथा—दोहार्द्ध।

जलद ! जलधि-जल-युक्त ह्वै, तू कत करत गुमान।*

यहाँ भी 'जलधि-जल-युक्त' एक ही समास में एकार्थवाची 'जल' शब्द का दो बार प्रयोग हुआ है।

सूचना—हिंदी में संस्कृत की तरह विभक्ति-युक्त पद नहीं होते, कारक के चिह्न ऊपर से लगते हैं। जैसे—राम का, राम से इत्यादि।

---

१ काम। २ मरोड़।

* पूरा पद्य तीसरे 'प्रतीप' में देखिए।

हिंदी में केवल कुछ सर्वनाम ही पद के रूप में आते हैं। जैसे—तुम्हारा, जिन्हें इत्यादि। इसीसे 'लाटानुप्रास' में हमने संस्कृत-ग्रंथों के समान पद और नाम का भेद नहीं रखा है।

---

(३) यमक

जहाँ किसी शब्द वा वाक्य (जिनके स्वर एवं व्यंजन समान हों) की आवृत्ति[१] हो और अर्थ भिन्न-भिन्न हों, वहाँ 'यमकालंकार' होता है। इसके मुख्य पाँच भेद[२] हैं—

१ प्रथम उत्तम यमक

जिसमें छंद के चारों चरणों में यमक हों। इसके दो भेद हैं—

(क) *पादांत यमक अर्थात् जिसमें पद्य के प्रत्येक चरणांत में यमक हो।*

१ उदाहरण यथा—सवैया।

बारि-बहावन छावन ताप-निदाघ-नसावन हे घन-सावन!।
जाइ वहाँ कहियौ भर लाइ मयूर-नचावन पूरन चावन॥
'क्यौं बिसरे जिय जानत हू मम रोमन-भावन[३] की मन-भावन!॥
आव अबैं न तचाव इतो तन सौतन-दावन[४] बेतन-दावन'[५]॥

---

१ उसी शब्द का पुनः पुनः प्रयोग होना। २ इसके अगणित भेद हो सकते हैं जिनमें सबसे अधिक महाकवि केशवदास की 'कविप्रिया' में हैं; किंतु हमने उक्त पाँच ही भेद माने हैं। इनमें प्रथम श्रेष्ठ, फिर क्रमशः उत्तरोत्तर निकृष्ट हैं। ३ रोम-रोम के भावों की। ४ दाँव-पेंचों से। ५ काम की दावाग्नियों से।

यहाँ चारों चरणों के अंत में 'घनसावन' 'रनचावन' 'मनभावन' तथा 'तनदावन' पाँच-पाँच अक्षरों के यमक आए हैं।

२ पुनः यथा—कवित्त।

पीरामल प्रेरे-जल-अन्न-जननाहजू के,
बसते 'बिसाऊ' आइ आदि सबसे बसे।
नाती महानंद नंदराम लघु भ्रात जाके,
बीसौं अंगुरीन चक्र-चिन्ह बल से लसे॥
रामपरताप सोभाराम हरदेवदास,
डूँगरसी पुत्र भए वीर बर सेर से।
नीको नाहिं काहू सौं विसेष सहवास जान,
आन ठान जान-लौं[1] बिमान बिकसे कसें[2]॥ ❀

यहाँ भी चारों चरणों के अंत में भिन्नार्थवाची दो दो अक्षरों के चार यमक क्रमशः 'बसे' 'लसे' 'रसे' 'कसे' आए हैं।

(ख) चतुष्पाद यमक अर्थात् जिसमें प्रत्येक चरण में कहीं यमक वा शब्द हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

श्रुति-सार-द[3] दुति जान जस, सारद[4]-सोम समान।
सुमिरौं सारद[5] सुमिरि सब, भए बिसारद[6] जान॥

---

१ जाने के लिये। २ जीन कसे हुए वाहन शोभित हुए। ३ सार को देनेवाली। ४ शरद ऋतु का। ५ शारदा। ६ विशारद = पंडित।

❀ यह पद्य ग्रंथकर्ता के 'काव्य-कलानिधि' नामक ग्रंथ में के वंश-वर्णन का है।

यहाँ चारों चरणों में भिन्नार्थवाची 'सारद' शब्द का यमक है।

२ पुनः यथा—दोहा।

आन[1] कियहु भयभीत ह्वै, आनन[2] ही सकुचाइ।
हठनि दिखावति आन[3] अँग, आनख-सिखनि[4] दुराइ॥

यहाँ भी चारों चरणों में 'आन' शब्द का यमक है।

३ पुनः यथा—दोहा।

विषयन-रत न भज्यौ कबहुँ, बानर-तनय-सहाइ[5]।
नर-तन दुर्लभ लहि कहा, न रतन दियौ गँवाइ[6]?॥

यहाँ भी चारों चरणों में 'नरतन' शब्द का यमक है।

४ पुनः यथा—दोहा।

बस न हमारो[7] करहु बस[8], बस अब राखहु लाज[9]।
बसन देहु[10] ब्रज मैं हमैं, बसन[11] देहु ब्रजराज॥

—अज्ञात कवि।

यहाँ भी चारों चरणों में 'बस' शब्द का यमक है।

२ द्वितीय मुक्त पद-ग्राह्य यमक

जिसमें प्रथम चरण के अंत का शब्द दूसरे चरण के आदि में एवं दूसरे के अंत का तीसरे के आदि में,

१ शपथ। २ मुख। ३ अन्य। ४ नख से शिखा पर्यंत। ५ जिनके हनुमानजी सहायक हैं, उन रामजी को। ६ क्या रत्न नहीं खो दिया?। ७ हमारा कुछ वश नहीं। ८ वश में कीजिए। ९ बस, अब लाज रखिए। १० बसने दो। ११ वस्त्र।

इसी प्रकार चारों चरणों में आदि-अंत के शब्दों की शृंखला[1] हो। इसको 'सिंहावलोकन' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

दरसे बिन मोहनी मूरति लालची लोचन भे कुढ़ि कातर से।
तरसे ही रहैं न लहै पतियाँ पिय प्यारे! तिहारे लिखी कर से॥
कर सेव बड़ों की बितायौ चहौं दिन पै भए द्रोपदी-अंबर से।
बरसे बिन नैन रहैं बरजे न, रहे बनि सावन-बादर से॥

यहाँ 'दरसे' 'तरसे' 'करसे' और 'बरसे' शब्दों के यमक हैं जो क्रमशः प्रत्येक चरण के अंत और उसके परवर्ती चरण के आरंभ में आए हैं।

२ पुनः यथा—सवैया।

जोरन लागी सनेह नयो, लट छोरिकै लागी छुवै छिति, छोरन[2]।
छोरन[3] लागी छपाकर की छबि चंदमुखी मुख ही की मरोरन॥
रोरन[4] रोकि रसालन को, रसना कसि लागी सुधा सी निचोरन।
चोरन लागी 'बिचित्र' चितै चित, कोरन दै अँखियाँ बरजोरन॥

—पं० मथुराप्रसाद पांडेय 'विचित्र'।

यहाँ भी 'जोरन' 'छोरन' 'रोरन' एवं 'चोरन' शब्दों के यमक, ऊपर के सवैया के समान, आए हैं।

३ यमक का तृतीय भेद

जिसमें यमक के दोनों शब्द निरर्थक हों।

---

१ जंजीर। २ लट के अग्रभाग से। ३ छीनना। ४ कोल ल।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

दुखन दहै न अराति को ?, राति-कोक के भाय ।
जिन सुकृतिन के तनक हू, श्रीरघुबीर सहाय ॥

यहाँ 'रातिको' शब्द का यमक है । 'अराति को ?' और 'राति-कोक' के अर्थ तो 'कौन शत्रु ?' और 'रात्रि के चक्रवाक' होते हैं; किंतु 'रातिको' दोनों जगह निरर्थक है ।

२ पुनः यथा—दोहार्द्ध ।

श्रीराधा राधा-रमन, मन-अधार मन धार ।

यहाँ भी 'धारमन' शब्द का यमक है । यह शब्द दोनों चरणों में निरर्थक रूप में है । यदि पूरे पद 'राधा-रमन' एवं 'अधार मन' यमक के होते तो 'श्रीकृष्ण' एवं 'आधार, मन में' अर्थ होता ।

३ पुनः यथा—द्रुतविलंबित छंद ।

चतुर है चतुरानन[1] सा वही ।
सुभग भाग्य-विभूषित भाल है ॥
मन ! जिसे मन में पर काव्य की ।
रुचिरता चिरताप-करी न हो ॥

—पं० रामचरित उपाध्याय ।

यहाँ भी 'चिरता' शब्द का यमक है जो दोनों स्थानों में निरर्थक है । हाँ, 'रुचिरता' का 'मनोहरता' और 'चिरताप' का 'बहुत समय तक रहनेवाला ताप' अर्थ होता है ।

---

१ ब्रह्मा ।

४ यमक का चतुर्थ भेद

जिसमें एक शब्द सार्थक और एक निरर्थक हो।

१ उदाहरण यथा—वसंततिलका छंद।

कर्ताऽविता त्रिजगतश्च तथाऽन्तको यः
सद्योगिनां पललचक्षुरलक्ष्यलक्ष्यः।
गोप्योऽधराऽमृतमवाप्य विमुक्तिमापु-
स्तं कुन्दसुन्दर रदं वरदं नतोऽस्मि॥ ❀

यहाँ 'रद' शब्द का यमक है। पहला 'रद' सार्थक और दूसरा निरर्थक है। यदि 'वरद' पूरा शब्द यमक में होता तो 'वर देनेवाला' अर्थ होता।

२ पुनः यथा—सोरठा।

प्रथम त्रिपथगा[1]-तीर, तीरथ-अधिपति[2]-तट दुतिय।
गृह[3], गंगा के नीर[4], तजे सरीर सहोदरनि॥ †

यहाँ भी 'तीर' शब्द का यमक है। प्रथम 'तीर' शब्द सार्थक और द्वितीय 'तीर' 'तीरथ' का एक खंड है; अतः निरर्थक है।

---

१ गंगा। २ तीर्थराज (त्रिवेणी)। ३ 'रतननगर' में। ४ हरिद्वार-प्रवाह में।

❀ जो त्रिलोक के कर्ता, रक्षक एवं नाश करनेवाले हैं, मांस-चक्षुओं से अलक्ष्य होते हुए भी श्रेष्ठ योगियों के लक्ष्य (निशाना) हैं; और जिनका अधरामृत प्राप्त करके गोपियाँ मुक्त हो गईं, उन कुंद की तरह सुंदर दाँतवाले वरदायक (श्रीकृष्ण) को नमस्कार करता हूँ।

† ग्रंथकर्ता के पिता-पितृव्य चार भाई थे, उनके देहांत का वर्णन है। यह पद्य 'काव्य-कलानिधि' के कवि-वंश-वर्णन का है।

३ पुनः यथा—द्रुतविलंबित छंद ।

मन ! रमा, रमणी, रमणीयता ।
मिल गईं यदि ये विधि-योग से ॥
पर जिसे न मिली कविता-सुधा ।
रसिकता सिकता सम है उसे ॥

—पं० रामचरित उपाध्याय ।

यहाँ भी 'सिकता' शब्द का यमक है । प्रथम शब्द निरर्थक और दूसरा सार्थक है ।

५ यमक का पंचम भेद

जिसमें दोनों शब्द सार्थक (अर्थवाले) हों । इसके तीन भेद हैं—

(क) *जिसमें दोनों शब्दों को खंडित करने पर अर्थ होता हो ।*

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

एक कह्यौ राजन ! रहत, राज-तनय तें राज ।
एक कह्यौ राजन ! रहत, राजत नय तैं राज ॥

यहाँ 'राजतनय' पद का यमक है । प्रथम का अर्थ 'राज-कुमार' और द्वितीय का 'नीति से शोभित' है । दोनों शब्द सार्थक और भिन्नार्थ हैं; परंतु भिन्न-भिन्न रूप से खंडित होने पर अर्थ देते हैं ।

२ पुनः यथा—सोरठार्द्ध ।

बातन जात न नाह !, जा तन जाकी चाह हो । ❀

❀ पूरा पद्य 'विवृतोक्ति' में देखिए ।

यहाँ भी 'जातन' पद का यमक है। प्रथम का अर्थ 'जाती नहीं' और दूसरे का 'जिस शरीर में' है। दोनों भिन्नार्थ, खंडित एवं सार्थक हैं।

३ पुनः यथा—दोहा ।

बर[1] जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न[2] ।
हरिनी के नैनानि तें, हरि ! नीके ये नैन ॥

—विहारी ।

यहाँ भी 'हरिनीके' पद का यमक है। प्रथम का अर्थ 'हरिनी + के' दूसरे का 'हरि + नीके' है; अतः भिन्नार्थ सार्थक एवं दोनों खंडित हैं।

(ख) जिसमें एक शब्द खंडित एवं एक अखंडित हो ।

१ उदाहरण यथा—कवित्त ।

दूरि दुरि जात दृग देखत सँताप, सिर
धारें, तनु-ताप बृषभानुजा[3] निवारै नित ।
सुबरन[4] मय मनि मानिक जरे हैं देखि,
भूखन[5] सुठौर और भूख न[6] चितारै चित ॥
आयौ सुर-लोक तें बनायौ यह दंडी[7] किधौं,
कवि-कुल कलस[8] बिलोकि यौं उचारै इत ।
राग[9] रस[10] चित्र[11] चारु लसत बिचित्र बृत्त[12],
पत्र पठयौ कै सिर-छत्र ही हमारै हित ॥*

---

१ श्रेष्ठ। २ मैंने नहीं देखे। ३ राधिका और ज्येष्ठ के सूर्य-जन्य (धूप)। ४ अच्छे अक्षर और स्वर्ण। ५ भूषण = अलंकार और आभूषण। ६ क्षुधा नहीं। ७ महाकवि दंडी और दंडवाला छत्र। ८ प्रधान एवं छत्र का कलश। ९ राग-रागिनी और ईर्ष्या। १० नवरस और अभिलाषा। ११ चित्र-काव्य और बेल-बूटे। १२ वृत्तांत और गोल।

* इस पद्य में पत्र और छत्र का श्लेष है। सखी के प्रति सखी की उक्ति है।

यहाँ 'भूखन' शब्द का यमक है। प्रथम का अर्थ 'आभूषण' और द्वितीय का 'भूख + न' होने से भिन्नार्थ है। प्रथम अखंडित, दूसरा खंडित और दोनों सार्थक हैं।

२ पुनः यथा—कवित्त-चरण।

चढ़त बरद बर बर-द प्रनत-रत,
हरत जगत-भय जय जय जय हर। *

यहाँ भी 'बरद' शब्द का यमक है। प्रथम 'बरद' का अर्थ 'वृषभ' एवं दूसरे का 'वर देनेवाला' होने से भिन्नार्थ, सार्थक हैं और प्रथम 'बरद' अखंडित एवं दूसरा खंडित है।

(ग) जिसमें दोनों शब्द अखंडित हों।

१ उदाहरण यथा—भुजंगी (अर्द्ध)।

हुई आप आयें तें आयें घनी हैं। वही राजधानी बनी चौगुनी है।

यहाँ श्रीबीकानेर-नरेश महाराज श्रीगंगासिंहजी की प्रशंसा में 'आयें' शब्द का यमक है। प्रथम का अर्थ 'आने से' एवं द्वितीय का 'आमदनी' है; अतः दोनों शब्द सार्थक, भिन्नार्थ और अखंडित हैं।

२ पुनः यथा—कवित्त।

सुषमा[१] सहज ही तें उपमा हजार हारीं,
मार[२]-मतवारी है अपार हाव-भाव तें।
राज़हंस कलहंस मानस बिहाइ जाइ,
मानस बसे हैं बंस-आदर-अभाव तें॥

---

१ सुंदरता। २ काम। * पूरा पद्य 'अमात्रिक चित्र' में देखिए।

लाज-काज काजर तें कारे गजराज बन,
भाजन लगे हैं भीति-भाजन स्वभाव तें।
गति-देवता है पतिदेवता![1] तिहारो पति,
एरी गति ऐसी तेरी तिनके प्रभाव तें॥

यहाँ भी 'मानस' और 'भाजन' इन दो शब्दों के यमक हैं। प्रथम 'मानस' का अर्थ मनुष्य, दूसरे का 'मानसरोवर' एवं प्रथम 'भाजन' का अर्थ 'पलायन' और दूसरे का 'पात्र' है; इससे ये सार्थक, भिन्नार्थ और अखंडित हैं।

३ पुनः यथा—सोरठा।

कली भली दिन चार, जब लगि मुख मूँद्यौ रहै।
देत डार तें डार, फूल्यौ सहै न फूल को॥

—अज्ञात कवि।

यहाँ भी 'डार' शब्द का यमक है। प्रथम का अर्थ 'शाखा' और द्वितीय का 'गिरा देना' है; अतः दोनों शब्द सार्थक, भिन्नार्थ एवं अभंग हैं।

सूचना—पूर्वोक्त 'लाटानुप्रास' में दोनों शब्द एकार्थवाची होते हैं, 'अनुप्रासालंकार' में स्वरों एवं व्यंजनों की आवृत्ति होती है। तथा यहाँ (यमक में) भिन्नार्थता और शब्द वा वाक्य की आवृत्ति होती है। यही भेद है।

---

(४) पुनरुक्तवदाभास

जहाँ भिन्न रूपवाले (जिनके स्वर व्यंजन समान न हों) शब्दों के श्रवणगत होते ही एकार्थ प्रतीत हो; किंतु

१ पतिव्रता।

वस्तुतः उनके भिन्न-भिन्न अर्थ हों, वहाँ 'पुनरुक्तवदाभास' अलंकार होता है। इसको 'पुनरुक्त प्रतीकाश' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अंबर-बास सने बसन, हरि लै चढ़े कदंब।
करहु सदय उनको हृदय, जगत-जोति जगदंब! ॥

यहाँ 'अंबर' 'बास' एवं 'बसन' शब्द एकार्थ-बोधक जान पड़ते हैं; किंतु वास्तव में 'अंबर' का सुगंधित वस्तु-विशेष, 'बास' का गंध एवं 'बसन' का वस्त्र अर्थ है।

२ पुनः यथा—सोरठा।

बाती-बिरति-बिचार, चित-दीपक, घृत भव-भगति।
नसत तिमिर-संसार, जगत जोति जब ज्ञान की ॥

—शिवकुमार 'कुमार'।

यहाँ भी 'भव' 'संसार' एवं 'जगत' शब्द एकार्थवाची जान पड़ते हैं; किंतु वस्तुतः उनका क्रमशः 'शंकर' 'विश्व' एवं 'प्रज्वलित होना' अर्थ है।

३ पुनः यथा—दोहार्द्ध।

राते फूल मँगाइए, लाल! सुमन तें आइ।

—अलंकार-आशय।

यहाँ भी 'राते फूल' और 'लाल सुमन' पद समानार्थवाची प्रतीत होते हैं, किंतु 'लाल सुमन' का अर्थ 'हे कृष्ण! प्रसन्न मन से' है।

सूचना—पूर्वोक्त 'यमक' अलंकार के शब्दों में भी भिन्नार्थता होती है; किंतु वहाँ शब्दों का आकार समान होता है और यहाँ भिन्न आकार-वाले शब्द होते हैं। यही 'यमक' से इसका भेद है।

(५) वक्रोक्ति-शब्द

जहाँ कहे हुए वाक्य का अन्य द्वारा अन्यार्थ कल्पित किया जाय, वहाँ 'शब्द-वक्रोक्ति' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ श्लेष-वक्रोक्ति

जिसमें, कहनेवाले ने जो वाक्य जिस अभिप्राय से कहा हो, सुननेवाला श्लेष द्वारा उसका कुछ और ही कल्पितार्थ करे। इसके दो भेद होते हैं—

(क) *सभंग पद अर्थात् जिसमें पद के टुकड़े होने पर अन्यार्थ हो*

१ उदाहरण यथा—सवैया।

अयि! देव नदीस सुता-पति[1] बोलि रहे कल कुंजन मैं चलु प्यारी।
ब्रज देव-नदी न सुनी सपने कबहूँ कहुँ काहु न ईस-कुमारी ॥
तजि तेह[2] चलौ तिल-फूल-नसौ! तिल-फूलन सी चलिहैं को गँवारी।
पटु हास-बिलासन यौं, भव-भीति हमारी हरौ बृषभानु-दुलारी ॥

यहाँ श्रीराधिकाजी से सखी ने कहा—"हे प्यारी! आपको देव, नदीश-सुता-पति (श्रीकृष्ण) बुला रहे हैं" तब श्रीराधाजी ने उक्त वाक्य के 'देव + नदी' और 'ईश + सुता' टुकड़े करके

---

१ नदीश (समुद्र) सुता (लक्ष्मी) पति (विष्णु-रूप श्रीकृष्ण)।
२ कोप।

कहा—"न तो ब्रज में देव-नदी (गंगा) है और न ईश (महादेवजी) को कन्या ही सुनी गई है"। फिर सखी ने कहा—"हे तिल-फूल-नसी! (तिल-फूलवत् नासिकावाली!) मान त्याग कर चलिए।" इसपर श्रीप्रियाजी ने इस पद के भी 'तिल + फूलन + सी' टुकड़े करके अपने-आपको चंपक-वर्णी मानते हुए कहा—"जो गँवारिन तिल-फूलों-सी होगी, वह चलेगी"। इस प्रकार पदभंग करके अन्यार्थों की कल्पना की गई है।

२ पुनः यथा—दोहा।

प्यार करै अनप्यार वा, मो मन रहत समान।
देत दुसह दुख पतिहिँ यह, सखि! समानता-बान॥

यहाँ भी नायिका ने सखी से कहा—"श्रीकृष्ण प्रसन्न रहें चाहे अप्रसन्न, मेरा मन तो समान (एक रंग) ही रहता है।" तब सखी ने 'समान' के 'स + मान' टुकड़े करके कहा—"यह आपकी मान-युक्त रहने की बान ही उनको अत्यंत दुःख देती है"; अतः यह सभंग है।

(ख) *अभंग पद अर्थात् जिसमें पूरे पद का अन्यार्थ किया जाय*

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अंबर-गत बिलसत सघन, स्याम पयोधर दोय।
देहु दिखाइ न राखिए, बलि कंचुकि-बिच गोय॥

यहाँ नायिका का कथन है—"हे श्याम! अंबर-गत (आकाश में) दो सघन पयोधर (बादल) शोभित हो रहे हैं"। उक्त शब्दों के टुकड़े न करके श्रवण-कर्ता नायक ने यह अन्यार्थ कल्पित किया कि इन वस्त्र-गत पयोधरों (कुचों) को छिपा न रखिए।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

खरी होहु बारी ! नैंक, कहा हमैं खोटी देखी,
सुनो बैन नैंक, सु तो आन ठाँ बजाइए ।
दीजै हमैं दान, सु तो आज न परब कछू,
गोरस दै, सो रस हमारे कहाँ पाइए ॥
मही देह हमैं, सु तो महीपति दैहैं कोऊ,
दही देह, दही है तो सीरो कछु खाइए ।
'सूरति' कहत ऐसे सुनि हँसि रीझे लाल,
दीन्ही उर माल सोभा कहाँ लगि गाइए ॥
—सूरति मिश्र ।

यहाँ भी नायिका के प्रति कही हुई नायक की उक्ति में के खरी (खड़ी), बैन, दान (डान = कर), गोरस, मही (छाछ) और दही देह (दही दो), इन शब्दों के नायिका ने अभंग रूप में क्रमशः खरी (सच्ची), वेणु, दान, गया हुआ रस, पृथ्वी और देह में जलन, ये और ही अर्थ कल्पित किए हैं ।

सूचना—यदि इस 'श्लेष-वक्रोक्ति' के उदाहरणों में श्लिष्ट शब्दों के स्थान पर उनके पर्याय रख दिए जायँ तो अलंकारता नहीं रहेगी; अतः यह शब्द-मूला है (अर्थ-मूला अर्थालंकारों में देखिए) ।

२ काकु-वक्रोक्ति

जिसमें किसी के कथितार्थ का कंठ-ध्वनि-विकार से अन्य द्वारा * अन्यार्थ किया जाय ।

* यहाँ अन्य द्वारा अन्यार्थ किया जाना आवश्यक है क्योंकि स्वयं अपनी उक्ति का अन्यार्थ करने में इसकी अतिव्याप्ति काकु-वैशिष्ट्य-ध्वनि में और काकाक्षिप्त-गुणीभूत व्यंग्य में हो जाती है ।

१ उदाहरण यथा—सोरठा ।

क्यों है रह्यौ निरास, कहि-कहि 'नहिं हरिहैं बिपति' ।
राखिय दृढ़ बिस्वास, हरि है नहिं हरिहैं बिपति ? ॥

यहाँ आपद्काल में किसी हताश हुए व्यक्ति के 'नहिं हरिहैं बिपति' इस निषेध-सूचक कथन का किसी भक्त ने केवल कंठ-ध्वनि से 'विपत्ति अवश्य हरेंगे' यह विधि-सूचक अन्यार्थ कर दिया है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

एक कह्यौ बर देत भव, भाव चाहिए चित्त ।
सुनि कह कोउ भोले भवहिँ, भाव चाहिए ? मित्त ! ॥

यहाँ भी किसी भक्त ने कहा कि शंकर वर देते हैं; पर चित्त में भाव चाहिए । इसे सुनकर दूसरे भक्त ने 'भोले भवहिँ भाव चाहिए ?' कहकर कंठ-ध्वनि-विकार मात्र से यह अर्थ कर दिया है कि भोले शंभु को भाव की आवश्यकता नहीं अर्थात् वे पूर्ण भक्ति-भाव के विना भी प्रसन्न हो जाते हैं ।

३ पुनः यथा—सोरठा ।

अबुध कही किहिँ आइ, हठ तें होति सती सबहि ।
सुजन कही मुसकाइ, हठ तें होति सती ? अहो ! ॥

—शिवकुमार 'कुमार' ।

यहाँ भी किसी के कहे हुए 'हठ तें होति सती' वचन का सज्जन द्वारा कंठ-ध्वनि से 'सती हठ से नहीं होती है' अन्यार्थ किया गया है ।

सूचना—किसी-किसी ग्रंथकारने 'काकु-वक्रोक्ति' को 'अर्थालंकार' माना है; किंतु इसमें कंठ-ध्वनि ही से अलंकारता है और कंठ-ध्वनि (शब्द) श्रवण का विषय है; अतः यह 'शब्दालंकार' ही है।

(६) शब्द-श्लेष

जहाँ ऐसे शब्दों की रचना हो जिनके एक से अधिक अर्थ होते हों, वहाँ 'श्लेषालंकार' होता है। इसके दो भेद हैं—

१ सभंग श्लेष

जिसमें शब्दों के खंड (टुकड़े) होने पर कई अर्थ होते हों।

१ उदाहरण यथा—कवित्त-चरण।

दूरि दुरि जात दृग देखत सँताप, सिर
धारें तनु-ताप वृषभानुजा निवारै नित।※

यहाँ 'वृषभानु' शब्द के 'श्रीराधिका के पिता' और 'वृष-संक्रांति के भानु' दो अर्थ होने के कारण यह श्लिष्ट है। वृष एवं भानु खंड पद होने के कारण सभंग है।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

बहुरि शक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥
—रामचरित-मानस।

※ पूरा पद्य 'यमक' के पंचम भेद में देखिए।

यहाँ भी 'सुरानीक' पद के 'मद्य अच्छा' एवं 'देवताओं की सेना' दो अर्थ होने के कारण यह श्लिष्ट और 'सुर + अनीक' खंड होने के कारण सभंग है।

२ अभंग श्लेष

जिसमें विना टुकड़े किए, पूरे शब्द के कई अर्थ होते हों।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

मंजन किए रहैं चमंकै चपला सी चारु,
चंचलता खंजन तें अधिक अपार है।
भावै मुख बीरा त्यौं सुहावै नथनी[1] हू, नेह
नाह तें लगावै स्यामा सुघर सुढार है॥
नाक की निसैनी दैनी भूमि-भोग लागें अंग,
होत स्वर भंग राग-रंग रिझवार है।
नैनन निहारि त्यौं बिचारि बार-बार कहे,
नारि तरवार के बिहार इकसार है॥

यहाँ 'मंजन' शब्द के स्नान एवं मँजी हुई, 'बीरा' के पान-बीड़ा और तलवार-कोषबंध, 'नेह' के प्रीति और तैल 'स्यामा' के षोडश-वार्षिका स्त्री एवं कालेरंग की, 'सुघर' के चतुर और अच्छी गढ़ी हुई तथा 'राग-रंग' के अनुराग एवं रुधिर का रंग, शब्दों के बिना टुकड़े किए दो दो अर्थ हुए हैं।

२ पुनः यथा—दोहा।

बास-बरन-बर-बृत्त-युत, पद्य-पुष्प रस-मूल।
कवि त्रयकालिक सुर पितर, गहु निज-निज अनुकूल॥

---

1 स्त्री की नाक का एवं तलवार की मूठ का आभूषण।

यहाँ भी 'बास' शब्द के वासना एवं गंध, 'बरन' के अक्षर एवं रंग, 'वृत्त' के छंद वा वृत्तांत एवं गोलाई और 'रस' शब्द के शृंगारादि नवरस एवं मकरंद, दो दो अर्थ शब्दों के बिना टुकड़े किए ही हुए हैं

उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

तीर तें अधिक बारि-धार निरधार महा,
दारुन मकर चैन होत है नदीन कों।
हो तिहै करक अति वड़ी न सिराति राति,
तिल-तिल बाढ़ै पीर पूरी बिरहीन कों॥
सीकर अधिक चारि ओर अंबु नीर है न,
पावरीन बिना केहू बनति धनीन कों।
'सेनापति' बरनी है बरषा सिसिर ऋतु,
मूढ़न कों अगम सुगम परबीन कों॥

—सेनापति।

यहाँ 'नदीन' शब्द के नदियों और न + दीन तथा 'सीकर' के जल-कण और सीत्कार करना, दो दो अर्थ पद भंग करने पर हुए हैं। इसी प्रकार 'तीर' के तट और बाण, 'मकर' के मत्स्य और मकर-संक्रांति तथा 'करक' के कर्क-सक्रांति और खटकना (बेचैनी), दो दो अर्थ पूरे (अभंग) शब्दों के हुए हैं; अतः यह 'उभय पर्यवसायी' है।

सूचना—इस 'शब्द-श्लेष' में शब्द के एक से अधिक अर्थ होते हैं। इन शब्दों को पर्याय शब्दों में परिणत कर देने से श्लिष्टता नष्ट हो जायगी। यथा—यदि 'बृषभानु' के स्थान पर 'बृषभ-रवि' कर दिया जाय तो दूसरा अर्थ 'बृषभानु गोप' न रहेगा। यहाँ शब्दों पर ही अलंकार निर्भर होता है; अतः 'शब्द श्लेष' है।

(७) बीप्सा

जहाँ आदर, आश्चर्य, आतुरता और रोचकता आदि भावों का बाहुल्य प्रकट करने के लिये किसी शब्द का एक से अधिक बार प्रयोग किया जाय, वहाँ 'बीप्सा' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

उठि-उठि मन मिटते रहत, हत भागन अभिलाख।
जिमि जल-बुदबुद बायु तें, बनि-बनि बिनसत लाख॥

यहाँ 'उठि' एवं 'बनि' शब्द दो दो बार हतभाग्यता की अधिकता सूचित करने के लिये रखे गए हैं।

२ पुनः यथा—दोहा।

साँझहि सेज सिँगार सब, सजे सजीली बाम।
उझकि-उझकि झाँकति झुकति, अजहुँ न आए स्याम॥

यहाँ भी 'उझकि' शब्द दो बार रखकर बासक-शय्या नायिका की विशेष आतुरता सूचित की गई है।

बीप्सा-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

रीझि-रीझि रहसि-रहसि[1] हँसि-हँसि उठै,
साँसैं भरि आँसू भरि कहत दई-दई।
चौंकि-चौंकि चकि-चकि औचकि उचकि 'देव'
छकि-छकि जकि-जकि बहत बई-बई॥

---

1 हर्षि-हर्षि।

दोउन को रूप गुन बरनत फिरैं बीर,
धीर न धरात रीति नेह की नई-नई।
मोहि-मोहि मोहन को मन भयौ राधा मई,
राधा-मन मोहि-मोहि मोहन मई-मई॥
—देव।

यहाँ भी 'रीझि' एवं 'रहसि' आदि अनेक शब्दों की आवृत्तियाँ (श्रीराधा-माधव के अनुरागोत्कर्ष-सूचक) हुई हैं; अतः माला है।

(८) चित्र

जहाँ पद्य-रचना में निपुणता से ऐसे अक्षर रखे जायँ जिनसे 'कमल' आदि अनेक चित्र एवं 'अंतर्लापिका' आदि अनेक प्रकारकी मनोरंजक कविताएँ बन जायँ, वहाँ 'चित्रालंकार' होता है। इसके दो भेद यहाँ दिए जाते हैं—

१ चित्र का प्रथम भेद

१ उदाहरण यथा—दोहा।

आन[1] मान बिन-मान[2] जिन ठान मान[3] अनजान!।
मीन हीन-बन[4] दीन तन छीन प्रान मन जान॥

इस दोहे के कई प्रकार के चित्र बन सकते हैं; किंतु विस्तार-भय से यहाँ तीन ही चित्र दिए जाते हैं—

१ और। २ प्रमाण। ३ मान जा। ४ जल।

(क) कमल-बंध चित्र
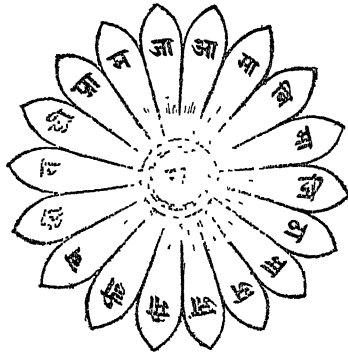
सूचना—यहाँ पहले कोष के सबसे ऊपरवाले पत्र का अक्षर 'आ', फिर कोष का, फिर उक्त पत्र से बाएँ पत्र का 'मा' और फिर कोष का, इस प्रकार पढ़ना या रखना चाहिए।

(ख) धनुष-बंध चित्र
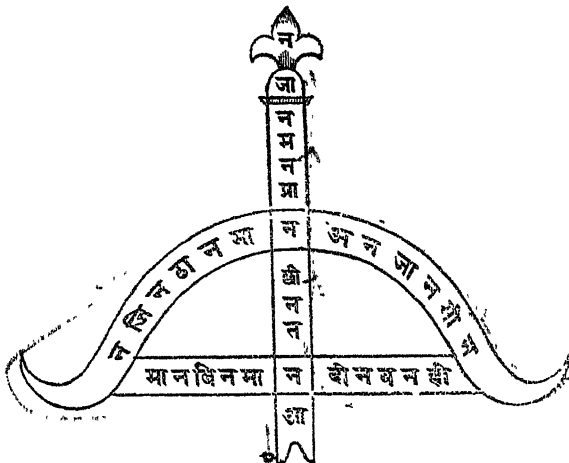
सूचना—यहाँ प्रथम बाण के निम्न भाग के दो अक्षर, फिर दक्षिण भाग की अर्द्ध प्रत्यंचा के, फिर धनुष के अर्द्धचंद्राकार भाग के, फिर वाम भाग की अर्द्ध प्रत्यंचा के, फिर प्रत्यंचा के मध्य का नकार पढ़-कर शर के फल तक पढ़ते जाइए।

(ग) चामर-बंध चित्र
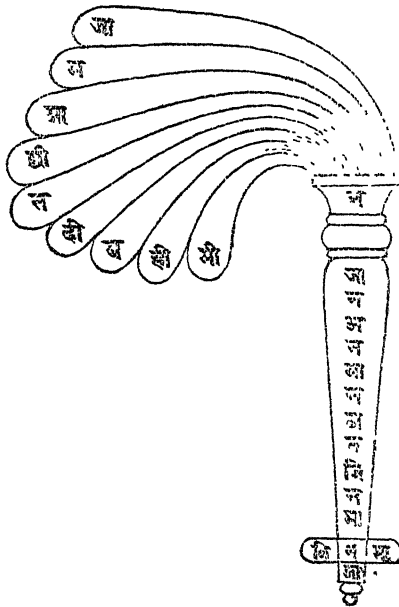
सूचना—यहाँ पहले दंड के नीचे की नोक का, पश्चात् मुष्टि के आधार या ठहरनेवाले गोल भाग के मध्य का, फिर उसके वाम भाग का, फिर मध्य का, फिर दक्षिण भाग का, फिर मध्य का नकार पढ़कर दोहे के पूर्वार्द्ध के शेष अक्षर दंड में पढ़िए, फिर बालों के एक एक अक्षर से दंड के शिर का नकार मिलाकर पढ़िए।

२ पुनः यथा—सवैया ।

त्रय भीति[1]-व्यथा मई बेरी अहै जब तू न तजै धन धाम तिया ।
अय ! जीति जथा भई चेरी चहै कबहूँ न अजै-रन-नाम[2] लिया ॥
चय-[3]नीति-कथा कई घेरी रहै सब सूँ न रँजै तन काम जिया ।
वय बीति बृथा गई तेरी यहै अब क्यूँ न भजै मन ! राम-सिया ॥

(घ) सर्वतोभद्रगति चित्र
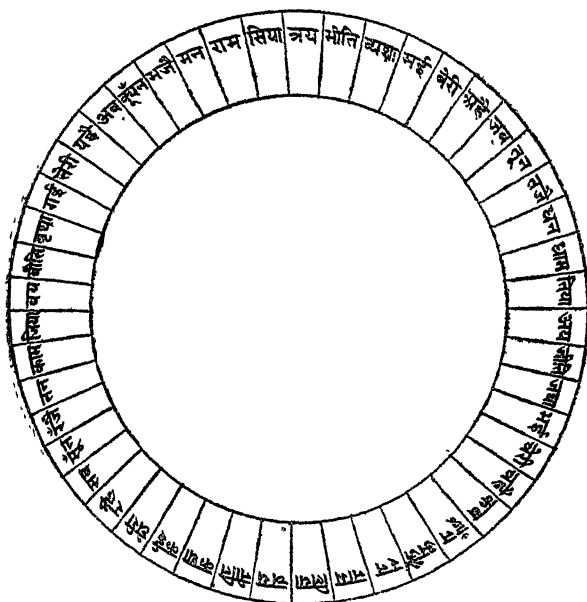
सूचना—यहाँ ऊपर के 'त्रय' से 'सिया' तक पढ़ने से सवैया पूरा होता है। इसी प्रकार जहाँ से चाहें, वहीं से पढ़ें। उसके पिछले कोष्ठ तक तुकांत मिलकर सवैया बन जायगा। सब मिलाकर ४८ सवैया बनते हैं।

---

१ तीनों ताप। २ रण में अजेय जो रामजी हैं, उनका नाम। ३ संग्रह।

(ङ) कामधेनु-बंध चित्र
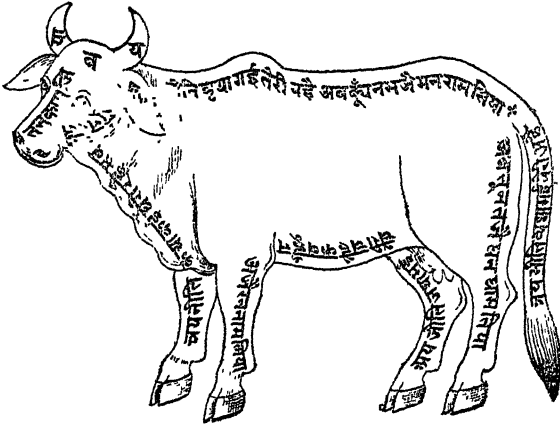
सूचना—यहाँ पुच्छ के अधोभाग के 'त्रय' शब्द से पुच्छ-मूल के ऊपर 'सिया' शब्द तक सवैया छंद पूरा होगा। इसी प्रकार चाहे जहाँ से दो दो अक्षर पढ़िए, ४८ सवैया छंद बन जाएँगे।

(च) द्वितीय कामधेनु चित्र

त्रय	भीति	व्यथा	भई	बेरी	अहै	जब	तू न	तजै	धन	धाम	तिया
अय	जीति	जथा	भई	चेरी	चहै	कब	हूँ न	अजै	रन	नाम	लिया
चय	नीति	कथा	कई	घेरी	रहै	सब	सूँ न	ईंजै	तन	काम	जिया
बय	बीति	वृथा	गई	तेरी	यहै	अब	क्यूँ न	भजै	मन	राम	सिया

सूचना-यहाँ प्रत्येक कोष्ठ के दो दो अक्षर पढ़ने से ४८ सवैया बनते हैं।

इन दोनों उदाहरणों में आदि से अंत तक कहीं मात्रा नहीं है।

(ख) अंतर्लापिका

जिस पद्य में प्रश्न किए गए हों, उसी पद्य के अंत में उत्तरों के अक्षर भी हों।

१ उदाहरण यथा—छप्पय।

किते खंड ग्रह द्वार होत का ईस अराधें ?।
विषय-वेग का बाघ-वक्ख बेधत कर साधें ?॥
कहा रास मैं सरस, बास कित करति किराती ?।
धनद-जान का होत भक्ति किय अतनु-अराती ?॥
बिनु-प्रान पिंड का बीर-व्रत कागद-हितु का गद कहत ?।
को जननि-जनक-सेवक, कहा कवि बरनत ? 'नवरस' महत॥

इस पद्य में चौदह प्रश्न हैं। उन सबके उत्तर अंत में एक 'नवरस' शब्द द्वारा व्यस्त-समस्त-गतागत-शृंखला-रीति से दिए गए हैं; यथा—(१) खंड, ग्रह, द्वार कितने हैं ? 'नव' (२) शिव-सेवा से क्या लाभ है ? 'वर' (३) विषय-वेग क्या है ? 'रस' (अभिलाषा) (४) सिंह के वक्षस्थल को कौन वेधता है ? 'शर' (५) रास में सरस क्या है ? 'रव' (६) भीलनी कहाँ रहती है ? 'वन' (में) (७) कुबेर का वाहन क्या है ? 'नर' (८) भक्ति से शंकर कैसे होते हैं ? 'वश' (९) प्राण-रहित शरीर क्या है ? 'शव' (१०) वीरों का प्रण क्या है ? 'रण' (११) कागज के लिये उपयोगी क्या वस्तु है ? 'सन' (१२) रोग बतानेवाली कौन है ? 'नस' (नाड़ी) (१३) माता-पिता का सेवक कौन हुआ है ? 'सरवन' (तापस-पुत्र श्रवण) (१४) कवि क्या वर्णन करते हैं ? 'नवरस'।

२ पुनः यथा—दोहा ।

भानुज ऋषि तें का चह्यौ ?, रन बिचलें का होइ ? ।
भव-भय-तारन ग्रंथ को ?, कहि 'भागवत' सु जोइ ॥
—काशिराज (चित्रचंद्रिका) ।

यहाँ भी उसी प्रकार (१) भानुज अर्थात् अश्विनी-कुमारों ने ऋषि (च्यवन) से क्या चाहा ? (२) रण से विचलित होने पर क्या होता है ? और (३) संसार-भयसे निवृत्त करनेवाला कौन ग्रंथ है ? ये तीन प्रश्न हैं । जिनके उत्तर 'भागवत' शब्द से (१) 'भाग' (यज्ञ-विभाग) (२) 'भागव' (भागना) और (३) 'भागवत' दिए गए हैं ।

(ग) *वहिर्लापिका*

जिसमें प्रश्नों का उत्तर छंदांतर्गत न हो, वरन् बाहर से आता हो ।

१ उदाहरण यथा—रथोद्धता छंद ।

कर्न कों कहत कीर्तिजा सती । भानु-सूनु बृषभानुजा प्रती ॥
को चितौन-मुचुकुंद तें मरो ? । कौन होत ऋतुराज मैं हरो ? ॥

यहाँ कर्ण से श्रीराधिकाजी का प्रश्न है—'राजा मुचकुंद की दृष्टि से कौन मरा ?' उत्तर है—'हे राधे ! यवन[1]' । एवं कर्ण श्रीराधाजी से पूछता है—'वसंत में क्या हरा होता है ?' उत्तर है—'हे राधेय[2] ! वन' । दोनों प्रश्नों का संबोधन-सहित एक उत्तर-वाक्य 'राधेयवन' बाहर से आता है, स्वयं छंद में नहीं है ।

१ कालयवन । २ राधा का पुत्र कर्ण ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

अच्छर कौन विकल्प को ?, जुवति बसति किहिँ अंग ?।
बलि राजा कौने छल्यौ ?, सुरपति के परसंग ॥
—केशवदास ।

यहाँ भी (१) विकल्प का अच्चर कौन है ?, (२) स्त्री किस अंग में वास करती है ? और (३) बलि राजा को किसने छला ? ये तीन प्रश्न हैं, जिनके उत्तर क्रमशः 'वा', 'वाम' और 'वामन' हैं जो 'वामन' शब्द द्वारा बाहर मे आते हैं।

(घ) दृष्टिकूटक

जिसमें शब्द ऐसे ढंग से रखे जायँ कि देखने मात्र से अर्थ समझ में न आवे ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

कारी कन्या सुत जन्यौ, पोष कियौ बलवान।
जिन कीन्हौ दिन ह्रास तिहिँ, ताहि ग्रस्यौ बृषभान ॥

यहाँ वास्तविक अर्थ यह है—"आश्विन की कन्या-संक्रांति ने शीत-पुत्र उत्पन्न किया और पौष मास ने उसको बलवान किया (यथा—'कन्यायां जायते शीतो हेमन्ते च विवर्धति')।" किंतु "अविवाहिता बालिका ने पुत्र उत्पन्न एवं पालन किया" यह मिथ्यार्थ भान होता है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

आदि अंत 'मथुरा' बरन, जपै बिलोम न जोय।
मध्यम अच्छर तासु मुख-मध्य करौ सब कोय ॥

यहाँ भी राम-नाम का जप न करनेवाले मनुष्य के मुख में 'थू' करना बतलाया है; किंतु यह कठिनता से जाना जाता है।

(ङ) एकाक्षर

जिसमें समग्र पद्य का एक ही अक्षर के शब्दों से निर्माण किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

लोल लाल-लै लौं लली, लोल लली लौं लाल।
लोल लला लै लालली ! लोल लली लो लाल ! ॥ ❀

यहाँ एक 'ल' अक्षर से ही समग्र दोहे का निर्माण हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

नोने-नैनी-नैन ने, नौ नै नुनी न नून।
नानानन ने ना नने, नाना नैना नून ॥ †

—काशिराज (चित्र-चंद्रिका)।

यहाँ भी केवल 'न' अक्षर से समग्र पद्य का निर्माण हुआ है।

❀ सखी-वचन सखी से—श्रीकृष्ण की (वेणु-वाद्य-) लय के लिये श्रीप्रियाजी चंचल (आतुर) हो रही थीं; और राधिकाजी के लिये श्रीकृष्ण अधीर हो रहे थे। (तब उनकी अंतरंग सखी ने उन्हें मिलाकर कहा) हे लाड़लीजी ! चंचल श्रीकृष्ण को लीजिए; एवं हे श्रीकृष्ण ! चंचल प्रियाजी को लीजिए।

† सखी का वचन, नायक के प्रति—मनोहर नेत्रवाली नायिका के नेत्रों ने नवीन नीति (कटाक्ष-संचार) कम नहीं चुनी है। ब्रह्मा ने (अन्य) ऐसे निर्माण नहीं किए; और जो अनेक नेत्र बनाए, वे इनसे न्यून हैं।

(च) निरोष्ठ

जिसमें पवर्ग (प फ ब भ म) और 'उ' स्वर के विना छंद का निर्माण हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

चंचल खंजन झखन से, दीह[1] जलज-दल ऐन।
अनियारे[2] असरीर के, तीर तिहारे नैन॥

२ पुनः यथा—कवित्त।

कौन है सिँगार रस जस[3] ए सघन घन,
घन कैसे आनँद की झर ते सँचारते।
'दास' सरि[4] देत जिन्हैं सारस[5] के रस-रसे,
अलिन के गन खन-खन तन झारते॥
राधादिक नारिन के हिय की हकीकति,
लखे तें अचरज-रीति इनकी निहारते।
कारे कान्ह! कारे-कारे तारे ए तिहारे जित,
जाते तित राते-राते रंग[6] करि डारते॥
—भिखारीदास।

यहाँ दोनों पद्य पवर्ग और उकार के विना निर्मित हुए हैं; अतः इनके उच्चारण में ओठों का स्पर्श नहीं होता।

सूचना—(१) यद्यपि इस 'चित्रालंकार' को सभी ग्रंथकारों ने गोरख-धंधे की भाँति कष्ट-काव्य बतलाया है; तथापि प्रायः संस्कृत एवं भाषा-काव्यों में इसका कुछ न कुछ परिचय मिलता है। महाकवि 'केशवदास' ने

१ दीर्घ। २ तीखे। ३ जैसे। ४ समता। ५ कमल। ६ अनुरागमय।

'कविप्रिया' में इसका सविस्तर वर्णन किया है। महात्मा सूरदास ने 'साहित्य-लहरी' एवं काशीनरेश ने 'चित्र-चंद्रिका' ग्रंथ केवल इसी विषय पर लिखे हैं। हमने इसमें कवि-नैपुण्य और मनोरंजकता पाई है; अतः संक्षेप में इसका उल्लेख कर दिया है।

(२) इस अलंकार के निर्माण करने में कठिनाई है; अतः कवियों के लिए निम्नांकित सुविधाएँ नियमित की गई हैं—

(क) अनुस्वार, अर्धानुस्वार, विसर्ग और ह्रस्व-दीर्घ होने न होने से कुछ बाधा नहीं होती।

(ख) 'ब, व' 'ज, य' 'र, ल' 'ड, ल' और 'श, ष, स' में कुछ भेद नहीं होता।

(ग) अंध, बधिर आदि दोष एवं गणागण का कुछ विचार नहीं होता।

अर्थालंकार

अर्थगत चमत्कार को 'अर्थालंकार' कहते हैं। जैसे—कहना है— "श्रीराधिकाजी परम सुंदरी हैं।" यह बात इन सीधे-सादे शब्दों में न कहकर आलंकारिक रीति से यों कही जायगी—

(१) श्रीराधिका शची के समान सुंदरी हैं।

(२) श्रीराधा जैसी तो राधा ही हैं।

(३) श्रीराधा के समान रति भी नहीं कही जा सकती।

(४) श्रीराधा दूसरी पार्वती हैं।

(५) श्रीराधा रानी की कांति से शरद्-पूर्णिमा की चंद्रिका भी लजाती है। इत्यादि।

कुछ आचार्यों ने इनकी संख्या अधिक और कुछ ने न्यून भी मानी है; किंतु हमने अधोलिखित एकसौ अर्थालंकारों का वर्णन उचित समझा है—

(१) उपमा

जहाँ उपमेय उपमान में भिन्नता रहते हुए[1] भी समान् धर्म बतलाया जाय, वहाँ 'उपमा' अलंकार होता है। इसके मुख्य दो भेद हैं—

---

१ यहाँ 'भिन्नता रहते हुए' कहने का आशय यह है कि 'अनन्वय' अलंकार से भिन्नता हो, क्योंकि जहाँ उपमेय-उपमान में भिन्नता नहीं होती वरन् एकता बतलाई जाती है, वहाँ 'अनन्वयालंकार' होता है।

✓१ पूर्णोपमा

जिसमें उपमेय[1], उपमान[2], साधारण धर्म[3] एवं उपमा-वाचक-शब्द[4] ये चारों अंग कहे गए हों।

१ उदाहरण यथा—दोहार्द्ध।

संधित[5] सुमन-सुगंध इव, सिव-गिरिजहिँ सिर नाइ।

यहाँ 'शिव-गिरिजा' उपमेय, 'सुमन-सुगंध' उपमान, 'संधित' साधारण धर्म और 'इव' वाचक-शब्द इन चारों अंगों की पूर्णता है।

२ पुनः यथा—चौपाई।

पुनि है बिकल धवल-जल-धारा। नभ तें गिरी टूटि जिमि तारा॥
पाहि-पाहि अति आरत बानी। सुनि सुरधुनिहिँ[6] संभु सनमानी॥

यहाँ भी 'जल-धारा' उपमेय, 'तारा' उपमान, 'धवल' एवं 'टूट गिरना' धर्म और 'जिमि' वाचक-शब्द है।

---

१ अधिक शोभा या गुण आदि का वर्णन करने के लिये किसी अन्य पदार्थ से जिसके लिये समता दी जाय, उसको 'उपमेय' कहते हैं। जैसे—मुख, नेत्र आदि। इसके पर्याय-वाची-शब्द 'प्रकृत' 'विषय' 'प्रस्तुत' 'वर्ण्य' और 'प्रासंगिक' भी हैं। २ जिस पदार्थ से किसी अन्य पदार्थ के लिये समता दी जाय, वह 'उपमान' कहलाता है। जैसे—चंद, कमल आदि। इसको 'अप्रकृत' 'विषयी' 'अप्रस्तुत' 'अवर्ण्य' और 'अप्रासंगिक' भी कहते हैं। ३ उपमेय-उपमान में रहनेवाले 'समान धर्म' को 'साधारण धर्म' कहते हैं। जैसे—मुख एवं चंद्र में 'प्रकाश' और नेत्र एवं कमल में 'विकास' आदि। ४ उपमेय-उपमान की समानता सूचित करनेवाले शब्द को 'उपमा-वाचक-शब्द' कहते हैं। जैसे—इव, यथा, सदृश, से, सम, सरिस, जिमि, लौं, तुल्य आदि। ५ मिले हुए। ६ गंगा को।

३ पुनः यथा—दोहा ।

बृंदावन बानक बिसद, बगर्‌यौ बहुरि बसंत ।
बिबुध-बधूटी सी बिमल, ब्रज-बनिता बिलसंत ॥
—पं० किशोरीलाल गोस्वामी ।

यहाँ भी 'ब्रज-बनिता' उपमेय, 'बिबुध-बधूटी' उपमान, 'बिमल' धर्म और 'सी' वाचक-शब्द है ।

पूर्णोपमा-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

चरन अरुन अरबिंद से हरन ही[1] के,
खंभ-कदली से गोरे जंघ जुग जोरी के ।
पीपर-पलास[2] सो उदर को बिलास, कुच
कुंभ से कलभ[3] के, बढ़त बय थोरी के ॥
गोल ग्रीव कंबु सी, मृनाल सी बिसाल बाहु,
बीजुरी के बीज से बिसद रद भोरी के ।
बिधु सो बदन सोहै, चाप सी कुटिल भौंहैं,
तीरन से तीखे नैन कीरति-किसोरी के ॥

यहाँ 'चरण' उपमेय 'अरविंद' उपमान, 'अरुण' धर्म और 'से' वाचक, आदि दश पूर्णोपमाएँ हैं; अतः माला है ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

आठैं[4] के सुधाधर सो लसत बिसाल भाल,
मंगल सो लाल तामैं टीको छबि भारी को ।
चाप सी कुटिल भौंह, नैन पैने सायक से,
सुक सी उतंग नासा मोहै मन प्यारी को ॥

१ हृदय । २ पत्ता । ३ हाथी का बच्चा । ४ अष्टमी ।

बिंब से अरुन ओठ, रद-छद सोहत है,
पेखि प्रेम पासि पर्यौ चित्त ब्रज-नारी को।
चंद सो प्रकास-कारी, कंज सो सुबास-धारी,
सब-दुख-त्रास-हारी आनन बिहारी को॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ भी 'भाल' उपमेय 'आठैं का सुधाधर' उपमान 'लसत' धर्म और 'सो' वाचक आदि ६ पूर्णोपमाएँ तीन चरणों में कही गई हैं; अतः माला है; और चतुर्थ-चरण में वक्ष्यमाण[1] 'भिन्नधर्मा-मालोपमा' है।

२ लुप्तोपमा

जिसमें उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और उपमा-वाचक-शब्द इन चारों में से एक, दो वा तीन का लोप हो[2]। इसके आठ भेद होते हैं—

[एक के लोप के तीन भेद]

(क) धर्मलुप्ता

जिसमें उपमेय, उपमान एवं वाचक-शब्द तीनों हों, केवल साधारण धर्म का लोप हो।

१ उदाहरण यथा—दोहार्द्ध।

श्रुति-सार-द[3] दुति जान जस, सारद-सोम समान। ❀

---

१ जो आगे कहा जाय। २ किंतु ये लुप्त अंग कथित शब्दों द्वारा लक्षित हो जाते हैं। ३ वेदों का सार देनेवाली।

❀ पूरा पद्य 'यमक' के प्रथम भेद में देखिए।

यहाँ 'श्रीशारदा की अंग-द्युति', 'वाहन' और 'यश' उपमेय, 'शरद-चंद्रमा' उपमान तथा 'समान' वाचक-शब्द तो आया है; पर उज्ज्वलता-सूचक साधारण धर्म का लोप है।

२ पुनः यथा—होरी-अंतरा।

डर तें लाली गई अधरन की, रुधिर, न पीक अयानी[१]!।
गिरतें[२] मोहि चकोरन घेरी, चंदकला सी जानी॥
यहै मुख चोंच चुभानी॥

यहाँ भी 'गुप्ता नायिका' उपमेय, 'चंद्रकला' उपमान तथा 'सी' वाचक तो है; पर प्रकाशादि धर्म का लोप है।

३ पुनः यथा—दोहा।

माई! एहा पूत जण[३], जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओधकै[४], जाण[५] सिराणै[६] साँप॥
—महाराजा पृथ्वीराज और चंपादे।

यहाँ भी 'पूत' उपमेय, 'महाराणा प्रताप' उपमान और 'जेहा' (जैसा) वाचक है; पर वीरादि धर्म का लोप है।

४ पुनः यथा—दोहा।

सजि सिँगार तिय भाल मैं, मृगमद-बेंदी दीन्ह।
सुबरन के जयपत्र मैं, मदन मोहर सी कीन्ह॥
—राजा गुरदत्तसिंह 'भूपति'।

यहाँ भी 'नायिका के ललाट की बेंदी' उपमेय, 'सुवर्ण के पत्र पर मोहर' उपमान और 'सी' वाचक है; पर धर्म का लोप है।

१ अनभिज्ञे!। २ गिरती हुई को। ३ उत्पन्न कर। ४ चौंकता है। ५ जानकर। ६ शिर की ओर।

(ख) वाचकलुप्ता

जिसमें उपमेय, उपमान एवं साधारण धर्म तीनों हों, केवल वाचक-शब्द का लोप हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहार्द्ध ।

कुसल-करन, अघ-हरन, हरि-चरन-अरुन-अरविंद ।

यहाँ 'चरन' उपमेय, 'अरबिंद' उपमान और 'अरुन' धर्म तो है; पर वाचक-शब्द 'से' का लोप है ।

२ पुनः यथा—छप्पय ।

श्रीराधा आधार प्रानपति-प्रान-प्रेम की ।
जोग-भोग आरोग सुकृत सुख जोग छेम की[1] ॥
मूरति-रति-रमनीय मदनमोहन-मन-मोहनि ।
जिन जीते जगदीस जथा रजनीसहिँ रोहनि ॥
जय सक्ति सनातनि जगत की करनि-प्रगट-पालन-प्रलय[2] ।
जय जल-तरंग-अनुरूप तनु जुगल रूप जय जयति जय ॥

यहाँ भी 'श्रीराधिकाजी की मूर्ति' उपमेय, 'रति' उपमान और 'रमणीय' धर्म तो है; पर वाचक 'इव' का लोप हुआ है ।

३ पुनः यथा—सवैया ।

गुरु ज्ञान निधान के पाँयन की न बन्यौ रज कीन्ह अजानपनो तू ।
चहुँ साधन[3] हू न लगावि लग्यौ मन ! कैसे लहै अजपा[4] जपनो तू ॥

---

१ श्रीराधा अपने प्राणपति (श्रीकृष्ण) के प्राण एवं प्रेम की और (भक्तों के) सांसारिक भोगों के योग, आरोग्य, पुण्य-कर्म, सुख, योग (आत्म-ज्ञान-प्राप्ति) एवं क्षेम (प्राप्त की रक्षा) की आधार रूप हैं । २ संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय करनेवाली । ३ साधन चतुष्टय । ४ ज्ञान-गायत्री ।

बिच भौंहन प्रानन रोकि[1] न रोकि सक्यौ त्रय तापन तें तपनो तू।
सपनो-जग-मायिक सो[2] अपनो गुनि[3] भूलि सरूप रह्यौ अपनो तू॥

यहाँ भी 'जग' उपमेय, 'सपनो' उपमान एवं 'मायिक' धर्म तो कहा गया है; पर वाचक 'सो' का लोप हुआ है।

(*ग*) *उपमानलुप्ता*

जिसमें उपमेय, साधारण धर्म एवं वाचक-शब्द तो हों, केवल उपमान का लोप हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

देखी सुनी न किहिं कहैं, राधा सी रमनीय।
त्रिभुवन मैं तिमि कान्ह सो, कतहुँ न कोउ कमनीय॥

यहाँ दो 'उपमानलुप्ताएँ' हैं—'राधा' उपमेय, 'रमनीय' धर्म और 'सी' वाचक तथा 'कान्ह' उपमेय, 'कमनीय' धर्म और 'सो' वाचक आया है। दोनों में 'देखी सुनी न' एवं 'कतहुँ न कोउ' वाक्यों द्वारा उपमानों का लोप हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सब साधन को सार अरु, आराधन को पार।
ध्यान समान न आन कहुँ, ज्ञान मुक्ति को द्वार॥

यहाँ भी 'ध्यान' उपमेय, 'सब साधन को सार' 'आराधन को पार' एवं 'ज्ञान मुक्ति को द्वार' धर्म और 'समान' वाचक-शब्द आया है; पर विज्ञानादि उपमानों का लोप है।

---

१ दोनों भ्रुकुटियों के मध्य-स्थान में प्राणों को रोककर। २ उसको ३ अपना समझकर।

३ पुनः यथा—कवित्त।

चंद्रिका मैं मुकुट मुकुट मैं सु चंद्रिका है,
　　चंद्रिका मुकुट मिलि चंद्रिका अजोर की।
नगन मैं अंग-अंग नग-नग अंगन मैं,
　　कवि 'पजनेस' लखै नजर करोर की॥
तनु बिज्जु-दाम-मध्य बिज्जु तनु-मध्य, तनु
　　बिज्जु-दाम मिलि देह-दुति दुहुँ ओर की।
तीन लोक झाँकी, ऐसी दूसरी न झाँकी जैसी,
　　झाँकी हम झाँकी बाँकी जुगलकिसोर की॥

—पजनेस।

यहाँ भी 'जुगलकिसोर की झाँकी' उपमेय, 'बाँकी' धर्म और 'ऐसी' वाचक-शब्द है; पर 'दूसरी न झाँकी' वाक्य से उपमान का लोप हुआ है।

उपमानलुप्ता-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

बानधारी पाथ[1] सो न, मान कुरुराज[2] कैसो,
　　गान तानसेन सो न, दान ना अनाज सो।
जल-जन्हुजा सो नाहिं, थल-कासिका सो कहूँ,
　　जीवन सो चल ना, सबल ना समाज सो॥
स्वाद पूप-खीर सो न, भूप रघुबीर जैसो,
　　जेठ कैसो धूप नाहिं, रूप नाहिं लाज सो।
ब्रज कैसो धूर ना, सहूर राजपूतन सो,
　　कूर कटुबादी सो न सूर सिवराज सो॥

१ अर्जुन। २ दुर्योधन।

यहाँ 'अर्जुन' उपमेय, 'बानधारी' धर्म और 'सो' वाचक-शब्द आया है; पर द्रोणाचार्यादि उपमानों का लोप है। इसी प्रकार १६ उपमानलुप्ताएँ हैं; अतः माला है।

[दो के लोप के चार भेद]

(घ) धर्मवाचकलुप्ता

जिसमें उपमेय और उपमान तो हों; पर धर्म एवं वाचक-शब्द का लोप हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

पाहन-करेजो तिमि हाथ क्यों न होत नाथ!
काटत अनाथ माथ बचन-बिहीनों[1] के।
ब्याधन ज्यौं छुनिक सवाद लौं बिनाऽपराध,
मुरगे मयूर अज मेष मृग मीनों के॥
गरल-गिरीस-गाथ जाने बिन बन्हि-बात[2]
देत उदाहरन तपस्वी तनु खीनों के।
पिंड[3]-बलिदान-ओट[4] कोटिन करैं ये पाप,
मोट यह माथे बँधै मानस-मलीनों के[5]॥

यहाँ 'कलेजा' उपमेय एवं 'पाहन' उपमान तो है; पर 'कठिन' धर्म तथा 'सा' वाचक का लोप है।

---

१ अनबोल। २ श्रीमद्भागवत में रासक्रीड़ा के पश्चात् शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित की शंका का समाधान इस प्रकार किया था—"शंकर का विष-पान करना और अग्नि की सर्व-भक्षणता देखकर किसी व्यक्ति को ऐसे कर्म न करने चाहिएँ।" ३ श्राद्ध-पिंड। ४ बहाना। ५ मलिन अंतःकरणवालों के।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

कुंद-इंदु-निंदक दुति-अंगा। फटिक-पुंज छबि कोटि-पतंगा[1] ॥

यहाँ भी श्रीशंकर की 'छबि' (कांति) उपमेय और 'फटिक-पुंज' एवं 'कोटि-पतंग' उपमान हैं; किंतु 'प्रकाश' धर्म एवं 'सी' वाचक का लोप है।

(ङ) वाचकोपमेयलुप्ता

जिसमें उपमान एवं साधारण धर्म तो हों; पर उपमेय एवं वाचक शब्द का लोप हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मृग-दारक[2]-दीरघ-नयन, मृगमद[3]-बिंदु-लिलार।
भीरु[4]-मृगी, मृगराज-कटि, मुख-मृगांक[5]-अनुहार ॥

यहाँ 'मृगी' उपमान एवं 'भीरु' धर्म तो है; पर 'नायिका' उपमेय एवं 'इव' वाचक-शब्द का लोप है।

२ पुनः यथा—दोहा।

इत तें उत उत तें इतै, छिन न कहूँ ठहराति।
जक न परति चकई भई, फिरि आवति फिरि जाति ॥

—विहारी।

यहाँ 'चकई' (चकरी) उपमान और 'फिरि आवति फिरि जाति' धर्म तो कहा गया है; पर 'नायिका' उपमेय एवं 'सी' वाचक-शब्द का लोप है।

---

१ पतंग = सूर्य। २ बच्चा। ३ कस्तूरी। ४ कातर। ५ चंद्रमा।

(च) धर्म्मोपमानलुप्ता

जिसमें उपमेय एवं वाचक-शब्द तो हों; पर उपमान एवं साधारण धर्म का लोप हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

आन नहीं सब सुरन मैं, संकर-सिवा समान।
मुक कंठ तें कहत यौं, संतत बेद-पुरान॥

यहाँ 'शंकर-शिवा' उपमेय एवं 'समान' वाचक है और 'आन नहीं' पद से उपमान का एवं प्रधानता आदि धर्म का अभाव है।

२ पुनः यथा—दोहा।

यदपि सरित संसार मैं, सत सहस्र परिमान।
पै पतितन पाथोधि कहँ, सुरसरि सरिस न आन॥

यहाँ भी 'सुरसरि' उपमेय और 'सरिस' वाचक तो है; पर 'अन्य नद नदी' उपमान और 'कल्याणकारी' आदि धर्म का लोप है।

(छ) वाचकोपमानलुप्ता

जिसमें उपमेय एवं साधारण धर्म तो हों; पर उपमान एवं वाचक-शब्द का लोप हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

गुरु सो जानी गजन गति, मानी सीख मराल।
केहरि कटि-कृस कान्ह की, परिकर[1] पीत रुमाल॥

---

१ कटि-बंध।

यहाँ कृष्ण की 'कटि' उपमेय एवं 'कृस' धर्म तो आया है; पर 'सिंह की कटि' उपमान तथा 'सी' वाचक का लोप है; और 'केहरि' शब्द केवल उपमा-सूचक है।

२ पुनः यथा—दोहा।

हिय सियरावै बदन-छबि, रस दरसावै केस।
परम घाव चितवनि करै, सुंदरि यही अंदेस॥
—भिखारीदास 'दास'।

यहाँ भी नायिका की बदन-छबि, केश, और चितवन उपमेयों का एवं 'हिय सियरावै' 'रस दरसावै' और 'घाव करै' धर्मों का वर्णन है; पर उपमान और वाचक का लोप है।

[तीन के लोप का एक भेद]

(ज) *धर्मोपमानवाचकलुप्ता*

जिसमें केवल उपमेय हो; पर उपमान, धर्म एवं वाचक तीनों का लोप हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सिय-रामहिँ अवलंब अरु, भालु-कपिन कहँ प्रान।
दान दियौ हनुमान यह, सुन्यौ न देख्यौ आन॥

यहाँ श्रीहनुमानजी के 'दान' उपमेय मात्र का उल्लेख है, उपमान, वाचक एवं धर्म का लोप है; और चतुर्थ चरण से लुप्ता लक्षित होती है।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

अकथनीय अनुपम कैलासा। तासु सिखर बट-बिटप-बिलासा॥

यहाँ भी केवल 'कैलास' उपमेय तो है; पर 'रजतसमूह' उपमान, 'धवल' धर्म एवं 'सम' वाचक-शब्द का लोप है; और 'अकथनीय' एवं 'अनुपम' शब्दों से 'लुप्तोपमा' लक्षित होती है।

सूचना—यहाँ आठ प्रकार की 'लुप्तोपमाएँ' लिखी गई हैं। यद्यपि कई ग्रंथों में इससे अधिक देखी जाती हैं, तथापि हमने निम्नोक्त लुप्ताएँ नहीं मानी हैं—

(क) 'उपमेयलुप्ता' में उपमान, धर्म एवं वाचक होता है, प्रधान अंग उपमेय नहीं होता।

(ख) 'धर्मोपमेयलुप्ता' में केवल उपमान एवं वाचक होता है।

(ग) 'उपमेयोपमानलुप्ता' में केवल धर्म एवं वाचक होता है।

(घ) 'धर्मोपमानोपमेयलुप्ता' में वाचक मात्र होता है।

(ङ) 'वाचकोपमेयोपमानलुप्ता' में धर्म मात्र होता है।
अतः इन पाँचों में चमत्कार का अभाव है।

(च) 'वाचकधर्मोपमेय' का लोप होने के कारण केवल उपमान के वर्णन से वक्ष्यमाण 'रूपकातिशयोक्ति' नामक एक अन्य अलंकार होता है; अतः इसकी भी लुप्तोपमाओं में गणना नहीं की गई है।

विशेष सूचना—'उपमालंकार' के उक्त दो भेदों के अतिरिक्त निम्नोक्त चार भेद और लिखे जाते हैं—

३ मालोपमा❀

जिसमें एक उपमेय के अनेक उपमान कहे जायँ। इसके दो भेद होते हैं—

(क) *भिन्नधर्मा*

जिसमें जितने उपमान हों, उन सबके भिन्न-भिन्न धर्म बतलाए जायँ।

❀ उपमाओं की माला।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

चंचल खंजन-झखन से, दीह-जलज-दल ऐन।
अनियारे असरीर के, तीर तिहारे नैन॥

यहाँ 'नेत्र' उपमेय के 'खंजन, मीन' 'कमल-दल' एवं 'काम के तीर' उपमानों के क्रमशः 'चंचलता' 'दीर्घता' एवं 'तीक्ष्णता' इन भिन्न-भिन्न धर्मों का उल्लेख है।

२ पुनः यथा—

राम काम-सत-कोटि-सुभग-तन। दुर्गा-कोटि-अमित अरि-मर्दन॥
सक्र-कोटि-सत सरिस बिलासा। नभ-सत-कोटि अमित अवकासा॥
मरुत-कोटि-सत बिपुल बल, रबि-सत-कोटि प्रकास।
ससि-सत-कोटि सो सीतल, समन सकल-भव-त्रास॥
काल-कोटि-सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूम-केतु-सत-कोटि सम, दुराधरष भगवंत॥
प्रभु अगाध सत-कोटि-पताला। समन-कोटि-सत सरिस कराला॥
तीरथ-अमित-कोटि सम पावन। नाम अखिल-अघ-पुंज-नसावन॥
हिम-गिरि-कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु-कोटि-सत सम गंभीरा॥
काम-धेनु-सत-कोटि समाना। सकल-काम-दायक भगवाना॥
सारद-कोटि-अमित चतुराई। बिधि-सत-कोटि सृष्टि-निपुनाई॥
बिष्णु-कोटि सम पालन करता। रुद्र-कोटि-सत सम संहरता॥
धनद-कोटि-सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच-निधाना॥
भार-धरन सत-कोटि-अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥

—रामचरित-मानस।

यहाँ भी श्रीरामचंद्र महाराज उपमेय के काम, दुर्गा आदि २३ उपमान और इनके 'सुभग-तन' 'अरि-मर्दन' आदि भिन्न-भिन्न धर्म "भार-धरन सत-कोटि-अहीसा" पर्यंत कहे गए हैं।

३ पुनः यथा—कवित्त ।

नर्मदा सी सर्मदा प्रसिद्ध है जहान बीच,
सरयू समान बहु भाँति भूरि भाई है।
जमुना सी मानस की मोहिनी अनूठी बनी,
सुंदर सरस्वती सी गुप्त रूप आई है॥
सुर-सरिता सी तीन ताप कौं हरनवारी,
सुखद सुधा सी सब चाल सौं सुहाई है।
भूप गंगासिंह की खुदाई[1] खुद आई[2] जनु,
नहर[3] अनूठी यह लोक मैं लखाई है॥

—महामहोपाध्याय पं० देवीप्रसाद शुक्ल कवि-चक्रवर्ती।

यहाँ भी बीकानेर-नरेश श्रीगंगासिंहजी की लाई हुई 'नहर' उपमेय के 'नर्मदा' आदि ६ उपमान और उनके 'शर्मदा' (शांति-दायिनी) आदि भिन्न-भिन्न धर्म कहे गए हैं।

(ख) अभिन्नधर्मा

जिसमें अनेक उपमानों का एक ही धर्म बतलाया गया हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

कारीगर चार अध ऊरध बिठाए विधि,
सौंपि सेवकाई सखि! श्रौनि[4]-सुमुखी की है।
इत को नितंब नित खैंचि कुच एँचि उतैं,
फूली तूल[5] फेन[6] फूलहू सी हरवी की है॥

---

१ खुदाई हुई एवं प्रभुता। २ खोदी गई एवं स्वयं आई। ३ यह पक्की नहर फीरोज़पुर (पंजाब) से हनुमानगढ़ (बीकानेर) तक बनाई गई है। ४ कटि। ५ धुनी हुई रूई। ६ झाग।

कीन्ह कटि सार खीन सुमन-सिरीष-तार,
भार गहि आपु आस पूरी पिय-जी की है।
लोनी ललना की लुरै लट सी निपट नीकी,
नाक-नटनी[1] की हू न ऐसी कटि नीकी है॥

यहाँ नायिका की कटि उपमेय के 'फूली तूल', 'फेन' एवं 'फूल' इन तीन उपमानों का 'हरवी' (हलकी) एक ही धर्म कहा गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

राम-नर-नाहर के तरल तुरंग ताते,
जगत जवाहिर तें जीन जरतारी से।
आछे आव-जाव मैं सो तिरछे तराछे साचे,
कुलटा-कटाछै ताछै नाचै नग्र-नारी[2] से॥
'सूरजमल' फुरती कहाँ लौं बखानी जाइ,
मुग्ध मन होत तहाँ बड़े बुद्धि-धारी से।
चकरी से चक्र से अलात-चक्र[3] चपला से,
चीता से चिराग से चिनाक चिनगारी से॥

—बारहठ महाकवि सूर्यमल्ल।

यहाँ भी बूँदी-नरेश रामसिंह के 'तुरंग-समूह' उपमेय के 'चकरी' आदि उपमानों का 'फुरती' (चपलता) एक ही धर्म कहा गया है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

कीरति तिहारी राम! कहा कहै 'हनूमान',
दसों दिसि दिव्य दीह दीपति अकेली सी।
भोडर सी भूषन सी भानु सी भगीरथी सी,
भारती सी भव सी भवा[4] सी भुज बेली सी॥

---

१ अप्सरा। २ वेश्या। ३ किसी लकड़ी आदि के अग्रभाग को प्रज्वलित करके घुमाना। ४ पार्वती।

कुंद सी कविंद[1] सी कुमुद सी कपूरिका सी,
कंजन की कलिका कलपतरु केली सी।
चपला सी चक्र सी चमर सी औ चंदन सी,
चंद्रमा सी चाँदनी सी चाँदी सी चमेली सी॥
—हनुमान।

यहाँ भी महाराज श्रीरामचंद्रजी की कीर्ति उपमेय के भोडर आदि अनेक उपमानों में दीप्ति (प्रकाश) एक ही धर्म कहा गया है।

४ लुप्तोपमा

जिसमें उपमेय और उपमान के समता-सूचक (वाचक)-शब्द सम, समान, इव आदि के स्थान पर बंधु, चोर, वादी, सुहृद, कल्पवृक्ष, प्रभु, रिपु, सोदर, बहसत, निदरत, हँसत, होड करत, आदि शब्दों का प्रयोग हो। इसे 'संकीर्णोपमा' तथा 'ललितोपमा' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

उन आँगुरियाँ अलि! गंध गुराई गुलाबन की छलि छीन लई।
जब काम अकाय[2] भयौ तब ही सब सायक सौंपि दिए कि दई!॥
नख रोरी से राते जराव-जरी मुँदरीन की ओप अनूप ठई।
मनु देखन कों पिय के तिय के हिय तें अँखियाँ निकसी ये नई॥

यहाँ कहा गया है—"नायिका की करांगुली उपमेय ने गुलाब

---

१ शुक्र तारा। २ अशरीर।

उपमान की गंध एवं गोरापन छीन लिया।" इसमें 'छीन लई' वाचक-शब्द द्वारा 'लक्ष्योपमा' हुई है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

गावन-मलार मिलि प्यारी-मनभावन को,
सावन के आवन को आदर दरीची मैं।
बरषा-बहार धार-मूसल निहारि करैं
बैठे बारिनिधि[1] को अनादर दरीची मैं॥
आरसी[2]-ललाम[3]-फूल-दाम[4]-मखतूल[5]-स्याम[6]-
झूलन झुलावै स्यामा सादर दरीची मैं।
हिलत हिँडोरे गोरे गात झलकत मानो,
थिरकि रही है बिज्जु बादर-दरीची मैं॥

यहाँ भी 'बरषा-बहार धार' उपमेय के 'बारिनिधि' उपमान का वाचक-शब्द 'अनादर' आया है।

३ पुनः यथा—सवैया।

अलि-पुंजन की उत पाँति लगी इत हैं अलकैं छबि बंक धरे।
मकरंद झरैं अरबिंद उतैं इत नैनन सौं जल-बिंदु झरै॥
उत लाल प्रसून पलासन मैं इत हैं अधराधर लाल परे।
कवि 'आर्य' अहो! अवलोकिए तो बिरहीनि बसंत सौं बाद करै॥

—पं० गोवर्द्धनचंद्र ओझा।

यहाँ भी 'वियोगिनी नायिका' उपमेय का 'वसंत' उपमान 'बाद करै' समता-सूचक-शब्द द्वारा बतलाया गया है।

---

१ समुद्र। २ दर्पण। ३ सुंदर। ४ फूल-माला। ५ मखमल। ६ कालेरंग की तथा श्रीकृष्ण।

लक्ष्योपमा-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

करि की चुराई चाल, सिंह की चुराई लंक,
　　ससि को चुरायौ मुख, नासा चोरी कीर की ।
पिक के चुराए बैन, मृग के चुराए नैन,
　　दसन अनार, हाँसी बीजरी गँभीर की ॥
कहै कवि 'बेनी' बेनी ब्याल की चुराइ लीन्ही,
　　रती-रती सोभा सब रति के सरीर की ।
अब तो कन्हैयाजू को चित हू चुराइ लीन्हौ,
　　चोरटी है गोरटी या छोरटी अहीर की ॥

—बेनी-प्राचीन (असनी के) ।

यहाँ 'नायिका की चाल' उपमेय के 'करि की चाल' उपमान का वाचक-शब्द 'चुराई' रखा गया है । इसी प्रकार के और भी अनेक वर्णन होने के कारण माला है ।

५ रसनोपमा ❀

जिसमें कहे हुए उपमेय क्रमशः उत्तरोत्तर उपमान होते जायँ और इसी प्रकार उपमेयों तथा उपमानों की शृंखला[1] बन गई हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

सुरधुनि-सुभ्र-सरीर इव, आसय अमित उदार ।
आसय सरिस अमोघता, अघ-ओघन-परिहार ॥

---

१ साँकल (जंजीर) ।

❀ यह अलंकार 'उपमा' के और 'एकावली' की गृहीत-मुक्त-रीति के संयोग से होता है ।

यहाँ श्रीगंगाजी का 'उदार-आशय' उपमेय है; फिर वही 'अमोघता' का उपमान रखा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

स्याम-काम-चामर सरिस, मृदु मखमल के तार।
तिन तारन अनुहार अलि!, भानु-कुमरि के बार॥

यहाँ भी 'मखमल के तार' उपमेय है; और यही उपमेय श्रीराधिकाजी के बालों का उपमान रखा गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

कुल सी काया, काय सी, चित-चतुराई-बाल।
चित-चतुराई सी चखनि-मोहनि मदनगोपाल!॥

यहाँ भी 'श्रीराधिकाजी की काया' उपमेय है; और वही 'चित-चतुराई' का एवं 'चित-चतुराई' 'नेत्रों की मोहिनी' का उपमान रखा गया है।

६ समुच्चयोपमा

जिसमें उपमान के धर्मों का समुच्चय[1] (बाहुल्य) हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

स्याम-कमल-स्यामल-मृदुल, सारस[2]-स्याम-बिकास।
स्याम-तामरस[3]-मंजु-मुख, स्याम-सरोज-सुबास॥

यहाँ 'श्रीकृष्ण के मुख' उपमेय को एक 'नील-कमल' उपमान के श्यामवर्ण, कोमलता, विकास, सुंदरता एवं सुवास पाँच धर्मों से उपमा दी गई है।

---

१ अर्थात् एक उपमान के कई धर्मों से उपमा दी जाय। २ कमल ३ कमल।

२ पुनः यथा—दोहा ।

श्रीरघुबर को बीर-ब्रत, साहस सिंह समान ।
प्रबल पराक्रम आक्रमन, पंचानन परमान ॥

यहाँ भी 'श्रीरघुनाथजी' उपमेय के लिये 'सिंह' उपमान के वीर-व्रत, साहस, पराक्रम एवं शत्रु पर आक्रमण करना इन चार धर्मों से उपमा दी गई है ।

३ पुनः यथा—श्लोक ।

विद्युत्सम्पातनिनदं विद्युत्सम्पातपिङ्गलम् ।
विद्युत्सम्पातदुष्प्रेक्ष्यं विद्युत्सम्पातचञ्चलम् ॥
—महाभारत (वनपर्व) ।

यहाँ भी द्रौपदी के आग्रह से एक अद्भुत पुष्प के लिये जाते हुए भीमसेन को मार्ग में दर्शन देने के समय श्रीहनुमानजी के लिये उनके वीर रूप के उपमान 'विद्युत्संपात' (बिजली-गिरने) के भयानक शब्द, धूसर (बानर का रंग), आँखों में चकाचौंध हो जाने से कष्ट से देख पड़ना एवं चंचलता इन चार धर्मों से उपमा दी गई है ।

सूचना—यह 'उपमा' अलंकार अनेक अलंकारों का उत्पादक वा कारण है । यथा—(१) "मुख सा मुख ही है"—अनन्वय । (२) "चंद्र सा मुख है, मुख सा चंद्र है"—उपमेयोपमा । (३) "मुख सा चंद्र है"—प्रतीप । (४) "मुख ही चंद्र है"—रूपक । (५) "चंद्र समझकर चकोर मुख की ओर अनिमेष नेत्रों से देख रहा है"—भ्रांति । (६) "यह मुख है वा चंद्र"—संदेह । (७) "मुख नहीं चंद्र है"—अपह्नुति । (८) "मुख मानो चंद्र है"—उत्प्रेक्षा । (९) "मुख सुषमा से एवं चंद्र प्रकाश से शोभित है"—दीपक । (१०) "मुख सुषमा से शोभित एवं चंद्रमा चंद्रिका

से विलसित है"—प्रतिवस्तूपमा"। (११) "मुख अपनी सुषमा से पति को प्रसन्न करता है, चंद्रमा अपनी चंद्रिका से संसार को शीतल करता है"—दृष्टांत। (१२) "मुख की सुखमा चंद्र में है" अथवा "चंद्र का प्रकाश मुख में है"—निदर्शना। (१३) "चंद्र कलंकित है; अतः मुख की समता नहीं कर सकता"—व्यतिरेक। इत्यादि। और रमणीयार्थता भी इसीमें सबसे अधिक है; अतः इसको बहुत से अर्थालंकारों का प्राण रूप एवं प्रधान मानकर संपूर्ण ग्रंथकारों ने सबसे प्रथम स्थान दिया है।

इसके पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, मालोपमा आदि जितने भेद यहाँ लिखे गए हैं, इनके अतिरिक्त श्रौती (शाब्दी), आर्थी, समस्त-वस्तु-विषय, सावयव, निरवयव, एकदेशविवर्ति, परंपरित, भूषणोपमा, व्यंग्योपमा, विपरीतोपमा, असंभावितोपमा, संशयोपमा, हेतूपमा, अभूतोपमा, अद्भुतोपमा आदि २२४ तक भेद होने का लेख देखने में आया है। सबसे अधिक भेद 'अलंकार-आशय' एवं 'कविप्रिया' में पाए जाते हैं।

(२) अनन्वय

जहाँ उपमेय ही को उपमान बतलाया जाय, वहाँ 'अनन्वय' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

काम, काम-तरु, ससि, ऋषभ, राम रहे मन मान।
रुचिर बरद रत[1] बिरत[2] बलि[3], हर से हर हि न आन॥

यहाँ 'हर' उपमेय के 'हर' ही उपमान कहे गए हैं।

---

१ अनुरागी। २ वीतराग। ३ बलवान।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

रूप भरी रंग भरी भावन अनेक भरी,
देखि-देखि मोहि रही साथ की जे सखियाँ ।
मैन भरी मान भरी मोहनी निपट अति,
रस भरी जस भरी झाँखैं झोर झँखियाँ ॥
'नंद' कहै टोने भरी सोभित सलोने मुख,
तब तें न देत चैन जब तें मैं लखियाँ ।
मारिबे जिवाइबे कों उपमा लजाइबे कों,
तेरी अँखियाँ सी प्यारी ! तेरी दोनों अँखियाँ ॥

—नंद ।

यहाँ भी 'अँखियाँ' उपमेय का 'अँखियाँ' ही उपमान रखा गया है ।

३ पुनः यथा—रोला छंद ।

सुरसरि-सरि-हित बिसरि आन उपमान न आनत ।
कहे सुने चित गुने सकल अनुचित सो जानत ॥
सुमिरि गंग कहि गंग गंग-संगति अभिलाखत ।
भाषि गंग सम गंग रंग कविता को राखत ॥

—बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ।

यहाँ भी श्रीगंगाजी उपमेय को ही उनका उपमान कहा गया है ।

(३) उपमेयोपमा

जहाँ उपमेय को जिस उपमान से उपमा दी जाय, उस उपमान को भी उसी उपमेय से उपमा दी जाय, अर्थात् जहाँ तीसरे समान पदार्थ का अभाव हो, वहाँ

'उपमेयोपमा' अलंकार होता है। इसको 'परस्परोपमा' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

संकर छबीले राम ही से रमनीय रूप,
संकर से राम कमनीय छबि-धाम हैं।
राम अनुहार एक औढर-उदार[1] ईस,
ईस से उदार राम पूरैं सब काम हैं॥
राम-नाम हेतु-उपराम[2] सिव-नाम ही सो,
राम-नाम ही सो अभिराम सिव-नाम है।
पोषक प्रजा के प्रान सोषक सुरारिन के,
राम के समान संभु संभु सम राम हैं॥

यहाँ 'शंकर' उपमेय के 'राम' उपमान एवं 'राम' उपमेय के 'शंकर' उपमान कहे गए हैं।

२ पुनः यथा—सवैया।

बारन ते बकसै जिनकी समता न लहै बढ़ि बिंध्य समूचो।
किति-सुधा दिग-भित्ति पखारत चंद-मरीचिन को करि कूचो[3]॥
राव सता[4]-सुत कों 'मतिराम' महीपति क्यौंकरि और पहूँचो।
भूपर भाउ भुवप्पति को मन सो कर औ कर सो मन ऊँचो॥

—मतिराम।

यहाँ भी राजा भाऊसिंह की उदारता के वर्णन में उनके मन के समान हाथ और हाथ के समान मन ऊँचा कहा गया है।

---

१ अत्यंत उदार। २ शांति। ३ कीर्ति रूप अमृत, चंद्रमा की किरणों का कूचा (एक औजार, सफेदी लगाने की कूँची) बनाकर दिशाओं की भित्तियों को धोता है। ४ शत्रुशाल।

उपमेयोपमा-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

सब-मन रंजन हैं खंजन से नैन आली !
नैनन से खंजन हू लागत चपल हैं।
मीनन से महा मन-मोहन हैं मोहिबे कों,
मीन इनहीं से नीके सोहत अमल हैं॥
मृगन के लोचन से लोचन हैं रोचन ये,
मृग-दृग इनहीं से सोहैं पलापल[1] हैं।
'सूरति' निहारि देखी, नीके एरी प्यारीजू के,
कमल से नैन अरु नैन से कमल हैं॥

—सूरति मिश्र ।

यहाँ खंजन से नेत्र एवं नेत्र से खंजन, मीन से नेत्र एवं नेत्र से मीन, मृग-नेत्रों से नेत्र एवं नेत्रों से मृग-नेत्र तथा कमल से नेत्र एवं नेत्र से कमल, ये चार 'परस्परोपमाएँ' आई हैं; अतः यह माला है ।
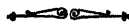
(४) प्रतीप*

जहाँ उपमान को उपमेय कल्पित किया जाय अथवा आदरणीय उपमान का उपमेय द्वारा तिरस्कार किया जाय, वहाँ 'प्रतीप' अलंकार होता है। इसके पाँच भेद हैं—

---

१ चमकदार ।

* 'प्रतीप' शब्द विलोमवाची है । इसे महाकवि दंडी ने 'विपरीतोपमा' माना है ।

१ प्रथम प्रतीप

जिसमें प्रसिद्ध उपमान (चंद्र कमलादि) को उपमेय माना जाय ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

सोहत श्रीमति-कुचन से, सातकुंभ के कुंभ ।
अरु इन सम उन्नत अहैं, मत्त करिन के कुंभ ॥

यहाँ कुचों के प्रसिद्ध उपमान शातकुंभ (सुवर्ण) के कुंभों (कलसों) को एवं हाथी के कुंभों को उपमेय माना गया है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

मोहि देत आनंद हो, वा मुख सो यह चंद ।
लीनौ आइ छिपाइकै, बैरी बादर-बृंद ॥

—राजा रामसिंह (नरवलगढ़) ।

यहाँ भी 'चंद' प्रसिद्ध उपमान को उपमेय कहा गया है ।

प्रथम प्रतीप-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

चरन-करन सम जाके कहै 'रघुनाथ'
सरद-समै को फूल्यौ चारु अरबिंदु है ।
जाके बार सुकुमार ऐसे मखतूल-तार,
नैन से निहारि देखौ माधौ[1] के मलिंदु है ॥
बोलन सी अमी जाके अधर सो अनुराग,
जाकी मोहनता ऐसो मदन नरिंदु है ।
ऐसी बाल लाल हौं तिहारे लिये लाऊँ जाके,
अंग-ओप सी उजेरी, आनन सो इंदु है ॥

—रघुनाथ ।

---

१ वैशाख ।

यहाँ 'चरन' 'करन' आदि कई उपमेयों के 'अरविंदादि' प्रसिद्ध उपमानों को उपमेय बनाया गया है; अतः माला है।

२ द्वितीय प्रतीप

जिसमें उपमान को उपमेय बनाकर वर्णनीय उपमेय का तिरस्कार किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

चंपक चामीकर[1] तड़ित[2], तव-तनु सरिस समर्थ।
यह जिय जानि अजान तिय! गरब गुमान निरर्थ॥

यहाँ नायिका की अंग-द्युति वर्णनीय उपमेय है। उसके चंपक, चामीकर एवं तड़ित उपमानों को उपमेय बनाकर चतुर्थ चरण द्वारा उपमेय का गर्व-परिहार (अनादर) किया गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

सागर मैं गहराई मेरु मैं उँचाई रति-
नायक मैं रूप की निकाई निरधारिए।
दान देव-तरु मैं सयान सुर-गुरु मैं,
प्रसाद गंग-नीर मैं सु कैसे कै बिसारिए॥
तरनि मैं तेज बरनत 'मतिराम' जोति,
जगमगै जामिनी-रमन[3] मैं बिचारिए।
राव भावसिंह! कहा तुम ही बड़े हौ जग,
रावरे के गुन और ठौर हू निहारिए॥

—मतिराम।

यहाँ भी समुद्र आदि उपमानों को उपमेय बनाकर वास्तविक

१ स्वर्ण। २ बिजली। ३ चंद्र।

उपमेय राजा भाऊसिंह का 'कहा तुम ही बड़े हो' वाक्य द्वारा तिरस्कार किया गया है।

✓ ३ तृतीय प्रतीप

जिसमें उपमान को उपमेय मानकर (द्वितीय प्रतीप के विरुद्ध) वर्णनीय उपमेय द्वारा उपमान का तिरस्कार किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सहज स्याम सुषमा सुधा-सदन स्याम-तनु जान।
जलद! जलधि-जल-युक्त है, तू कत करत गुमान॥

यहाँ श्रीकृष्ण की श्याम एवं सुधामयी अंग-द्युति उपमेय का जलद उपमान है; उसको उपमेय मानकर अंग-द्युति द्वारा उपमान का तिरस्कार किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

✓ अवनि! हिमाद्रि! समुद्र! जनि करहु वृथा अभिमान।
सांत धीर गंभीर हैं, तुम सम राम सुजान॥

यहाँ भी अवनि, हिमाद्रि एवं समुद्र उपमानों को उपमेय बनाकर उनके गुणों का श्रीरामजी में होना वर्णन करके उक्त उपमानों का गर्व-परिहार किया गया है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

अंक न कलंक जाके राहु को न संक कछू,
जामैं बसुधा की सोध सुधा भरियतु है।
एन[1] तें सरस नैन पच्छ हू घटै न जोति,
सोई छबि दिन-रैन दूनी धरियतु है॥

---

१ मृग।

चकवा सु भौंर और कंज कों न भयकारी,
बिरही बिलोके तें बियोग हरियतु है।
आनन-प्रवीन आगै मान न रहैगो ससि!
क्यौं रे दुःख-दान तैं गुमान भरियतु है॥
—प्रवीण-सागर।

यहाँ भी चंद्रमा उपमान को उपमेय बनाकर उस (उपमान) का चतुर्थ चरण द्वारा अनादर किया गया है।

✓ ४ चतुर्थ प्रतीप

जिसमें उपमान को उपमेय एवं उपमेय को उपमान मानकर उस कल्पित उपमान से उपमा दी जाय और फिर वह उपमा असत्य सिद्ध की जाय।

१ उदाहरण यथा—कवित्त-चरण।

आम है अमी से इन ओठन सरीसे पै न,
लेहु पांथ प्यारे! ये तिहारे अनुकूल है।*

यहाँ आम उपमान को उपमेय और ओष्ठ उपमेय को उपमान मानकर जो उपमा दी गई है, उसको 'सरीसे पै न' वाक्य से मिथ्या सिद्ध किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

दान माँझ तरुराज अरु, मान माँझ कुरुराज।
नृप जसवँत! तो सम कहत, ते कवि निपट निकाज॥
—कविराजा मुरारिदान।

यहाँ भी तरुराज (कल्पवृक्ष) एवं कुरुराज (राजा दुर्योधन)

* पूरा पद्य 'अर्थ-वक्रोक्ति' में देखिए।

उपमानों को उपमेय और जोधपुर-नरेश महाराजा जसवंतसिंह उपमेय को उपमान बनाकर, इनसे दी हुई उपमा को मिथ्या कहा गया है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

वे तुरंग[1] सेत रंग संग एक, ये अनेक,
हैं सुरंग अंग-रंग पै कुरंग-मीत[2] से।
ये निसंक-अंक-यज्ञ[3], वे ससंक 'केसौदास'
ये कलंक-रंक, वे कलंक ही कलीत से॥
वे पिए सुधाहि ये सुधा-निधीस के रसै[4] जु,
साँच हू सुनीत ये पुनीत, वे पुनीत से।
देहि ये दिए बिना बिना दिए न देहि वे,
हुए न हैं न होंहिँगे न इंद्र इंद्रजीत से॥
—केशवदास।

यहाँ भी जो देवराज इंद्र उपमान हैं, उनको उपमेय और जो ओड़छा के राजा इंद्रजीत उपमेय हैं, उनको उपमान बनाकर इस कल्पित उपमान से जो उपमा दी गई है, उसको "हुए न हैं न होंहिँगे न" इस कथन से मिथ्या सिद्ध किया गया है।

५ पंचम प्रतीप

जिसमें इस रीति से उपमान का तिरस्कार किया जाय—"जब उपमान का भार उठाने को उपमेय ही समर्थ है तब फिर उपमान की क्या आवश्यकता है?"

१ इंद्र का घोड़ा उच्चैश्रवा। २ चंद्रमा। ३ यज्ञ-कुंड। ४ शिव की भक्ति का रस।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

परिमल-पूरित पीत मृदु, मंजु गुसाँइन-गात ।
अब अलि ! चंपक-फूल की, भूलि न कीजिय बात ॥

यहाँ पर कहा गया है कि जब चंपक-पुष्प के सुवास, पीतत्व, कोमलता एवं सुंदरता गुणों का भार उठाने को श्रीराधिकाजी की अंग-द्युति उपमेय ही समर्थ है, तब उसकी क्या आवश्यकता है ? । इस प्रकार चंपक-पुष्प उपमान का तिरस्कार किया गया है ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

दिन-दिन दीन्हे दूनी संपति बढ़ति जाति,
ऐसो याको कछू कमला को बर बर है ।
हेम हय हाथी हीरा बकसि अनूप जिमि,
भूपन को करत भिखारिन को घर है ॥
कहै 'मतिराम' और जाचक जहान सब ,
एक दानि सत्रुसाल-नंदन को कर है ।
राव भावसिंहजू के दान की बड़ाई देखि ,
कहा कामधेनु है कछू न सुरतरु है ॥
—मतिराम ।

यहाँ भी कामधेनु एवं कल्पतरु उपमानों के समस्त गुण-कार्यों की सामर्थ्य राजा भावसिंह के 'हाथ' उपमेय में है; अतः अंत में उनकी अनावश्यकता बतलाकर उनका तिरस्कार किया गया है ।

सूचना—'पंचम प्रतीप' में आदरणीय उपमान का निरादर होना ही प्रतीपता (विलोमता) है ।

[समस्त-वस्तु-विवर्ति]

जिसमें, आरोप्यमाण (जिसका[1] आरोप किया जाय) और आरोप-विषय (जिसमें[2] आरोप किया जाय), इन दोनों का स्पष्ट शब्दों में वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

विजय-मनोरथ को रथ, मनमथ[3] साथ
सारथी, सहाय ताके सकल समाज की।
लोचन-कुरंग[4] ताते तरल तुरंगन[5] तें,
नासिका-निषंग[6], छाई औरैं छवि आज की॥
कुटिल कटाछें आछे आयुध, असेष केस,
कवच, कमान सोहैं भौंहें सुख-साज की।
चढ़ी असवारी लाज-ज्ञान की गढ़ो पै आज,
राधा-मुख-मंडल-मयंक-महाराज की॥

यहाँ श्रीराधा-मुख उपमेय में चंद्र उपमान का विना किसी न्यूनाधिकता के सर्वांगतया अभेद आरोप हुआ है। यथा:—मुख उपमेय के विजय-मनोरथ, काम, काम की सेना (वसंतादि) एवं नेत्र आदि में क्रमशः चंद्र उपमान की रथ, सारथी, सेना एवं मृग आदि सामग्रियों का आरोप किया गया है; अतः यह 'सावयव' है और सभी उपमानों का शाब्द वर्णन है; इससे यह 'समस्त-वस्तु-विषय' है।

---

१ जैसे—चंद्र का। २ जैसे—मुख में। ३ काम। ४ मृग। ५ घोड़े। ६ तरकश।

२ पुनः यथा— छप्पय ।

प्रतिभा उभय प्रकार अवनि आधार बारि बर ।
प्रतिपादक - रमनीय - अर्थ पद मूल मनोहर ॥
गुन-गुंफित त्रय बृत्ति साख सब रसिक-रिझावन ।
बृत्त-व्रात[1] बहु पात, सुलच्छन सुमन सुहावन ॥
फल सरस-भाव-ध्वनि चित्र पुनि माली मुनि-कवि-आदि अरु ।
भरतादि व्यास तुलसी, जयतु सुख-समंद साहित्य-तरु ॥*

यहाँ भी न्यूनाधिकता के बिना साहित्य, वृक्ष-रूप में कहा गया है और साहित्य उपमेय में वृक्ष उपमान सर्वांगतया अभेद आरोपित किया गया है। यथा—वृक्ष की पृथ्वी-आधार, जल, मूल, शाखाएँ, पत्र, पुष्प, फल और माली, सामग्रियाँ होती हैं; एवं साहित्य की दो प्रकार की प्रतिभाओं (सहजा और उत्पाद्या), रमणीयार्थ-प्रतिपादक-शब्द, गुणों से ग्रथित वृत्तियों, छंद, लक्षण, रस तथा भावों-सहित ध्वनि (व्यंग्य) एवं चित्र (अलंकार) और काव्य-कर्ता महर्षि बालमीकि आदि में क्रमशः वृक्ष की उक्त सामग्रियों का आरोप हुआ है; अतः यह 'सावयव' है, और इन सबका वर्णन शब्द द्वारा हुआ है; अतः 'समस्त-वस्तु-विवर्ति' है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

सूरजमल[2] कवि-बृंद रवि, गुरु-गनेस अरबिंद ।
पोषे सुमति-मरंद दै, मो से मलिन मलिंद ॥

यहाँ भी गोस्वामी गणेशपुरीजी गुरु उपमेय में अरविंद

---

१ समूह । २ बूँदी राजाश्रित महाकवि सूर्यमल्लजी जिन्होंने 'वंश-भास्कर' नामक अपूर्व ग्रंथ बनाया था; और जो गुरुवर गणेशपुरीजी के गुरु थे ।

* इस पद्यका अर्थ 'मंगलाचरण' में देखिए ।

उपमान विना न्यूनाधिकता के सर्वांगता से अभेद आरोपित है। अर्थात् गुरु उपमेय के महाकवि सूर्यमल्लजी, सुमति एवं मो से मलिन में क्रमशः उपमान की रवि, मकरंद एवं मलिंद सामग्रियों का आरोप हुआ है; अतः यह 'सावयव' है और उक्त उपमानों का वर्णन शब्द द्वारा हुआ है; इससे 'समस्त-वस्तु-विषय' है।

४ पुनः यथा—पद (रागिनी बिलावल)।

अबके माधव ! मोहि उधारि।
मगन हौं भव-अंबुनिधि मैं कृपा-सिंधु मुरारि !॥
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल मैं गहे ग्राह-अनंग॥
मीन-इंद्रिय अतिहि काटत मोट-अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह-सेवार॥
काम-क्रोध-समेत तृष्णा पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम-नौका-ओर॥
थक्यौ वीच बेहाल बिहवल सुनहु करुना-मूल।
स्याम ! भुज गहि काढ़ि डारहु 'सूर' ब्रज के कूल॥

—महात्मा सूरदास।

यहाँ भी बिना न्यूनाधिकता के संसार का समुद्र रूप में उल्लेख हुआ है और उपमेय के अंग माया आदि में उपमान के अंग नीर आदि का शाब्द आरोप किया गया है।

५ पुनः यथा—कवित्त।

सुनि मुनि कौसिक तें साप को हवाल सब,
बाढ़ी चित करुना की अजब उमंग है।
पद-रज डारि, करे पाप सब छारि, करि
नवल सु नारि दियौ धाम हू उतंग है॥

'दीन' भनै ताहि लखि जात पति-लोक-ओर,
उपमा अभूत को सुभानौ नयो ढंग है।
कौतुक-निधान राम रज की बनाइ रज्जु,
पद तें उड़ाई ऋषि-पतनी-पतंग है॥
—लाला भगवानदीन।

यहाँ भी चतुर्थ चरण में ऋषि-पत्नी (अहल्या) उपमेय में पतंग उपमान का अभेद आरोप है। अर्थात् ऋषि-पत्नी-उपमेय-पक्ष के राम एवं पद-रज में उपमान-पक्ष के कौतुक-निधान (बाजीगर) एवं रज्जु (डोरी) का आरोप हुआ है।

[एक-देश-विवर्ति]

जिसमें आरोप किए जानेवाले कुछ उपमान शाब्द[1] और कुछ आर्थ[2] हों। अर्थात् जो रूपक उपमान के किसी अंग से हीन हो।

१ उदाहरण यथा—चौपाई।

करि उपदेस अमित उपचारा। औषध उचित प्रकृति-अनुसारा॥
माया-जनित मोह अज्ञाना। भ्रम संसय सब हरहिं सुजाना॥

यहाँ ब्रह्म-विद्या के उपदेश रूप उपमेय में औषध उपमान का आरोप तो शाब्द है; किंतु मोह, अज्ञान, भ्रम एवं संशय उपमेयों के लिये रोग उपमान नहीं कहा गया; वह केवल अर्थ से जाना जाता है; अतः 'एक-देश-विवर्ति' है।

---

१ जो शब्दों द्वारा बतलाया जाय। २ जो बिना कहे अर्थ द्वारा जाना जाय।

२ पुनः यथा—दोहा ।

ब्रज-बारिधि यदुकुल-सलिल, कुमुदिनि-गोप-कुमारि ।
जन-रंजन-हित स्याम-ससि, प्रगटेउ खल-जलजारि[1] ॥

यहाँ भी विना न्यूनाधिकता के श्रीकृष्ण को चन्द्रमा कहा गया है । इसमें ब्रज, यदुकुल, गोप-कुमारि एवं खल उपमेयों में तो क्रमशः वारिधि, सलिल, कुमुदिनी तथा जलज उपमानों का आरोप शाब्द है; किंतु जन (भक्त) उपमेय में चकोर उपमान का आरोप शाब्द नहीं है; केवल अर्थ द्वारा सूचित होता है ।

३ पुनः यथा—कवित्त ।

स्याम-तन सागर मैं नैन बारपार थके,
नाचत तरंग अंग-अंग रंगमगी है ।
गाजन गहर धुनि बाजन मधुर बेनु,
नागनि अलक जुग सौंधै[2] सगबगी है ॥
भँवर त्रिभंगताई पानिप लुनाई तामैं,
मोती-मनि-जालन की जोति जगमगी है ।
काम-पौन प्रबल धुकाव लोपी पाज तामैं,
आज राधे-लाज की जहाज डगमगी है ॥
—सुंदरि कुँवरि ।

यहाँ भी श्रीकृष्ण के शरीर को समुद्र रूप बतलाया गया है । इसमें नाचने आदि में तरंग आदि का शाब्द आरोप है; किंतु राधिका-नेत्र उपमेय में छोटी नौका उपमान का आरोप अर्थ द्वारा सूचित होता है ।

१ खल रूपी कमलों के शत्रु । २ सुगंध से ।

[२] निरवयव (निरंग)

जिसमें, उपमेय में अन्य अंगों के बिना केवल उपमान का आरोप हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

वचन-सुधा मुख श्रवत इत, कोकिल-कंठ लजात।
होत बिरह-विष-बस अधिक, उत अलि! स्यामल गात॥

यहाँ वचन उपमेय में सुधा उपमान का और विरह उपमेय में विष उपमान का अन्य अंगों के विना अभेद आरोप हुआ है; और दो रूपक हैं, इससे यह माला है।

२ पुनः यथा—दोहा।

दर-दर डोलत दीन ह्वै, जन-जन जाचत जाइ।
दिएँ लोभ-चसमा चखनि, लघु पुनि बड़ो लखाइ॥

—विहारी।

यहाँ भी लोभ उपमेय में अन्य अंगों के विना केवल चश्मा उपमान का अभेद आरोप है।

निरवयव-माला १ उदाहरण यथा—सवैया।

अंकुर द्वेष के नाहिं उगैं, उर सत्य-सनेह-सुधा सौं सनो रहै।
कंचन-कामिनी मैं न रमै मन, धर्म-विवेक-बितान तनो रहै॥
माधुरी मूर्ति नचो करै नैनन, भक्ति-उमंग को रंग घनो रहै।
पाँयन-पंकज मैं प्रभु के नित नेम निबाहत प्रेम बनो रहै॥

—जगन्नाथप्रसाद सर्राफ 'गुह'।

यहाँ सत्य-सनेह उपमेय में सुधा उपमान का, धर्म-विवेक में

वितान का और चरणों में पंकज का आरोप विना अंगों के हुआ है; और इन तीनों के कारण यह माला है।

[३] परंपरित

जिसमें प्रधान रूपक का कारण एक अन्य रूपक हो। अर्थात् प्रधान रूपक किसी दूसरे रूपक के आश्रित हो। इसके दो भेद होते हैं—

[श्लिष्ट-शब्द]

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

कैकेई कुमति तें नृपति बिनती करत,
बाम ! बन राम कों सुधाम तें निकास ना।
करिए न साहस बिसरिए न लाज सारी,
बनकै कुठारी रघुबंस[1]-बन नास ना॥
भरत न लैहैं राज तेरे बृथा ह्वैहैं साज,
राम बन जैहैं धरि लैहैं सिर सासना[2]।
अब ना सुहात किंतु अंत याद ऐहैं बात,
बासन बिलाइ जात रहि जात बासना[3]॥

यहाँ पूर्वार्द्ध में जो 'वंश' उपमेय में 'बन' उपमान का अभेद आरोप है, वही कैकेयी में कुठारी के आरोप का कारण है; क्योंकि बन कुठारी से काटा जाता है; अतः 'परंपरित' है; और 'वंश' शब्द के दो अर्थ कुल एवं बाँस हैं; इससे 'श्लिष्ट' है।

२ पुनः यथा—दोहा।

अखिल-लोक-अभिराम, मुख राम जपहु अबिराम।
भव-निदाघ, जनि-मरण-भय-घोर-घाम-घनस्याम॥

---

१ कुल एवं बाँस। २ शासन = आज्ञा। ३ भलाई-बुराई और गंध।

यहाँ भी 'भव' उपमेय में 'निदाघ' उपमान का, 'जन्म-मरण-भय' में 'घोर-घाम' का एवं 'श्रीरामचंद्र' में 'बादल' का अभेद आरोप है; तथा 'श्रीरामचंद्र-घनश्याम' रूपक 'जनि-मरण-भय-घोर-घाम' के एवं यह 'भव-निदाघ' के आश्रित है; अतः 'परंपरित' है; और 'घनश्याम' शब्द के 'श्याम बादल' एवं 'श्रीरामचंद्र' दो अर्थ हैं; इससे 'श्लिष्ट' है।

श्लिष्ट परंपरित-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

कुवलय[1] जीतिबे कों बीर बरिबंड राजैं,
करन[2] पै जाइबे कों जाचक निहारे हैं।
सितासित अरुनारे पानिप[3] के राखिबे कों,
तीरथ के पति हैं अलेख[4] लखि हारे हैं॥
बेधिबे कों सर मार डारिबे कों महा विष,
मीन कहिबे कों 'दास' मानस[5] बिहारे हैं।
देखत ही सुबरन[6] हीरा[7] हरिबे कों पस्य-
तोहर[8] मनोहर ये लोचन तिहारे हैं॥
—भिखारीदास।

यहाँ "कुवलय जीतिबे कों बीर बरिबंड" और "करन पै जाइबे कों जाचक" आदि पाँच 'श्लिष्ट परंपरित' हैं; इससे माला है।

[अश्लिष्ट शब्द]

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

बेद के बजार निरबेद की दरी के द्वार,
राग-रागनीन के अगार अति लोना है।

---

१ कमल और भू-मंडल। २ राजा कर्ण और कान। ३ पानी और रूप ४ देवता। ५ मन और सरोवर। ६ सुंदर वर्ण और स्वर्ण। ७ हृदय और हीरा-रत्न। ८ पश्यतोहर = देखते-देखते चुरा लेनेवाला सुनार।.

स्वाति-सलिलागम बिचार-मुकता के सीप,
मेरे मनमोहन के मोहन लौं टोना है ॥
बानी सुख-दानी सुधा-सानी प्रान प्रीतम की,
पान करिबे के मान कंचन के दोना है।
श्रवन सुहागिन के सहज सलोना तापै,
तीतर के छोना चारु तरल तरोना है ॥

यहाँ 'आगम (शास्त्र)' उपमेय में 'स्वाति-सलिल' उपमान का, 'विचार' में 'मुक्ता' का एवं 'राधिकाजी के कानों' में 'सीपों' का अभेद आरोप है; और 'कान-सीप' रूपक 'विचार-मुक्ता' के एवं यह 'स्वाति-सलिलागम' के आश्रित है; अतः 'परंपरित' है।

२ पुनः यथा—छप्पय।

कपट-कार्य कटु-कलह कुमति कुविचार कढ़ैंगे।
बुद्धिमान बिज्ञानवान बलवान बढ़ैंगे ॥
बिपथ बुरे व्यवसाय व्यसन व्यसनी बिसरैंगे।
कर्मवीर-कुल-कुमुद[1]-कलानिधि कुसल करैंगे ॥
सब भाँति जाति उन्नत बनहिँ सबकी एक अवाज हो।
यदि दीक्षित बिमल बिचार-युत "सिक्षित सकल समाज हो" ॥
—शिवकुमार 'कुमार'।

यहाँ भी 'अग्रसेन-कुल' उपमेय में 'कुमुद' उपमान का एवं उनके वंशज 'कर्मवीर' उपमेय में 'कलानिधि' उपमान का अभेद आरोप है; और 'कुल-कुमुद' रूपक 'कर्मवीर-कलानिधि' रूपक का आधार है; इससे 'परंपरित' है।

१ रात्रि-विकासी कमल।

३ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

राम-कथा कलि-पन्नग-भरनी। पुनि बिबेक-पावक कहँ अरनी॥

—रामचरित-मानस।

यहाँ भी 'कलि' उपमेय में 'पन्नग (सर्प)' उपमान का एवं 'राम-कथा' उपमेय में 'भरनी' (गारुड़ी मंत्र का गान) उपमान का अभेद आरोप है; और 'राम-कथा-भरनी' रूपक 'कलि-पन्नग' का आश्रित है; अतः 'परंपरित' है। इसीके उत्तरार्द्धगत "बिबेक-पावक कहँ अरनी" में भी इसी प्रकार यही रूपक है; अतः 'अश्लिष्ट परंपरित' की माला है।

सूचना—यहाँ परंपरित-लक्षणोक्त 'कारण' शब्द का तात्पर्य यह है कि मुख्य रूपक अपने कारणभूत अन्य रूपक का आश्रित होता है, न कि प्राकृतिक कारणवत्; और प्रधान रूपक जिस रूपक का आश्रित होता है, वह रूपक भी किसी अन्य रूपक का आश्रित हो सकना है। इसी प्रकार ऐसे बहुत से (दो से अधिक) रूपकों की भी शृंखला हो सकती है; और 'परंपरित' शब्द से भी रूपकों की परंपरा सिद्ध होती है।

(ख) अधिक अभेद रूपक

जिसमें, उपमेय में आरोपित होने से पहले उपमान की जो सहज स्थिति थी, वह आरोप किए जाने के पश्चात् कुछ अधिक या बढ़ाकर कही जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कुटिल-कटाछ-कटार को, बिक्रम बिषम बिसेख।
आँजत कटै न आँगुरी, कटै करेजो देख॥

यहाँ 'कटाक्ष' उपमेय में 'कटार' उपमान का अभेद आरोप

किया गया है; किंतु अंजन देती हुई उँगली को न काटकर दूर से देखने मात्र से ही देखनेवाले का कलेजा काट देने की सामर्थ्य कटार की प्रथम स्थिति में नहीं थी; अब वह कटाक्ष में आरोपित होने के पश्चात् कही गई है; यही अधिकता है।

२ पुनः यथा—सवैया।

दूरहिँ तें दृग देखत ही डसिहैं बस नाहिन मंत्र मनी को।
क्यौं उपहास करै जमुना-जल-धार अली-अवलीन घनी को॥
तू निज रूप रिझैहैं महा पछितैहैं कह्यौ जिय ऐहैं जनी[1] को।
बालन-ब्यालन-बालन को प्रतिपालन बावरी बाल! न नीको॥

यहाँ भी नायिका के 'बालन' (केशों) उपमेय में 'ब्यालन-बालन' (सर्पों के बच्चे) उपमान का अभेद आरोप है; किंतु दूर से ही डसने की एवं मंत्र और मणि के उपचारों से इनपर सफलता न होने की अधिकता जो आरोप किए जाने से पूर्व नहीं थी, उसका अब होना कहा गया है; अतः 'अधिक अभेद' है।

(ग) न्यून अभेद रूपक

जिसमें, उपमेय में आरोपित होने से पहले उपमान की जो सहज स्थिति थी, वह आरोप किए जाने के पश्चात् कुछ न्यून करके कही जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बरसि सलोनो स्याम घन, अवसि जात अरसाय।
तिमि तुम्हार मुख-ससि-दिवस, नयन-नलिन-निसि न्याय॥

---

1 दासी।

यहाँ मुख उपमेय में शशि एवं नेत्रों में नलिन उपमान का अभेद आरोप है; किंतु 'दिवस-शशि' एवं 'निशि-नलिन' वाक्यों से इनकी पहली अवस्था की अपेक्षा न्यूनता बतलाई गई है।

२ पुनः यथा—दोहा।

हरषत मित्र चकोर-गन, मंद कमल-अरि-वृंद।
प्रजा-कुमुद प्रफुलित, निरखि रामचंद्र-भुवि-चंद॥

—अलंकार-आशय।

यहाँ भी 'श्रीरामचंद्र' उपमेय में 'चंद्र' उपमान का अभेद आरोप है; किंतु 'भुवि-चंद' (पृथ्वी का चंद्रमा) वाक्य से प्रथमावस्था की अपेक्षा 'चंद्र' उपमान में न्यूनता बतलाई गई है।

२ ताद्रूप्य रूपक

जिसमें उपमेय को उपमान से पृथक् उसी (उपमान) का स्वरूप एवं कार्यकर्ता कहा जाय। इसके तीन भेद होते हैं—

(क) सम ताद्रूप्य रूपक

१ उदाहरण यथा—दोहा।

एकाकी फिरि-फिरि निरखि, अखिल प्रजा के काम।
तौलि तुला तें न्याय किय, राम अपर नृप राम॥

यहाँ जयपुर-नरेश राजा रामसिंहजी उपमेय को "राम अपर नृप राम" वाक्य द्वारा श्रीरामचंद्रजी महाराज उपमान से भिन्न बतलाकर यथार्थ न्याय करने के कारण उपमान के समान कार्य-कर्ता कहा गया है।

२ पुनः यथा—सवैया ।

आँगन कुंकुम-चर्चित सो अभिषेक को नीर चल्यौ रँग रातो ।
षोड़स-दान-सँकल्प को नीर बह्यौ बहुते बढ़ि मोद सुमातो ॥
नारि-अरीन के नीर ढस्यौ दृग आजु हि देखि नृपै बढ़ि जातो ।
कीन्ह त्रिबेनी नई जसवंत सु सेस हु थाकहिगो गुन गातो ॥

—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी जसवंत नृप के अभिषेकादि के जल-प्रवाह उपमेय को त्रिवेणी उपमान से "कीन्ह त्रिबेनी नई" वाक्य द्वारा पृथक् करके उपमान के समान कार्यकर्ता कहा गया है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

अरसी निपुन नृपाल कों, कहियत दूजो सूर ।
हरषत बरषत सब लखैं, करषत लखैं न मूर[१] ॥

—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी अरसी-नृप उपमेय को सूर्य उपमान से "कहियत दूजो सूर" वाक्य द्वारा भिन्न बतलाकर "हरपत बरषत लखैं" एवं "करषत न लखैं" वाक्यों से उपमान के समान कार्यकर्ता कहा गया है ।

(ख) अधिक ताद्रूप्य रूपक

१ उदाहरण यथा—कवित्त ।

बात-बेगवान बज्रपात[२] सो निपात[३], नाद ,
पासुपत्य-ब्रह्म-अस्त्र सो अमोघ सक्तिमान ।
मान[४] मैं समान, साल-बृच्छ सो बिसाल स्वच्छ,
अंतरिच्छ[५]-जान-आन मैं सपच्छ सेस आन ॥

१ इस सूर्य रूप राजा को हर्षित होकर बरसते हुए तो सब देखते हैं; पर किसीसे कुछ लेते हुए नहीं देखते । २ बिजली का गिरना । ३ आक्रमण । ४ प्रमाण (माप) । ५ आकाश ।

बच्छ[1]-बेध मैं बिपच्छ रच्छसान[2] के बिदच्छ[3],
कच्छ-कूट[4]-दाह भव्य हव्यबाह[5] ज्यौं सुजान।
तेज अप्रमान ज्यौं निदाघ को गभस्तिमान[6],
युक्त हनूमान राम-बान की समस्त बान ॥

यहाँ श्रीहनुमानजी उपमेय को 'आन' शब्द द्वारा शेष भगवान् उपमान से भिन्न बतलाकर 'सपच्छ' शब्द से उनकी अधिकता का वर्णन किया गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

विकसत कंजन की रुचि को हरै न हठि,
होत छिन-छिन ही मैं नित ही नवीनो है।
लोचन-चकोरन कौं सुख उपजावै अति,
धरत पियूष लखें मेटि दुख दीनो है॥
छबि दरसाइ सरसावै मीनकेतन[7] कौं,
तो पै बुधि-हीन विधि काहे बिधु कीनो है।
यहो नँद-नंद-प्यारी! तेरो मुख-चंद यहै,
चंद तें अधिक अंक पंक को बिहीनो है॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ भी श्रीवृषभानु-कुमारी के मुख उपमेय को "तेरो मुख-चंद यहै" एवं "काहे बिधु कीनो है" वाक्यों द्वारा चंद्र उपमान से भिन्न बतलाकर "कमलों की कांति न हरने" एवं "प्रतिक्षण नवीन रहने" आदि विशेषणों द्वारा उसकी अधिकता बतलाई गई है।

---

१ वक्ष = हृदय। २ राक्षसों। ३ निपुण। ४ तृण-समूह। ५ अग्नि। ६ सूर्य। ७ कामदेव।

(ग) न्यून ताद्रूप्य रूपक

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

अरि मारे पारे[1] हितू, कीन्हे बांछित काम ।
बिनु बिरोध इक लंक के, राम दूसरे राम ॥
—अलंकार-आशय ।

यहाँ श्रीरामजी उपमान से 'राम दूसरे राम' वाक्य द्वारा राजा रामसिंह उपमेय में भिन्नता दिखाकर 'बिनु बिरोध इक लंक के' वाक्य से न्यूनता बतलाई गई है ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

रस भरे जस भरे कहै कवि 'रघुनाथ',
रंग भरे रूप भरे खरे अंग कल[2] के ।
कमला-निवास परिपूरन सुवास आस,
भावते के चंचरीक[3] लोचन चपल के ॥
जगमग करत भरत दुति दीह पोखे,
जोबन-दिनेस के सुदेस भुज-बल के ।
गाइबे के जोग भए ऐसे हैं अमल फूले,
तेरे नैन-कमल कमल बिनु जल के ॥
—रघुनाथ ।

यहाँ भी "तेरे नैन-कमल कमल बिनु जल के" वाक्य द्वारा कमल उपमान से नेत्र-कमल उपमेय में भिन्नता सूचित करके 'बिनु जल के' पद से न्यूनता दिखाई गई है ।

१ पालन किए । २ सुंदर । ३ भ्रमर ।

न्यून ताद्रूप्य-माला १ उदाहरण यथा—सवैया ।

लसै द्विज औरहि मुक्तिय-माल पयोनिधि मैं उपजे नहिँ जो है ।
भए न सरोवर अंबुज और सुलोचन कान्ह कुमारहिँ मोहै ॥
सरोरुह मैं न रहै अरु लच्छि प्रतच्छ सुलच्छनि तो सम को है ।
सदा परिपूरन तो मुख राधे ! सुधाधर और धरा पर सोहै ॥
—अलंकार-आशय ।

यहाँ चारों चरणों में चार ही 'न्यून ताद्रूप्य' हैं; अतः माला है । यथा—द्विज (दाँत), लोचन, स्वयं श्रीराधिकाजी एवं उनके मुख उपमेयों से क्रमशः उनके सहधर्मी मोती-माल, अंबुज, लक्ष्मी एवं पूर्ण चंद्र उपमानों को 'औरहि' 'और' 'प्रतच्छ' एवं 'और' शब्दों द्वारा भिन्न बतलाकर 'पयोनिधि में उपजे नहिँ' 'भए न सरोवर' 'सरोरुह मैं न रहै' एवं 'धरा पर सोहै' वाक्यों द्वारा उनमें न्यूनता बतलाई गई है ।

उभय पर्यवसायी (अधिक एवं न्यून) १ उदाहरण यथा—दोहा ।

उयौ[1] आजु आनहि अवनि, मुख-मयंक अकलंक ।
चख-चकोर छवि-छोर[2] लखि, तजहिँ दहन-दुख रंक[3] ॥

यहाँ मुख उपमेय को 'उयौ आजु आनहि' वाक्य द्वारा चंद्र उपमान से पृथक् बतलाकर 'अकलंक' शब्द से अधिक एवं 'उयौ अवनि' पद से न्यून सिद्ध किया गया है; अतः यह 'उभय पर्यवसायी' है ।

सूचना—प्रायः 'रूपक' अलंकार में पहले उपमेय (जैसे–'मुख-चंद') और पूर्वोक्त 'उपमा' अलंकार में पहले उपमान (जैसे–'चंद-मुख') रखा जाता है ।

---

१ उदित हुआ । २ अर्थात् छटा । ३ बेचारा ।

(६) परिणाम

जहाँ कोई क्रिया (कार्य) करने के लिये उपमान स्वयं समर्थ न हो और उपमेय के साथ मिलकर वह कार्य करे वा उपमेय के करने का कार्य उपमान द्वारा होने का वर्णन हो, वहाँ 'परिणाम' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बृद्धपितामह तृषित लखि, कर-कमलनि सर मार।
सुरपति-सुत[१] झट भूमि तें, प्रगट कीन्ह जल-धार॥

यहाँ केवल 'कमल' उपमान बाण चलाने में असमर्थ है; अतः 'कर' उपमेय से मिलकर बाण चलाने योग्य बतलाया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

तिय-चख-झख[२] भरतार को, उर दारत[३] किहिँ हेतु।
लखि बंसी[४]धर बैर निज-बंस-बिघातक लेतु॥

यहाँ भी 'झख' उपमान हृदय विदीर्ण करने में असमर्थ है; और 'चख' (नेत्र) उपमेय से मिलकर विदीर्ण करने योग्य बतलाया गया है।

परिणाम-माला—१ उदाहरण यथा—सवैया।

'भूषन' तीखन तेज-तरन्नि सौं बैरिन को कियौ पानिप हीनो।
दारिद-दौ करि-बारिद सौं दलि त्यौं धरनीतल सीतल कीनो॥

---

१ अर्जुन। २ मछली। ३ विदीर्ण करते हैं। ४ मुरली और मछली पकड़ने की छड़ी।

भौंसिला भूप बली भुव को भुज-भारी-भुजंगम[1] सो भरु लीनो।
साहि-तनै[2] कुल-चंद सिवा! जस-चंद सौं चंद कियौ छबि-छीनो॥
—भूषण।

यहाँ 'तरन्नि' (सूर्य), 'बारिद' (बादल), 'भुजंगम' एवं 'चंद' उपमान स्वयं क्रमशः शत्रुओं का पानिप (जल एवं रूप) हीन करने में, दारिद्र्य-दव-दलने में, भुव-भार लेने (उठाने) में एवं चंद-छवि को क्षीण करने में असमर्थ हैं; और छत्रपति शिवाजी के तेज, करि (हस्तियों का दान), भुज (बाहु) एवं यश उपमेयों के साहाय्य से उक्त क्रियाएँ करने में समर्थ बतलाए गए हैं; अतः माला है।

✓(७) उल्लेख

जहाँ एक पदार्थ का अनेक प्रकार से उल्लेख (वर्णन) किया जाय, वहाँ 'उल्लेख' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम उल्लेख

जिसमें एक पदार्थ को अनेक व्यक्ति अनेक भाँति से देखें, समझें वा वर्णन करें।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

सज्जन सुजान जान्यौ सुजन समान जाहि,
जान्यौ जसवंत जस जोधा जग जाने को।
नृपन बजीर जान्यौ बीरबर हू तें बर,
बीररस बीरन कों बीरता बताने को॥

---

१ शेषनाग। २ तनय = पुत्र।

मम्मट औ केसौदास काव्य-अनुरागिन कों,
राागिन कों तुंबुरू गुरू है गूढ़ गाने को।
और सब सिस्य जानैं गुरु हैं गनेसपुरी,
मेरे कामतरु हैं असेष मन माने को॥

यहाँ स्वामी श्रीगणेशपुरीजी 'पद्मेश' को महाराणा सज्जनसिंह ने अपना बंधु, जोधपुराधीश महाराजा जसवंतसिंह ने अपने आदि पूर्वज महाराज जोधाजी का यश, अन्य राजाओं ने राजा वीरबल से भी उत्तम मंत्री, शूरवीरों ने वीरता की शिक्षा देने के लिये स्वयं वीररस रूप, काव्य-रसिकों ने साहित्याचार्य मम्मट एवं केशवदास, संगीत-प्रेमियों ने गंधर्वराज तुंबुरू, अन्य सब शिष्यों ने साक्षात् बृहस्पति तथा कवि ने अपने लिये कल्पवृक्ष समझा है।

२ पुनः यथा—दोहा।

जानति सौति अनीति है, जानति सखी सुनीति।
गुरुजन जानत लाज है, प्रीतम जानत प्रीति॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ भी श्रीराधिकाजी को उनकी सपत्नियों ने अनीति, सखियों ने सुनीति, गुरुजनों ने लज्जा और पति ने प्रीति रूप अनुभव किया है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

गंगा-जमुना की कोऊ सुषमा बतावै, कोऊ,
संगति सतोगुन-रजोगुन अमंद की।
कोऊ धूप-छाँह की बतावत छटा है, कोऊ,
लाज पै चढ़ाई कुसुमायुध सुछंद की॥

सोभा-सिंधु नवला की बैस की बिलोकि संधि,
वीरता सुहात मोहि 'पूरन' अनंद की।
रूप देस एकै रंग राजै उजियारी चारु,
जोबन के सूरज की सैसव के चंद की॥

—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'।

यहाँ भी "नायिका के यौवन और शैशव की संधि" एक ही पदार्थ का अनेक व्यक्तियों ने "[illegible] की सुषमा" आदि अनेक प्रकार से उल्लेख किया है।

सूचना—इस 'उल्लेख' के प्रथम भेद में 'अनेक व्यक्ति' लिखने का तात्पर्य निरवयव रूपक की माला से भिन्नता दिखलाने के लिये है; क्योंकि वहाँ देखने एवं समझनेवाले अनेक नहीं होते; पर यहाँ नियमित रूप से अनेक होते हैं।

२ द्वितीय उल्लेख

जिसमें एक ही पदार्थ का विषय-भेद से एक ही व्यक्ति अनेक भाँति से उल्लेख करे।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

स्वासन को बाग, सोभा-सदन सुबासन को,
मुकता-बिलासन को आसन सरस है।
चंपा-कलिका सी, चारु दीपक-सिखा सी कहें,
कौन जो न होइ अपजस को कलस है॥
मैन महिपाल, गाल-गादिन के राखिबे को,
राखी दुइ तोपैं ज्यौं परै न परबस है।
नासिका तिहारी पर बीर! बलिहारी कीर-
तुंड[1] तिल-फूल फूल-तीर-तरकस[2] है॥

१ चोंच। २ कामदेव का निषंग।

यहाँ प्रथम चरण में कवि ने श्रीवृषभानु-नंदिनी की नासिका को श्वासों के लिये बाग़ सुवासों के लिये महल एवं मोतियों के लिये क्रीड़ा करने का आसन इन तीनों प्रकारों से वर्णन किया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

दिनेस मैं प्रभामयी, मयंक-चंद्रिकामयी,
हुतास दीरघामयी, प्रकासमान काय है।
पुरातनी पुरामयी, जगत्परंपरा मयी,
पुरान ब्रह्म-भामयी, प्रकाम काम-दाय है॥
धरामयी, चरामयी, असेस थावरामयी,
अनंद कंदरामयी, अनंद बुद्धि भाय है।
बिरंचि मैं गिरामयी, रमेस मैं रमामयी,
महेस मैं उमामयी, सिलामयी सहाय है॥
—अज्ञात कवि।

यहाँ भी कवि ने राजा मान द्वारा स्थापित जयपुर की शिला-मयी देवी का "दिनेश मैं प्रभामयी" आदि विषय-भेद पूर्वक अनेक भाँति से वर्णन किया है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

पैज[1]-प्रतिपाल, भूमि-भार को हमाल[2], चहूँ,
चक्क[3] को अमाल[4] भयौ, तूठक जहान को।
साहन को साल भयौ, ज्वार[5] को जवाल[6] भयौ,
हर को कृपाल भयौ हार के बिधान को॥

---

१ प्रतिज्ञा। २ बोझ ढोनेवाला। ३ दिशा। ४ शासक। ५ देश-विशेष। ६ विपत्ति।

वीररस ख्याल सिवराज भुवपाल ! तुव,
हाथ को बिसाल भयौ, 'भूषन' बखान को।
तेरो करवाल बेद-पंथन को चाल भयौ,
दच्छिन को ढाल भयौ, काल तुरकान को॥
—भूषण।

यहाँ भी कवि द्वारा छत्रपति शिवराज के खड्ग का 'पैज-प्रतिपाल' आदि बहुत भाँति से वर्णन हुआ है।

४ पुनः यथा—

तू रूप है किरन में, सौंदर्य है सुमन में।
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में॥
तू ज्ञान हिंदुओं में, ईमान मुसलिमों में।
तू प्रेम क्रिश्चयन में, है सत्य तू सुजन में॥
—कविवर पं० रामनरेश त्रिपाठी।

यहाँ भी कवि ने परब्रह्म परमात्मा का 'तू रूप है किरन में' आदि विषय-भेद पूर्वक विविध प्रकार से वर्णन किया है।

✓ (८) स्मरण

जहाँ पहले के देखे, सुने वा समझे हुए किसी साकार पदार्थ के समान ही, फिर किसी समय कोई अन्य पदार्थ दिखाई पड़ने, उसका वर्णन सुनने अथवा चिंतन करने आदि से उस पहलेवाले पदार्थ का स्मरण हो आवे, वहाँ 'स्मरण' अलंकार होता है। इसे 'स्मृति' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

उच्च उदक ह्वै अवनि पै, ठहरि जात उहिँ ठाम ।
मकरालय-मरजाद लखि, सुधि आवत श्रीराम ॥

यहाँ समुद्र की मर्यादा देखकर मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र महाराज का स्मरण होना वर्णित है । यह स्मरण पूर्व में श्रवण किए हुए श्रीरामजी के समान धर्म (गुण) वाले अन्य पदार्थ समुद्र को देखने से हुआ है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

बिसरन लौं मन तें ललन, कीजत जिते उपाय ।
दीखत ही देवर-बदन, ससक-सींग ह्वै जाय[1] ॥

यहाँ भी नायिका को पहले देखे हुए अपने पति के मुख का, उसीके सदृश देवर का मुख देखने से स्मृति होने का वर्णन है ।

३ पुनः यथा—सवैया ।

'केसव' एक समै हरि-राधिका आसन एक लसैं रँग-भीने ।
आनँद सौं तिय-आनन की दुति देखत दर्पन मैं दृग दीने ॥
भाल के लाल मैं बाल विलोकत ही भरि लालन लोचन लीने ।
सासन-पीय[2] सबासन[3] सीय हुतासन मैं जनु आसन कीने ॥
—केशवदास ।

यहाँ भी माया-मनुज श्रीकृष्ण को प्राण-प्रिया राधा महारानी का मुखारबिंद दर्पण में देखते हुए उनके ललाट की लालमणि में उन्हींका प्रतिबिंब दिखाई पड़ने से रामावतार के समय श्रीसीताजी की अग्नि-प्रवेशवाली घटना के स्मरण हो आने का

१ अर्थात् मिथ्या हो जाते हैं । २ पति की आज्ञा । ३ वस्त्रों-सहित ।

वर्णन किया गया है। यहाँ पूर्व युग के देखे हुए दृश्य का सादृश्य देखकर स्मृति हुई है।

सूचना—यद्यपि प्राचीन ग्रंथों में समान वस्तु के देखने मात्र से ही स्मरण होने में यह अलंकार माना है; तथापि देखने के अतिरिक्त श्रवण, चिंतन आदि अनेक भाँति से भी स्मरण होना युक्ति-युक्त ज्ञात होता है। यहाँ तक कि विरोधी पदार्थों के देखने से भी यह अलंकार स्पष्ट सिद्ध होता हुआ देखा जाता है—

१ उदाहरण यथा—दोहा।

चालि चँदेरी नगर तें, आए सुनि सिसुपाल।
सुता-बिदर्भ-भुआल[१] के, उर आए नँदलाल॥

यहाँ विरोधी शिशुपाल का आना सुनकर श्रीरुक्मिणी को पूर्व में श्रवण किए हुए श्रीकृष्ण महाराज का स्मरण होना बतलाया गया है।

स्मरण-वैधर्म्य-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

देखि सुनि-सुनिकै मलेच्छन के अत्याचार,
कल्की-अवतार राम-गुनन गुन्यौ करैं।
ताकि तुकबंदी हम जैसन की मम्मट औ,
दंडी-भरतादि[२]-ब्यास-यादनि भुन्यौ करैं॥
कलह-कलेस-देस-बंधुन बिलोकि भीम-
भीषम, भरत[३] के निबंधन चुन्यौ करैं।
कुपथन देखि दंभ-दलन-असेस स्वामी-
संकर-चरित्र अभयंकर सुन्यौ करैं॥

---

१ विदर्भ देश के राजा की पुत्री। २ नाट्य शास्त्र-कर्त्ता भरत मुनि आदि। ३ दशरथ के पुत्र भरत।

यहाँ विधर्मी (विरोधी) म्लेच्छों के अत्याचार, कवियों की तुकबंदी, बंधुओं की कलह और अनेक पाखंड मतों के देखने से क्रमशः कल्की अवतार तथा श्रीराम, आचार्य मम्मट आदि, भरत भीष्मादि और स्वामी श्रीशंकराचार्य का जिनकी कीर्त्ति पहले सुन चुके हैं, स्मरण हो आना वर्णित है। यहाँ चार स्मृतियाँ हैं; इससे माला है।

(६) भ्रांति

जहाँ उपमान के समान उपमेय पदार्थ को देखने से उपमान का भ्रम हो जाय, अर्थात् उपमेय को उपमान समझा जाय, वहाँ 'भ्रांति' अलंकार होता है। इसे 'भ्रम' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कटि घटती, उठती निरखि, उर उपाधि अकुलाइ।
सखिन कही, उनि हँसि, दियौ ब्रज-निधि[1] बैद बताइ ॥

यहाँ मुग्धा नायिका को अपने उरस्थल में उभरते हुए कुच उपमेयों में उनके समान आकारवाले फोड़े उपमानों का भ्रम हुआ है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

वेई सुरतरु प्रफुलित फुलवारिन मैं,
वेई सरवर हंस बोलन-मिलन कौं।
वेई हेम-हिरन दिसान दहलीजन मैं,
वेई गजराज हय गरज-पिलन[2] कौं ॥

---

१ श्रीकृष्ण। २ तेजी से कहीं प्रवेश करना।

द्वार-द्वार छड़ी लिए द्वार-पौरिया जो खड़े ,
बोलत मरोर-बरजोर त्यौं झिलन[1] कों ।
द्वारका तें चल्यौ [illegible] !
माँगियौ न मोपै चारि चाउर गिलन[2] कों ॥
—नरोत्तमदास ।

यहाँ भी सुदामाजी को सुदामा-पुरी उपमेय में द्वारकापुरी उपमान की भ्रांति हुई है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

अंत मरैंगे चलि जरैं, चढ़ि पलास की डार ।
फिर न मरैं मिलिहैं अली ! ये निरधूम अँगार ॥
—बिहारी ।

यहाँ भी प्रोषितभर्तृका नायिका को प्रलाप करते समय पलाश-पुष्पों में निर्धूम अंगारों का भ्रम हुआ है ।

४ पुनः यथा—दोहा ।

बृंदावन बिहरत फिरैं, राधा-नंदकिसोर ।
नीरद-दामिनि जानि सँग, डोलैं बोलैं मोर ॥
—राजा रामसिंह (नरवलगढ़) ।

यहाँ भी मयूरों को श्रीराधा-नंदकिशोर में बिजली और बादल की भ्रांति हुई है ।

सूचना—पूर्वोक्त 'रूपक' एवं वक्ष्यमाण 'रूपकातिशयोक्ति' अलंकार में उपमेय में उपमान का आरोप (स्थापन) वास्तविक नहीं होता, कल्पित होता है; और इस अलंकार में वास्तव में भ्रम हो जाता है । यही इनमें भेद है ।

---

१ झेल देना । २ खाना ।

✓ (१०) संदेह

जहाँ सत्य असत्य का निश्चय न होने के कारण उपमेय का एक वा अनेक उपमानों के रूप में वर्णन किया जाय; और यह संशय[1] बना ही रहे कि "यह अमुक वस्तु है वा अमुक?" वहाँ 'संदेह' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

कीधौं सुरराज के समाज की समृद्धि यह,
कीधौं ऋद्धि-सिद्धि राजराज[2]-राजधानी की।
कीधौं बेद बाँचिबे की स्वच्छ परिपाटी पटु,
कीधौं स्वर-ब्रह्म की प्रतच्छ प्रतिमा नीकी॥
कीधौं अप्सरान की बसीकरन-बिद्या किधौं,
बिजय-पताका गढ़ी-गंध्रब पुरानी की।
रागन की रानी ठकुरानी तीन ग्रामन[3] की,
बानी-बीन-बानी, गुरुबानी कै सुबानी की॥

यहाँ श्रीसरस्वतीजी के वीणा-शब्द उपमेय में इंद्र की समृद्धि आदि अनेक उपमानों का संदेह होना कहा गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

ग्वालिन की बेनी किधौं नीरज की नाली चढ़ि,
चाली मधुपाली मधु पीवन मृनाली को।
अपने उद्धार-हेतु धार जमुना की लेतु,
चरन-अधार कै प्रनत-प्रतिपाली को॥

---

१ यह संशय कवि-कल्पित होता है। २ कुबेर। ३ गाने के ग्राम (नंद्यावर्त, सुभद्र और जीमूत) एवं गाँव।

धारा बाँधि आयौ तारामारग[1] धरा को तम,
ससि पै रिसायौ कै समूह निसि काली को।
फेर नथि जाइ ना फलानी इहिँ भीति आली!
काली कै रिझाइ रह्यौ चित्त बनमाली को॥

यहाँ भी श्रीवृषभानु-नंदिनी की वेणी उपमेय में भ्रमर-पंक्ति आदि बहुत से उपमानों का संदेह हुआ है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

चंपे की पिराका[2] है कि सोने की सिराका[3] है कि,
संपा[4] ही को भाग है कि कला कोउ न्यारी है।
सुकवि 'नरोत्तम' कै भूतल को भूषन है,
कै चकोर-पूषन[5] कै पुन्य की उजारी है॥
मेरी अभिलाषा है कि कामतरु-साखा है कि,
गीरबान-भाषा[6] है कि सुधा-कंद-क्यारी है।
राग है कि रूप है कि रस है कि जस है कि,
तन है कि मन है कि प्रान है कि प्यारी है॥

—नरोत्तमदास।

यहाँ भी नायिका उपमेय में चंपा की पंखड़ी आदि अनेक उपमानों का संशय हुआ है।

४ पुनः यथा—कवित्त।

'केसौदास' मृगज बछेरू चोषैं बाघिनीन,
चाटत सुरभि बाघ-बालक-बदन है।
सिंहन की सटा ऐंचैं कलभ-करनि करि[7],
सिंहन को आसन गयंद को रदन है॥

---

१ आकाश। २ पंखड़ी। ३ शलाका। ४ बिजली। ५ चंद्र। ६ देव-बाणी = संस्कृत। ७ हाथी के बच्चे अपनी सूँड़ों से।

फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न बिरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे-डोरे अंध तापसनि,
सिव को समाज कैधौं ऋषि को सदन है॥
—केशवदास।

यहाँ भी श्रीसदाशिव के समाज उपमेय में ऋषि-आश्रम उपमान का संदेह हुआ है।

✓(११) अपह्नुति

जहाँ किसी पदार्थ का निषेध पूर्वक अपह्नव[1] (गोपन) करके किसी अन्य पदार्थ का स्थापन किया जाय, वहाँ 'अपह्नुति' अलंकार होता है। इसके ६ भेद हैं—

✓१ शुद्धापह्नुति

जिसमें वास्तविक (सत्य) उपमेय को निषेध पूर्वक छिपाकर उसके सहधर्मी उपमान का आरोप (स्थापन) किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

तिल कज्जल चूचुक[2] चिकुर[3], दृग दिठौन जनि जान।
सखि! राधा रानी रच्यौ, यह षड़यंत्र-विधान॥

---

१ 'अपह्नव' शब्द का अर्थ छिपाना है। २ कुचाग्रभाग। ३ केश।

यहाँ नायिका के तिलादि वास्तविक उपमेयों का 'जनि जान' पद से निषेध पूर्वक गोपन करके षड्यंत्र उपमान का आरोप किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

तिय-मुख-रूप-समुद्र मैं, तिल पंथी मत चेत।
बिरही डूब्यौ जात है, सीस दिखाई देत॥

—अज्ञात कवि।

यहाँ भी नायिका-मुख के तिल उपमेय का 'मत चेत' पद से निषेध पूर्वक गोपन करके किसी बिरही के शिर उपमान का स्थापन किया गया है।

शुद्धापह्नुति-माला १ उदाहरण यथा—सवैया।

लाली लगी ललना के लसै न, सुहाग हमारहु की प्रभुताई।
लावनहारिहु नाइन है न, गुसाइन-गेह कसाइन आई॥
हा! ठकुराइन पाँयन ना इन लाई जतू[1] उर लाय लगाई।
है यह कीरति की कुँवरी न, जरो वृषभानु के बीजुरी जाई॥

यहाँ सपत्नियों ने महावर-अरुणता, नाइन, जतु एवं स्वयं श्रीराधिकाजी, इन चार उपमेयों को 'लसै न' आदि शब्दों द्वारा निषेध पूर्वक छिपाकर क्रमशः अपने सुहाग की प्रभुता, कसाइन, लाय (अग्निकांड) एवं बिजली चार उपमानों का स्थापन किया है; अतः माला है।

---

१ लाख का रंग।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

लाल-मनि-बैंदी ना बिसाल भावती के भाल,
काढ़त कलंक बैठ्यौ मंगल मयंक मैं ।
द्वैसत इकीस की न मोतीमय माँग राजै,
रानी रजनीस की[1] बखानी मति-रंक मैं ॥
सीसफूल सोने को न नीलमनि मध्य जाके,
सोवत सुभाय सविता के सनि अंक मैं ।
नारी है न आज हौं निहारी है बिहारी-संग,
बारि-निधि-जा[2] है जो अजा है[3] परजंक मैं ॥

यहाँ भी श्रीराधारानी के लाल-मणि-बैंदी, २२१ मोतियों की माँग, नील-मणि-जटित स्वर्णमय शीशफूल एवं नारी, इन चार उपमेयों को 'ना' आदि निषेध-शब्दों द्वारा छिपाकर क्रमशः मंगल, अट्ठाईसों नक्षत्रों के २२१ तारे, सूर्य की गोद में शनि एवं लक्ष्मी, इन चार उपमानों का स्थापन किया गया है; अतः माला है ।

२ हेत्वपह्नुति

जिसमें उपमेय का निषेध एवं उपमान का स्थापन युक्ति पूर्वक, अर्थात् किसी हेतु-सहित किया जाय ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

सज्जन-सरल-सुभाव के, मधुर वचन मत मान ।
करतल करन जहान, यह मोहन-मंत्र महान ॥

यहाँ मधुर वचन उपमेय का 'मत मान' पद द्वारा निषेध

---

१ अट्ठाईस नक्षत्र । २ लक्ष्मी । ३ वही माया है ।

पूर्वक गोपन करके 'मोहन मंत्र' उपमान का स्थापन, जगत को वश करने के हेतु-सहित, किया गया है।

२ पुनः यथा—

सीतलाई सुधाकर मैं है नहीं सुनु साँच।
सखी! याकी किरन मैं सु अनोखिये है आँच॥
जो न ऐसो होइ तो क्यौं बिमल सरवर-बारि-
बीच सरसिज मुरझिकै गिरि जाइ लखु सुकुमारि!॥

—बाबू जयशंकरप्रसाद।

यहाँ भी शीतलता उपमेय को 'है नहीं' पद से निषेध पूर्वक छिपाकर आँच उपमान का आरोप, कमल के मुरझाकर गिर जाने की युक्ति से, किया गया है।

३ पुनः यथा—सवैया।

आनन की धुनिएँ सुनिए, यह कूक न कोयल की धसती है।
स्वास को चारु प्रकास, बयारि न मंद सुगंध हियो मसती है॥
दंतन की दुति ये 'रघुनाथ', कला न कलाधर की गसती है।
देखि भरी रिसि प्यारी! तुम्हैं ये दसों दिसि आपुस मैं हँसती है॥

—रघुनाथ।

यहाँ भी नायिका का मान-मोचन कराने के कारण कोयल की कूक, मंद समीर एवं कलाधर की कलाओं का प्रकाश वासंतिक उद्दीपक उपमेयों का निषेध-सूचक नकार से गोपन करके दशों दिशाओं के परिहास-जन्य क्रमशः मुख का शब्द, स्वास एवं दाँतों का प्रकाश उपमानों का स्थापन हुआ है।

४ पुनः यथा—कवित्त ।

कंपित शरीर ऊनी वस्त्र तूल तेल प्रिय,
ताप औ तमोल अब सभी को सुहाते हैं ।
चलता समीर दीन दशा सभी मानवों की,
आया है हेमंत दंत-दल भिड़ जाते हैं ॥
शीत के प्रताप सभी सिकुड़े हुए 'मुकुंद',
भानु भगवान अग्निकोण में जड़ाते हैं ।
कोहरा नहीं है यह धूम सलिलानल का,
भानु तापने को आग पानी में लगाते हैं ॥

—पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'साहित्य-रत्न' ।

यहाँ भी कुहरा (नीहार) उपमेय का 'नहीं है' पद द्वारा निषेध पूर्वक गोपन करके धूम्र उपमान का स्थापन, सूर्य के जाड़ा लगने पर तापने के हेतु-सहित, किया गया है ।

३ पर्यस्तापह्नुति

जिसमें उपमान के धर्म (गुण) का निषेध उपमेय में स्थापित करने के लिये किया जाय ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

बिष ब्यालन के डसन मैं, तू न चतुर ! चित चेत ।
कटु-बादिन के बदन बिष, बोलत ही डसि लेत ॥

यहाँ सर्प उपमानों के डसने में विष धर्म का निषेध, कटु-वादी उपमेयों के बोलने में स्थापित करने के लिये किया गया है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

काल करत कलि-काल मैं, नहिं तुरकन को काल ।
काल करत तुरकान को, सिव सरजा-करवाल ॥
—भूषण ।

यहाँ भी काल उपमान के संहार करने धर्म का निषेध, छत्रपति शिवाजी की तलवार उपमेय में स्थापित करने के लिये किया गया है ।

सूचना—यहाँ उपमान के जिस धर्म का निषेध किया जाता है, उदाहरणों में उसका प्रायः दो बार व्यवहार होना पाया जाता है ।

४ भ्रांतापह्नुति

जिसमें, किसीको किसी पदार्थ में दूसरे पदार्थ की भ्रांति हो जाय और सत्य बात कहकर उसका निवारण किया जाय ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

बेगि बुझावहु बरत बन, बिरहिनि कह्यौ पुकार ।
सखिन कह्यौ किंसुक-कुसुम, नाहिन ये अंगार ॥

यहाँ वियोगिनी नायिका को पलाश-पुष्पों में अंगारों की भ्रांति हुई, जिसका सखियों ने "नाहिन ये अंगार" वाक्य से निषेध करके और "किंशुक-कुसुम है" सत्य बात कहकर निवृत्त किया है ।

भ्रांतापह्नुति-माला १ उदाहरण यथा—तोमर छंद ।

हे पंच-सायक मार ! । मत पुष्प के सर मार ॥
असि गदा सूल चलाव । पुनि देख मेरे दाव ॥
मत जान तू बिधु बाल । है खौर-चंदन भाल ॥

नहिं जटा मेरे सीस। मंडील आहि रतीस[१]!॥
नहिं जाह्नवी की धार। हैं मुक्त-हीरन-हार॥
है सर्प नाहिं अनंग!। यह पर्‍यौ सेला अंग॥
मैं अहहुँ राजकुमार। सिव जानि मोहि न मार॥

—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'।

यहाँ कामदेव को चंदन-तिलक में चंद्रमा, मंडील में जटा, मोती-हीरों की माला में गंग-धार, शेला में सर्प एवं स्वयं राजकुमार (भानुकुमार) में शिव की भ्रांति हुई, जिसका कुमार ने 'मत जान' आदि शब्दों द्वारा निषेध करके और "है खौर-चंदन" आदि सत्य बात कहकर निवारण किया है। यहाँ पाँच 'भ्रांतापह्नुतियाँ' होने के कारण माला है।

२ पुनः यथा—सवैया।

आनन है, अरविंद न फूले अली-गन! भूले कहा मड़रात हो।
कीर! तुम्हैं कहा बाई लगी भ्रम बिंब के ओठन कों ललचात हो॥
'दासजू' [illegible], बेनी बनाव है पापी कलापी![२] कहा इतरात हो।
बोलती बाल, न बाजती बीन कहा सिगरे मिलि घेरत जात हो॥

—भिखारीदास।

यहाँ भी नायिका के मुख में कमल, ओष्ठ में बिंबफल, वेणी में नागिन और वाणी में वीणा की, क्रमशः भ्रमर, शुक, मयूर और मनुष्यों को भ्रांति हुई, जिसका सखी ने 'अरबिंद न' आदि कथन द्वारा निषेध करके और 'आनन है' आदि पदों द्वारा सत्य बात कहकर निवारण किया है। इस प्रकार चार 'भ्रांतापह्नुतियाँ' होने के कारण माला है।

---

१ काम। २ मयूर।

५ छेकापह्नुति

जिसमें किसी दूसरे व्यक्ति से कही जानेवाली कोई गुप्त बात कोई तीसरा व्यक्ति सुन ले और इस कारण उस कथित रहस्य को कोई दूसरा कल्पित अभिप्राय बतलाकर छिपाया जाय[1]। इसे 'मुकरी' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

छीन सरीर न पीन रहै नित अंक भर्यौ उनको अति भायौ।
ह्वै खिरकी-मग आइ रह्यौ कर[2] लाइ अहा! छतियाँ लपटायौ॥
पाइ पियूष-प्रबाह सो अंगन अंग अनंग उमंग न मायौ।
यौं निसि नायक केलि करी ब्रज-चंद किधौं, नहिं चंद सुहायौ॥

यहाँ नायिका को अपनी अंतरंग सखी से नायक का क्रीड़ा-वृत्तांत कहते हुए, 'क्षीण शरीर' आदि सुनकर किसी बहिरंग सखी ने पूछा—'क्या श्रीकृष्ण थे?' पर नायिका ने बात बनाने के लिये उत्तर दिया—'नहीं चंद्रमा'। इस प्रकार कल्पित कथन द्वारा सत्य बात छिपाई गई है।

२ पुनः यथा—सवैया।

फैलि रही घर घाटन जाके चवायन[3] की चरचा चहुँघाँ तें।
औचक आ असँकोच बिदारत गोपिन के कुच नौंचि नखाँ तें॥
धौसहु मैं नवला अबलानि तें छेर करै निडरै सब ठाँ तें।
कीधौं कथा मेरे मोहन की, सखि! ना कपि आयौ है कूर कहाँ तें॥

---

१ 'छेकापह्नुति' का वर्णन श्लेषात्मक शब्दों में होता है। २ हाथ और किरण। ३ अपवाद।

यहाँ भी कोई सखी किसी सखी से श्रीवृंदावन-विहारी के उत्पातों का वर्णन कर रही थी, इतने में उनकी अंतरंग सखी ने अचानक आकर पूछा—"क्या यह कथा हमारे कृष्ण की है ?" उस सखी ने कहा—"नहीं सखी ! कहीं से आए हुए एक क्रूर बंदर की ।"

३ पुनः यथा—कवित्त ।

मूठी मैं समात मध्य उर की नरम अति,
परम सुखद सोहै सगुन[1] प्रमान की।
गोसे-गोसे[2] तें जु झुकि झपटि मिलति जब,
राखि लेत प्रान पन बरनी जहान की ॥
सर मैं सुभाल[3] बर परसे अनंद होत,
देखे बनै 'कासीराज' रंग[4] रुचि खान की ।
काहू गोप-बधू संग रमे कहौ नंदलाल !,
नाहीं तिय ! खैंची ही कमान मुलतान की ॥

—काशिराज ।

यहाँ भी श्रीकृष्ण को अंतरंग सखी से 'मूठी मैं समात' आदि किसी नायिका का वृत्तांत कहते समय किसी बहिरंग सखी ने अचानक आकर पूछा—"क्या आपने किसी गोपिका से रमण किया था ?" उन्होंने सत्य को छिपाकर कहा—"नहीं, मुलतान की कमान खींची थी ।"

✓ ६ कैतवापह्नुति

जिसमें उपमेय का निषेध कैतव, व्याज, मिस आदि

१ गुणवती और प्रत्यंचा-युक्त । २ किनारे । ३ शिर में सुंदर ललाट और बाण में उत्तम भाल (अणी) । ४ प्रेम और रुधिर ।

३ पुनः यथा—

श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे।
सब शोक अपना भूलकर करतल युगल मलने लगे॥
मुख बाल रवि सम लाल होकर ज्वाल सा बोधित हुआ।
प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या काल ही क्रोधित हुआ!॥

—बाबू मैथिलीशरण गुप्त।

यहाँ भी अर्जुन उपमेय का निषेध स्पष्ट शब्दों में नहीं हुआ; वरन् 'मिस' शब्द द्वारा हुआ है।

४ पुनः यथा—सवैया।

भूमहिँ धूम छुए घन झूमत लाय लगी चपला चहुँघाँ तें।
जूह[1]-पतंग चिनंग उतंगनि उड़ि चले पुरवाइन-बा[2] तें॥
पावस-ब्याज प्रवीन जु पावक कीन्ह बियोगिनि के तन ताते।
दाव लगे पर दाव लगावन आए हैं चातक कूर कहाँ तें॥

—प्रवीण सागर।

यहाँ भी वर्षा-ऋतु उपमेय का निषेध 'व्याज' शब्द द्वारा किया गया है।

सूचना—यद्यपि इस 'कैतवापह्नुति' में नकारादि शब्दों द्वारा वाच्य (शाब्द) निषेध नहीं होता; तथापि 'कैतव' आदि शब्दों से लक्ष्य (आर्थ) निषेध होता है।

(१२) उत्प्रेक्षा

जहाँ उपमान से भिन्न जानते हुए भी प्रतिभा[3]-बल से

१ यूथ। २ वायु। ३ ईश्वर-दत्त काव्य-निर्माण-शक्ति।

उपमेय में उपमान की उत्प्रेक्षा (संभावना[1]) की जाय, वहाँ 'उत्प्रेक्षा' अलंकार होता है। इसके वाचक-शब्द मनु, जनु, मानो, जानो, मनहु, निश्चय, मेरे जान, इव इत्यादि होते हैं। इसके मुख्य तीन भेद हैं—

✓१ वस्तूत्प्रेक्षा

जिसमें किसी उपमेय वस्तु में किसी उपमान वस्तु की भावना की जाय। इसको 'स्वरूपोत्प्रेक्षा' भी कहते हैं। इसके दो भेद हैं—

✓(क) उक्तविषया

जिसमें उत्प्रेक्षा के विषय[2] का कथन करके संभावना की जाय।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

कुंदन घरे हैं मनि मानिक जरे हैं और,
चंपक चमेली चारु कुंद-कलिकान के।
बाजूबंद राजै बाहु, बलय[3] बिराजै कर,
भ्राजै बँगरी[4]हू बैठि बीच चुरियान के॥

---

१ साधारणतः व्यवहार में दो बातों की तुलना करते हुए कहते हैं कि अमुक बात पाँच बिस्वे ठीक है और अमुक बात पंद्रह बिस्वे ठीक है। यहाँ ज्ञान की दो कोटियाँ हो गई हैं, जिनमेंसे पंद्रह बिस्वेवाली उत्कट है; इसी उत्कट-कोटिक-ज्ञान को 'संभावना' कहते हैं। २ 'उत्प्रेक्षा' अलंकार के समस्त भेदों में उत्प्रेक्षा का विषय (आस्पद, आश्रय) उपमेय होता है। ३ कंकण। ४ कर-भूषण-विशेष।

सात-सात चूरी प्रति हाथन रुनित[1] चारु,
मानो सुर सात हू सुहाग-गुन गान के।
सातों सिंधु-धार लै अखंड अहिबात[2] बिधि,
कीन्हो अभिषेक है कुमारी-वृषभान के॥

यहाँ तृतीय चरण में श्रीराधिकाजी के हाथों की सात-सात चूड़ियाँ उपमेय वस्तु हैं, जिनमें 'मानो' वाचक से सौभाग्य-गुण-गायन के सातों स्वर उपमान वस्तु की उत्प्रेक्षा की गई है; अतः 'वस्तूत्प्रेक्षा' और उपमेय कहा गया है; अतः 'उक्तविषया' है।

२ पुनः यथा—सवैया।

मुकताहल-हार, हमेल हजारन-हीर-कनीन-बनी बिमला।
नग नीलम मानिक पन्नन की सत-सात-लरी[3] ललचाए लला॥
प्रतिबिंब अलंकृत-अंगन के परि आरसी-अंगन[4] भावै भला।
चमकै मनु काच के मंदिर मैं रवि-चंद-अमंद-कला चपला॥

यहाँ भी उत्तरार्द्ध में श्रीराधिकाजी के अलंकृत अंगों के प्रतिबिंब उपमेय हैं, जिनमें 'मनु' वाचक-शब्द द्वारा 'सूर्य-चंद्र की किरणों' और 'विजली की चमक' उपमानों की उत्प्रेक्षा उपमेय के उल्लेख पूर्वक हुई है।

३ पुनः यथा—दोहा।

गौरे मुख पर स्याम तिल, ताकों करौं प्रनाम।
मानहुँ चंद बिछाइकै, पौढ़े सालग्राम॥

—अज्ञात कवि।

---

१ शब्दायमान। २ सुहाग। ३ शतलड़ी और सातलड़ी। ४ उनके ही आरसी-जैसे अंगों पर।

यहाँ भी उत्प्रेक्षा का विषय 'श्याम तिल' कहा गया है; और 'शालग्राम' उपमान से उत्प्रेक्षा हुई है।

(ख) अनुक्तविषया

जिसमें उत्प्रेक्षा के विषय (उपमेय) का कथन किए बिना संभावना की जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

गए सुदामा द्वारका, देखि लगन दिक्द्वार[1]।
द्वारहि पै परसे मनहुँ, पारस परम उदार॥

यहाँ उत्प्रेक्षा के विषय श्रीकृष्ण उपमेय में 'पारस' उपमान की संभावना की गई है; किंतु 'श्रीकृष्ण' शब्द नहीं कहा गया।

२ पुनः यथा—कवित्त।

तामस मैं भरे नैन सुनत जनक-बैन,
कोप मृगराज ज्यौं गयंद-पाँति करिगो।
राम करि तेह[2] तोख्यौ गरब अछेह भख्यौ,
चटक निगाढ़ गोसा टूटि भूमि परिगो॥
तनक भनक जब जानकी के कान परी,
ठाढ़ी रही झाँकि पट नील सो उघरिगो।
चहूँ ओर फैलि गई चाँदनी 'मुबारकजू',
मानो राहु-मुख तें निसाकर निसरिगो॥

—सैयद मुबारकअली।

यहाँ भी जगदंबा जानकीजी के मुख उपमेय में निशाकर (चंद्रमा) उपमान की उत्प्रेक्षा हुई है; पर उक्त उपमेय नहीं कहा गया।

---

१ यात्रा का एक उत्तम मुहूर्त। २ क्रोध।

३ पुनः यथा—दोहा ।

जीति-जीति कीरति लई, सत्रुन की बहु भाँति ।
पुर पर बाँधी सोभिजै, मानहुँ तिनकी पाँति ॥
—केशवदास ।

यहाँ भी अकथित ध्वजा उपमेय में 'कीर्ति-पंक्ति' उपमान की उत्प्रेक्षा की गई है ।

२ हेतूत्प्रेक्षा

जिसमें अहेतु को हेतु मानकर (जो उत्प्रेक्षा का कारण न हो, उसको कारण मानकर) उत्प्रेक्षा की जाय । इसके दो भेद हैं—

(क) *सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा*

जिसमें उत्प्रेक्षा का आस्पद (आधार रूप विषय) सिद्ध (संभव) हो ।

१ उदाहरण यथा—सवैया ।

मार के चाबुक चारु मनो चितए तें चुभैं चित चौगुने चायन ।
गौरवता लौं गिरीस के सीस गिरै जमुना जनु जाह्नवी-भायन ॥
गाल-तड़ागन नागिन ह्वै पसरी मनु पाइ पियूष-रसायन ।
नायन ! तू न बनाय सुभाय अन्यायन री अलकैं-ठकुरायन ॥

यहाँ तीसरे चरण में, अलकों का कपोलों पर पड़ा रहना स्वाभाविक है, न कि नागिन रूप से कपोलरूपी तड़ागों पर अमृत पाकर; किंतु इस हेतुता से संभावना की गई है; और नागिनियों का अमृत-सरोवर पर रहना सिद्ध है । इसके प्रथम चरण में 'वस्तूत्प्रेक्षा' और द्वितीय में 'फलोत्प्रेक्षा' भी है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

नित संसो[१] हंसो बचत, मानहुँ इहिँ अनुमान ।
बिरह-अगनि-लपटनि, सकै झपट न मीच-सिचान ॥
—विहारी ।

यहाँ भी शरीर में हंस (प्राण) का रहना स्वभाव-सिद्ध है; किंतु विरहाग्नि की लपटों के भय से मृत्यु रूपी सिचान (बाज) झपट नहीं सकता, इस हेतु से संभावना की गई है; जो सिद्ध है; क्योंकि अग्नि की लपट में बाज वस्तुतः झपट नहीं सकता ।

३ पुनः यथा—कवित्त ।

पूजन करत महाराज रनधीरसिंह ,
बरनौं कहाँ लौं आस पास बैठे कोद[२] मैं ।
देखि-देखि दीपति की प्रभुता उमंग भरी ,
मन कों लगाएँ सिवा-सिव के प्रमोद मैं ॥
'मनिदेव' भाल मैं बिभूति की सु तीन रेख ,
लहरै सुढारि सिखा बायु के बिनोद मैं ।
मेरे जानि पीछे परी जमुना मचलि रही ,
आछी तिरसोता को निहारि भानु-गोद मैं ॥
—पं० मणिदेव ।

यहाँ भी राजा रणधीरसिंह के स्वाभाविक त्रिपुंड्र-तिलक एवं शिखा में गंगा-यमुना की उत्प्रेक्षा की गई है; और राजा के मुख रूपी सूर्य (अपने पिता) की गोद में त्रिस्रोता (गंगा) के दिखाई पड़ने के कारण जो यमुना का मचलना कहा गया है, वह सिद्ध है ।

---

१ संशय । २ दिशा ।

(ख) असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा

जिसमें उत्प्रेक्षा का आस्पद (आधार रूप विषय) असिद्ध (असंभव) हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

पाँयन प्रियाजू के महावर बिलोकि कान्ह,
आन गोपिकान की निछावर सी कीनी है।
एक तें अधिक एक उपमा अनेक जाकी,
गाई गुनियन एक पाई पै नवीनी है॥
कांत[1] सुकुमार देखि दुःखित दिनांत, नेही
नाह को नितांत, स्वांत[2] सेवा-गति लीनी है।
मेरे जान अरुन, अरुन अरबिंदन कों,
आपुनी अरुनता नजर कर दीनी है॥

यहाँ श्रीराधा रानी के चरण-कमलों में अरुणता स्वाभाविक है, न कि सूर्य-सारथी अरुण की दी हुई; किंतु अरुण के स्वामी सूर्य के सखा होने आदि कारणों से चरण-कमलों में अरुण की दी हुई अरुणता की संभावना की गई है; और अरुण का ऐसा करना असिद्ध है।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ भी वियोगिनी जानकीजी द्वारा चंद्रमा में अग्नि की संभावना इस हेतु से की गई है कि यह मुझे मंदभागिनी समझकर अग्नि नहीं देता; किंतु चंद्रमा का ऐसा करना असिद्ध है।

---

१ सुंदर। २ अपने अंतःकरण में।

२ पुनः यथा—दोहा।

मनहुँ मराल बियोग को, सहि नहिं सकत कलेस।
बरषा-ऋतु नलिनी करत, सरवर-सलिल-प्रबेस॥
—जसवंत-जसोभूषण।

यहाँ भी कमलिनी के स्वाभाविक जल में प्रवेश करने में हंस के वियोग की हेतुता से उत्प्रेक्षा की गई है; और जड़ कमलिनी का ऐसा करना असिद्ध है।

३ फलोत्प्रेक्षा

जिसमें अफल को फल मानकर उत्प्रेक्षा की जाय। इसके दो भेद हैं—

(क) सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा

जिसमें उत्प्रेक्षा का आस्पद (आश्रय रूप विषय) सिद्ध (संभव) हो।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

पल्लव बिंब प्रबाल पकैं कटु काठ, न ओठ-जथा-मुगधा[1]।
फीके परे सिगरे पकवान सुरंजन बिंजन हू बहुधा॥
मानो बिरंचि बिचारि रच्यौ परिपूरति लौं पति-प्रेम-छुधा।
संपुट-पाट-सुधाधर मैं भरि राख्यौ है सोधि सुधारि सुधा॥

यहाँ नायिका का ओष्ठ स्वाभाविक सुधामय है; किंतु इसमें पति-क्षुधा-निवृत्ति-फल के लिये सुधा-संपुट-पाट की संभावना

१ पल्लव पक जाते हैं, बिंबफल कटु हैं और प्रवाल काष्ठ हैं; अतः नवोढ़ा नायिका के ओष्ठ की तुलना नहीं कर सकते।

हुई है; और इससे पति-प्रेम-क्षुधा की पूर्ति होती ही है; अतः 'सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा' है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

समर अमेठी[1] के सरोष गुरुदत्तसिंह,
सादत की सेना समसेरन सौं भानी है।
कहत 'कविंद' काली हुलसी असीसन लौं,
सीसन लौं ईस की जमात सरसानी है॥
तहाँ एक जोगिनी सुभट्ट खोपरी लै उड़ी,
श्रोनित[2] पिवत ताकी उपमा बखानी है।
प्यालो लै चिनी को छकी-जोवन-तरंग मानो,
रंग-हेतु पीवति मजीठ मुगलानी है॥

—उदयनाथ 'कविंद'।

यहाँ भी अमेठी के युद्धस्थल में योगिनी का मनुष्य की खोपड़ी में रक्त पान करना स्वाभाविक है; जिसमें किसी मुगलानी द्वारा सुंदर रंग रूपी फल की इच्छा से चीनी मिट्टी के प्याले में मजीठ पान करने की उत्प्रेक्षा हुई है, जो सिद्ध है; क्योंकि स्त्रियाँ प्रायः ऐसा किया करती हैं।

(ख) असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा

जिसमें उत्प्रेक्षा का आस्पद (आश्रय रूप विषय) असिद्ध (असंभव) हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मानहुँ इहिँ अभिलाष लौं, चिनगी चुगत चकोर।
राधा-मुख-ससि-चख बन्यौ, रहौं लहौं चित चोर[3]॥

---

१ राजा गुरुदत्तसिंह की राजधानी। २ रुधिर। ३ चंद्रमा।

यहाँ चकोर का अग्नि चुगना स्वाभाविक है, न कि चंद्र-संयोग की अभिलाषा से; किंतु उक्त फल के लिये इसकी संभावना मात्र की गई है; और चकोर पक्षी का ऐसी इच्छा करना असिद्ध है; अतः 'असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा' है।

२ पुनः यथा—दोहा।

पिवत पयोधर-पूतना, यौं हरि-मुख छबि देत।
गह्यौ कलाधर कलस मनु, बैर बाप को लेत॥

—स्वामी गणेशपुरीजी 'पद्मेश'।

यहाँ भी श्रीकृष्ण के मुख ने पूतना का स्तन-पान स्वभावतः किया है, न कि चंद्र रूप से (अगस्त्य मुनि के उत्पत्तिकारक कलश मानकर) अपने पिता समुद्र का वैर लेने के लिये; किंतु उक्त फल के लिये इस अर्थ की संभावना की गई है; और चंद्रमा का ऐसी इच्छा करना असिद्ध है।

३ पुनः यथा—दोहा।

मानहुँ बिधि, तन-अच्छ-छबि, स्वच्छ राखिबे काज।
दृग-पग पौंछन कौं किए, भूषन पायंदाज॥

—विहारी।

यहाँ भी नायिका के शरीर पर आभूषणों का होना स्वाभाविक है, न कि पुरुषों की दृष्टि की मैल पोंछा जाने के लिये पायंदाज होना; किंतु उक्त फल के लिये इसकी संभावना मात्र हुई है; और विधाता का इस इच्छा से आभूषण रचना असिद्ध है।

सूचना—(१) 'अभेद रूपक' अलंकार में उपमेय-उपमान का अभेद संबंध होता है। जैसे—मुख-चंद्र अर्थात् मुख ही चंद्र है; और 'उत्प्रेक्षा' में भेद होते हुए संभावना होती है। जैसे—मुख मानो चंद्र है।

(२) 'फलोत्प्रेक्षा' और 'हेतूत्प्रेक्षा' का निर्णय करना क्रिया से ही सुगम होता है। यदि क्रिया किसी कारण से कही गई हो तो 'हेतूत्प्रेक्षा' और यदि किसी फल की इच्छा से व्यवहृत हुई हो तो 'फलोत्प्रेक्षा' होती है।

विशेष सूचना—'उत्प्रेक्षा' के उक्त मुख्य तीनों भेदों के ही संबंध में निम्नोक्त और भी दो भेद होते हैं—

४ लुप्तोत्प्रेक्षा

जिसमें मनु, जनु आदि उत्प्रेक्षा-वाचक-शब्दों के विना उत्प्रेक्षा की जाय। इसको 'गम्योत्प्रेक्षा', 'प्रतीयमाना' एवं 'व्यंग्योत्प्रेक्षा' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

दृग देखत ही दुति दंतन की चकचौंधत ज्यौं चमकैं चपला।
मुख देखि नई दुलही कौं दई अपनी पिय आधी कला[1] बिमला॥
विष होरन को अधरारस लाइ हरै जिन खाइ मरै अवला।
मुख-चंद मैं चंदमुखी के लसैं ब्रजचंद-कला-जुत चंद-कला[2]॥

यहाँ द्वितीय चरण में 'दुलहिन के दंत' उपमेय में '६४ कलाओं की आधी ३२ कलाएँ' उपमान की उत्प्रेक्षा वाचक-शब्द के विना मुख-दिखलाई में देने के हेतु से हुई है; और यह हेतु सिद्ध है; अतः 'सिद्धास्पद हेतु लुप्तोत्प्रेक्षा' है। इसी प्रकार तृतीय चरण में 'सिद्धास्पद फल लुप्तोत्प्रेक्षा' है।

---

१ गुरु से पढ़ी हुई ६४ कलाओं में से आधी ३२। २ कृष्णावतार की १६ और चंद्रमा की १६।

२ पुनः यथा—दोहा ।

करनफूल कंचन-रचित, खचित-रतन-बहुरंग ।
ससि सेवत सियरान हित, ग्रह-श्रुति[1]-सहित पतंग ॥

यहाँ भी श्रीराधिकाजी के स्वर्ण के रत्न-जटित कर्णफूल में ग्रहों एवं श्रुति (वेद)-सहित सूर्य की संभावना वाचक-शब्द के विना हुई है; और सूर्य का शीतलता की इच्छा करना असिद्ध है; अतः 'असिद्धास्पद फल गम्योत्प्रेक्षा' है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

रमनी-मुख-मंडल निरखि, राका-रमन लजाइ ।
जलद जलधि सिव सूर में, राखत बदन छिपाइ ॥
—केशवदास ।

यहाँ भी नायिका के मुख में चंद्रमा की संभावना वाचक-शब्द के विना हुई है; और चंद्रमा का मुख से लज्जित होने के कारण जलदादि में अपना मुख छिपाना असिद्ध है; अतः 'असिद्धास्पद हेतु लुप्तोत्प्रेक्षा' है ।

४ पुनः यथा—दोहा ।

कुल-कपूत-करनी निरखि, धरनी के उर दाह ।
धधकि उठत सोई कबहुँ, ज्वालागिरि की राह ॥
—पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ।

यहाँ भी ज्वालागिरि की अग्नि-शिखा में पृथ्वी के मानस-दाह की संभावना वाचक-शब्द के विना हुई है । पृथ्वी का कपूत की करनी के कारण धधकना असिद्ध है; अतः 'असिद्धास्पद हेतु लुप्तोत्प्रेक्षा' है ।

---

1 कान और वेद ।

सूचना—यह 'लुप्तोत्प्रेक्षा' हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा में ही होती है; क्योंकि इनमें वाचक-शब्द के अभाव में भी उत्प्रेक्षा व्यंजित हो जाती है, वस्तूत्प्रेक्षा में ऐसा नहीं होता; अतः उसमें 'लुप्तोत्प्रेक्षा' नहीं हो सकती।

५ सापह्नवोत्प्रेक्षा

जिसमें अपह्नुति-अलंकार-सहित उत्प्रेक्षा की जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सुबल-सुवन[1] को छल-कलित, चौपर-खेल न जान।
चौपट[2] करिबे कुरुन लौं, मनहुँ काल-चौगान[3]॥

यहाँ शकुनी के कपट-युक्त 'चौपड़-खेल' उपमेय में 'काल के चौगान' उपमान की संभावना 'अपह्नुति' के निषेध-सूचक 'न जान' पद द्वारा कौरवों के सर्व-नाश रूपी फल की इच्छा से की गई है; और कौरवों का नाश होना सिद्ध है; अतः 'सापह्नव सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा' है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सीता के पद-पदम के, नूपुर पट जनि जान।
मनहुँ कस्यौ सुग्रीव-घर, राज्य-श्री प्रस्थान॥
—केशवदास।

यहाँ भी श्रीसीताजी के नूपुर और पट उपमेय में राज-लक्ष्मी उपमान की उत्प्रेक्षा 'अपह्नुति' के 'जनि जान' वाचक-शब्द से उपमेय के उल्लेख पूर्वक हुई है; अतः 'सापह्नव उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा' है।

---

१ शकुनी। २ सर्व-नाश। ३ दंगल।

३ पुनः यथा—कवित्त ।

सुंदर बदन छबि मंद करै चंद हू की,
किरन बतीसन[1] के तेज-पुंज भीनो है।
तैसे ही तिहारे नैन मैन-बान-गंजन हैं;
कंचन-हरन छबि बरन नवीनो है॥
लागि जैहैं कोऊ दीठ ईठ-जन[2] ऐसे कहैं,
करिकै बिचार यौं दिठौना भाल दीनो है।
कीन्हों ना दिठौना कवि 'राम' कहै मेरे जान,
मोहन के मोहिबे कौं टोना कोउ कीनो है॥
—राम।

यहाँ भी नायिका के दिठौने में टोने की संभावना 'अपह्नुति' के निषेध-बोधक 'कीन्हों ना' पद द्वारा मोहन को मोहने रूपी फल की इच्छा से हुई है; और मोहन का मोहित होना सिद्ध है; अतः 'सापह्नव सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा' है।

४ पुनः यथा—दोहा।

नाहिन ये पावक प्रबल, लुएँ चलत चहुँ पास।
मानहुँ बिरह बसंत के, ग्रीषम लेत उसास॥
—विहारी।

यहाँ भी पावकवत् प्रबल ग्रीष्म-जन्य लुओं में ग्रीष्म के उच्छ्वासों की उत्प्रेक्षा वसंत का वियोग हो जाने के हेतु से 'अपह्नुति' के निषेध-सूचक 'नाहिन' पद द्वारा हुई है; और वसंत के वियोग से उच्छ्वासों का होना असिद्ध है; अतः 'असिद्धास्पद हेतु सापह्नवोत्प्रेक्षा' है।

---

१ दाँतों की बत्तीसी। २ इष्टमित्र।

सूचना—यह 'सापह्नवोत्प्रेक्षा' वस्तु, हेतु, फल तीनों भेदों में होती है; और शुद्ध, पर्यस्त, कैतव इन तीन प्रकार की अपह्नुतियों से हो सकती है; किंतु विस्तार-भय से इन सबके उदाहरण नहीं दिए गए। हमारे विचार से यह 'सापह्नवोत्प्रेक्षा' हेत्वपह्नुति, भ्रांतापह्नुति और छेकापह्नुति से नहीं हो सकती।

विशेष सूचना—कुछ आचार्यों ने 'उत्प्रेक्षालंकार' में 'उत्प्रेक्षा' और 'संभावना' के पर्याय रूप में 'तर्क' शब्द का भी व्यवहार किया है; किंतु हमारी सम्मति में 'तर्क' शब्द का व्यवहार उचित नहीं है, क्योंकि यह दर्शन-शास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है, जो व्याप्यारोप से व्यापकारोप में परिभाषित है और इसका व्यवहार करने से अर्थांतर का भ्रम होने की संभावना है। तर्क वास्तव में 'अप्रमा' का एक प्रकार है। कारण की उपपत्ति से किसी बात का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये जो विचार किया जाता है, वह तर्क कहलाता है। जैसे—पर्वत में धुआँ उठता हुआ देखकर यह समझना कि वहाँ आग जल रही है।

---

(१२) अतिशयोक्ति

जहाँ प्रस्तुत की अत्यंत प्रशंसा के लिये अतिशय अर्थात् लोक-सीमा का उल्लंघन करके कोई बात कही गई हो, वहाँ 'अतिशयोक्ति' अलंकार होता है। इसके सात भेद हैं—

१ रूपकातिशयोक्ति

जिसमें उपमेय के बिना केवल उपमान का उपमेय से

अभेद बतलाया जाय; अर्थात् उपमान के कथन द्वारा ही उपमेय का बोध कराया जाय। इसके दो भेद होते हैं—

(क) शुद्ध रूपकातिशयोक्ति

जिसमें 'अपह्नुति' अलंकार की रीति के बिना उपमान का उल्लेख हो। ‍/

१ उदाहरण यथा—सवैया।

दुइ कंजन पै कदली तहँ तार सिरीष-प्रसून को राजत है।
दल-पीपल कूप लता दुइ श्रीफल पै कल कोकिल साजत है॥
तहँ कुंद-कली सुक मंजुल मीन अली-अवली भल भ्राजत है।
व्रज बाग लसै नँद-नंदन को सखि! नंदन हू लखि लाजत है॥

यहाँ नायिका के चरण, जंघा, कटि, उदर, नाभि, रोमावली, स्तन, कंठ, दंत, नासिका, नेत्र, वेणी एवं स्वयं नायिका, इन सब उपमेयों का उल्लेख न करके क्रमशः इनके उपमान कमल, कदली, शिरीष-पुष्प का तार, पीपल-पत्र, कूप, लता, बिल्व-फल, कोयल, कुंद-कलियों, कीर, मछलियों, भ्रमर-पंक्ति, एवं बगीचे का उल्लेख करके उक्त उपमेयों का बोध कराया गया है; तथा क्रमशः एक उपमान के ऊपर दूसरे की विचित्र स्थिति बतलाई गई है; इससे लोकोत्तरता है।

२ पुनः यथा—छप्पय।

हंसहि गज चढ़ि चल्यौ, करी पर सिंह बिरज्जै।
सिंहहि सागर धर्यौ, सिंधु पर गिरि द्वै सज्जै॥

गिरिवर पर इक कमल, कमल पर कोयल बोलै।
कोयल पर इक कीर, कीर पर मृगहू डोलै॥
ता ऊपर द्वै सिसु नाग के, निसि-दिन फनिय धरे रहै।
कवि 'गड्डु' कहै गुनिजनन सौं, हंस भार केतो सहै॥
—गड्डु।

यहाँ भी नायिका के अंग उपमेयों का उल्लेख किए विना केवल उपमानों का ही उल्लेख हुआ है। हंस, हाथी, सिंह, समुद्र, पर्वत, कमल, कोकिल, कीर, मृग और सर्प के बच्चे क्रमशः एक के ऊपर एक का चढ़े रहना, अलौकिक वर्णन है।

सूचना—इस 'शुद्ध रूपकातिशयोक्ति' के और पूर्वोक्त 'वाचकोपमेय लुप्ता' के उदाहरणों में अधिकतर समानता आजाती है; किंतु इसमें उपमान प्रसिद्ध होता है और केवल उपमान का लोकोत्तरता पूर्वक वर्णन रहता है; तथा उसमें उपमान का उल्लेख धर्म के साथ होता है। यही भिन्नता है।

(ख) *सापह्नव रूपकातिशयोक्ति*

जिसमें 'अपह्नुति' अलंकार की रीति से उपमान का उल्लेख हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बुध बैरिहिँ समुझत सखा, सठ सुत सत्रु-समान।
धरमराज राजत धरनि, संयमनिहु मत मान॥

यहाँ 'राजा' उपमेय का उल्लेख नहीं हुआ है। "उनकी पुरी संयमिनी में ही मत मानो" इस निषेध-सूचक वचन द्वारा केवल धर्मराज उपमान का वर्णन किया गया है, जिससे राजा का बोध होता है; और धर्मराज का पृथ्वी पर होना लोकोत्तरता है।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

श्रीफल-सरस चंद बृंद-अलि ब्यालन के,
बिद्रुम औ कीर मीन खंजन बसाने हैं।
कोकिल कपोत कंबु कंचन-कलस केलि[1],
कल रव कंज करी केहरि समाने हैं॥
आली! बनमालीजू के बगर[2] बिहार करैं,
चलदल-दल[3] सो पिपीलिका सुहाने हैं।
आन ठाँ कहत कोऊ ऐन अबिचारैं ये तो,
कंचन-लता पै सब नीकेकै पिछाने हैं॥

—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी कुच आदि उपमेयों का वर्णन नहीं किया गया है; "आन ठाँ कहत कोऊ ऐन अबिचारैं" अपह्नुति के इस आर्थ-निषेध-बोधक वाक्य द्वारा श्रीफल आदि उपमान ही कहे गए हैं, जिनसे उपमेयों का बोध होता है।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'रूपकालंकार' में 'अभेद' एवं 'ताद्रूप्य' दोनों भेदों के अंतर्गत जितने उपभेद हैं, उन सबमें यह हो सकती है; इसीलिये इसे 'रूपकातिशयोक्ति' कहा गया है; किंतु उन सबके उदाहरण देने से बहुत विस्तार हो जायगा; अतः वे छोड़ दिए गए हैं।

(२) 'अभेद रूपकालंकार' में भी उपमेय-उपमान में अभेद होता है; किंतु उसमें इन दोनों का और इसमें केवल उपमान का वर्णन होता है।

२ भेदकातिशयोक्ति

जिसमें वास्तविक अभिन्न उपमेय को भिन्न (अभेद

---

१ कदली। २ घर। ३ पीपल का पत्ता।

होने पर भी भेद) कहा जाय। इसके वाचक-शब्द प्रायः 'औरैं' वा इसके पर्याय 'नवीन', 'न्यारा' आदि होते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

गुन[1] उपाय[2] सेना सचिव, सबके होत अधीन।
पै सासन-सैली निपुन नृप की निपट नवीन॥

यहाँ निपुण राजा की 'शासन-शैली' उपमेय को 'नवीन' शब्द द्वारा भिन्न कहा गया है; और यही लोकोत्तरता है।

२ पुनः यथा—सवैया।

अंबर तें अति ऊँची बहै अरु ऊँडी रसातल हू तें अथारी।
तूहिन[3] के गिरि तें अति सीतल पावक तें अति जारनहारी॥
मार[4] हु तें कटु मीठी सुधा हु तें झीनी अनू तें सुमेरु तें भारी।
जानत जान अजान न जानत, सागर! बात सनेह की न्यारी॥

—प्रवीण सागर।

यहाँ भी 'स्नेह की बात' उपमेय की भिन्नता 'न्यारी' शब्द से और लोकोत्तरता 'अंबर तें अति ऊँची' आदि विशेषणों द्वारा व्यक्त की गई है।

भेदकातिशयोक्ति-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

औरैं भाँति कुंजन मैं गुंजरत भौंर-भीर,
औरैं भाँति बौरन[5] के झौरन के ह्वै गए।
कहै 'पद्माकर' सु औरैं भाँति गलियाँनि,
छलिया छबीले छैल औरैं छबि छ्वै गए॥

१—छः गुण—संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय। २ चार उपाय—साम, दान, भेद और दंड। ३ बरफ। ४ विष। ५ आम्र-मंजरी।

औरैं भाँति बिहँग-समाज मैं अवाज होति,
अबै ऋतुराज के न आजु दिन द्वै गए।
औरैं रस औरैं रीति औरैं राग औरैं रंग,
औरैं तन औरैं मन औरैं बन ह्वै गए॥
—पद्माकर।

यहाँ 'औरैं' शब्द द्वारा वासंतिक सामग्री उपमेयों की भिन्नता कही गई है; अतः माला है।

३ संबंधातिशयोक्ति

जिसमें, असंबंध में संबंध अर्थात् अयोग्य में योग्यता बतलाई जाय।

१ उदाहरण यथा—कवित्त-चरण।

बिन ही बिचारे सुनि सहज उचारे मृदु-
बचन, बिचारे कबि रचना रच्यौ करैं। ❀

यहाँ श्रीराधिकाजी के मुख से साधारणतया निकली हुई वाणी सुनकर ही, कवियों के काव्य-निर्माण का संबंध न होने पर भी, उनका काव्य-निर्माण करना कहा गया है। यही अलौकिकता है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

जटित जवाहिर सौं दोहरे दिवानखाने,
छज्जा छाति आँगन औ हौज सर फेरे के।
करी[1] औ केवार देवदारु के लगाए लखौ,
लह्यौ है सुदामा फल हरि-पद हेरे के॥

---

१ शहतीर।

❀ पूरा पद्य 'सौंदर्यात्युक्ति' में देखिए।

पल में महल बिसकरमै[1] तयार कीन्हे,
कहै 'रघुनाथ' कैयो जोजन के घेरे के।
अति ही बुलंद जहाँ चंद में तें अमी चारु,
चूसत चकोर बैठे ऊपर मुँड़ेरे के॥
—रघुनाथ।

यहाँ भी सुदामा के मंदिर के मुँड़ेरे पर बैठे हुए चकोरों के चंद्रमा में से (इतनी ऊँचाई से) अमृत चूसने का असंबंध होने पर भी संबंध कहा गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

मैं बरजी कै बार तू, इत कित लेति करौट।
पखुरी गरै गुलाब की, परिहैं गात खरौट॥*
—बिहारी।

यहाँ भी नायिका के गात्र में गुलाब के फूल की पंखडी (दल) गड़ने से खरौट (घाव) पड़ने का संबंध न होने पर भी खरौट पड़ना कहा गया है।

४ पुनः यथा—कवित्त।

आछी बनि आई सो सराही सूरबीरन ने,
सूँतीं हैं[2] सिरोही[3] मर्द मूँछ हाथ धरिकै।
खैंचिकै उठाई बग्ग[4], बाही बीर खूब खग्ग,
कायर जे भागि गए छांड़ि खेत डरिकै॥

---

१ विश्वकर्मा। २ खींची है। ३ तलवार। ४ लगाम।

* पति की ओर पीठ करके सोई हुई मानवती नायिका को पति की ओर करने के लिये सखी का कथन है।

कड़के-कड़ाके सो तड़ाके होत तेगन के,
नंद जुगलेस को खड़ो है खेत अरिकै।
तोलाराम वैस्य की बखानी असि रावराजा,[1]
लै गई बिमान मैं बिठाइ हूर बरिकै ॥†

—जवानजी (बंदीजन)।

यहाँ भी वैश्य में तलवार चलाने का असंबंध होने पर भी शूर-वीरों एवं रावराजा द्वारा सराहे जाने के रूप में योग्यता कही गई है।

४ असंबंधातिशयोक्ति

जिसमें, संबंध में असंबंध अर्थात् योग्य में अयोग्यता कही जाय।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

आदि-अंत जाको ना प्रजा को आदि-अंत आपु,
रूप-गुन-हीन हू सरूप-गुनवारो है।
संकलप-सून्य त्यौं अनल्प कल्पना को हेतु,
न्यारो नित जातें ता अजा तें सबिकारो है॥
विषय-बिकार हैं न इन ही को वारापार,
बेद हू लजात पै न जात भ्रम-भारो है।
कैसे को बखानै वाहि[2] कौन जो न जानैं याहि[3],
दीन जन हेतु जो नवीन तनु धारो है॥

---

१ सीकर (शेखावाटी)-नरेश। २ निर्गुण। ३ सगुण।

† यह पद्य सेठ जुगलकिशोरजी गनेड़ीवाले फतेहपुर (शेखावाटी)-निवासी के पुत्र वीरपुरुष तोलारामजी की प्रशंसा में है। जो अनेक डाकुओं को युद्ध में मारकर स्वयं स्वर्गगामी हुए थे।

यहाँ श्रीवेद भगवान् में किसी विषय में संशय न होने की योग्यता होते हुए भी निर्गुण-सगुण-परमात्मा के यथार्थ ज्ञान में भ्रम होने का असंबंध कहा गया है; यहाँ लोक-मर्यादोल्लंघन है।

२ पुनः यथा—सवैया।

इन पंकज-पुंज कठोर किए यह सोर पर्‌यौ सब साथिन मैं।
नर-नाथ निहारि प्रजान के, ज्यौं सब सौतिन के मन माथ नमैं[1]॥
सकुचाइ रही अरगाइ[2] गिरा[3] कहि गाइ सकौं गुन गाथ न मैं।
बरनै कवि को किहिँ भाँति अहो! ब्रजनाथ बिके जिन हाथन मैं॥

यहाँ भी देवी सरस्वती में अशेष गुण-विषय-वर्णन का संबंध होते हुए भी राधारानी के हाथों की प्रशंसा-वर्णन न कर सकने का असंबंध (अयोग्यता) बतलाया गया है।

असंबंधातिशयोक्ति-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

कोटिन कुबेरन को कनक, कनूका सम,
ताकों चारों बेद एक अलप कहानी है।
कामधेनु कलपतरु चिंतामनि आदिक की,
ताको दान देखि-देखि मति चकरानी है॥
पाँच हू मुकुति ताकी दासी ह्वै खवासी करैं,
काल हू कराल की न ता सँग बिसानी है।
'दीन' कवि जाके मन-मंदिर मैं बास करैं,
राम सो सुराजा औ सिया सी महारानी है॥

—लाला भगवानदीन।

यहाँ करोड़ों कुबेरों के सुवर्ण-समूह में योग्यता होते हुए भी (जिसके अंतःकरण में श्रीसीतारामजी निवास करते हों ऐसे)

१ झुकते हैं। २ अलग होकर। ३ सरस्वती।

भक्त द्वारा कनूका (कण) समझा जाने का असंबंध कहा गया है। इसी प्रकार यहाँ और भी चार 'असंबंधातिशयोक्तियाँ' हैं; अतः माला है।

सूचना—काव्यों में 'अतिशयोक्ति' के इस भेद का अधिक प्रयोग होता है; और प्रायः इसके ऐसे उदाहरण देखे जाते हैं—"ईश्वर का वर्णन शेष और शारदा भी नहीं कर सकते" तथा "वेद भी नेति-नेति कहते हैं"।

५ अक्रमातिशयोक्ति

जिसमें कारण और कार्य का पौर्वापर्य क्रम के विना एक ही साथ हो जाना कहा जाय।

१ उदाहरण यथा—सोरठा।

अजामील के प्रान, इत निकसे हरि-नाम-जुत।
उत वह बैठि बिमान, तब लगि पहुँच्यौ हरि-सदन॥

यहाँ हरि-नाम लेते हुए पापी अजामिल के प्राणों का निकलना कारण है; तथा उसका विमान में बैठकर वैकुंठ-धाम पहुँचना कार्य है; इन दोनों का एक साथ हो जाना कहा गया है; यही लोकोत्तरता है।

२ पुनः यथा—सवैया।

बूझत ही वह गोपी गुवालहि आजु कछू हँसिकै गुन गाथहि।
ऐसे मैं काहु को नाम सखी! कह कैसेधौं आइ गयौ ब्रजनाथहि॥
खात खुवावत ही जु बिरी सु रही मुँह की मुँह हाथ की हाथहि।
आतुर ह्वै उन आँखिन तें अँसुवा निकसे अखरान के साथहि॥

—अलंकार-आशय

यहाँ भी श्रीकृष्ण के मुख से अन्य गोपिका का नाम निकलना कारण और श्रीराधिकाजी की आँखों से अश्रुपात होना कार्य, दोनों एक साथ ही हुए हैं।

३ पुनः यथा—दोहा।

उत गँकार मुख तें कढ़ी, इत निकसी जमधार।
'वार' कहन पायौ नहीं, भई कलेजे-पार॥
—अज्ञात कवि।

यहाँ भी यह आशय है कि बादशाह का साला सलाबतखाँ, राठौर अमरसिंह को 'गँवार' कहने लगा था; किंतु 'गँ' ही कहने पाया था कि अमरसिंह ने कटार उसके कलेजे के पार कर दी; जिससे वह 'वार' कहने ही नहीं पाया; अतः उसके मुँह से 'गँ' कहना कारण एवं कटार का प्रहार कार्य, इन दोनों का पूर्वोत्तर क्रम के विना एक साथ होना कहा गया है।

६ चपलातिशयोक्ति

जिसमें कारण के ज्ञान अर्थात् देखने सुनने मात्र से ही तत्क्षण कार्य होने का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—सवैया-चरण।

दूरहि तें दृग देखत ही दसिहैं बस नाहिन मंत्र मनी को।*

यहाँ नायिका के केश-रूपी सर्पों को दूर से देखने मात्र कारण से डसा जाना कार्य होना कहा गया है; यही अलौकिकता है।

* पूरा पद्य 'रूपक' में देखिए।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

बोध बुधि बिधि के कमंडल उठावत ही,
धाक सुर-धुनि की धँसी यौं घट-घट मैं ।
कहै 'रतनाकर' सुरासुर ससंक सबै,
बिबस बिलोकत लिखे से चित्रपट मैं ॥
लोकपाल दौरन दसौं दिसि हहरि लागे,
हरि लागे हेरन सुपात बर बट मैं ।
त्रसन नदीस लागे, खसन गिरीस लागे,
ईस लागे कसन फनीस कटि-तट मैं ॥

—बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ।

यहाँ भी ब्रह्माजी के कमंडलु उठाते ही श्रीगंगाजी के प्रपात कारण का ज्ञान होने मात्र से तत्काल घट-घट में भय उत्पन्न होने आदि कार्यों का होना कहा गया है ।

चपलातिशयोक्ति-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

दारे दुख दारिद घनेरे सरनागत के,
अंब ! अनुकंपा उर तेरे उपजत ही ।
मंदिर मैं महिमा बिराजै इंदिरा की नित,
गाजै झनकार धुनि कंचन-रजत ही ॥
गाज सी परत अनसहन बिपच्छिन पै,
मत्त गजराजन की घंटा गरजत ही ।
हारे हिय सारे हथियार डरि डारे देत,
हारे देत हिम्मत नगारे के बजत ही ॥

—पं० कृष्णशंकर तिवाड़ी, एम, ए, ।

यहाँ प्रथम चरण में दुर्गा के हृदय में दया का संचार मात्र होने कारण द्वारा शरणागत मनुष्य के दुख-दारिद्र्य हरने का

तुरंत हुआ है। इसी प्रकार तृतीय तथा चतुर्थ चरणों में भी है; अतः यह माला है।

७ अत्यंतातिशयोक्ति

जिसमें कारण ऐसा लाघव (शीघ्र)-कारी हो कि उससे पहले ही कार्य हो जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

संभु-समाधि ललार-चख, खुलत न लागी बार।
प्रथमहिं डुस्यौ रसाल-दल, मार भयौ जरि छार॥

यहाँ श्रीशंभु के ललाट-नेत्र का खुलना कारण है, जिससे पहले ही काम का भस्म होना कार्य हो गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

उदय भयौ पीछे ससी, उदयागिरि के सृंग।
तुव मन-सागर राग[1] की, प्रथमहिं बढ़ी तरंग॥

—जसवंत-जसोभूषण।

यहाँ भी चंद्रोदय कारण से पहले ही समुद्र की तरंग का बढ़ना कार्य हुआ है।

सूचना—संस्कृत-अलंकार-शास्त्र के मम्मट आदि प्राचीन आचार्यों ने 'अतिशयोक्ति' अलंकार को भी 'उपमा' की भाँति प्रधान और बहुत से अलंकारों का आश्रय माना है।

(१४) तुल्ययोगिता

जहाँ अनेक के धर्मों[2] का तुल्ययोग अर्थात् एकता हो,

१ अनुराग। २ गुण क्रिया आदि।

वहाँ 'तुल्ययोगिता' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ प्रथम तुल्ययोगिता

जिसमें अनेक उपमेयों वा अनेक उपमानों का एक ही धर्म कहा जाय। इसके दो भेद हैं—

(क) उपमेयों के एक धर्म का

१ उदाहरण यथा—दोहा।

श्रीरघुबर के नख, चरन, मुख सुषमा-सुख-खान।
लहै चार फल अछत तनु, देखु घरिक धरि ध्यान॥

यहाँ 'नख', 'चरन' एवं 'मुख' इन तीन उपमेयों का 'सुषमा-सुख-खान' एक ही धर्म कहा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सखि! स्यामा के ज्यौं लगे, नैन, बैन इठलान।
सुखद भए त्यौं स्याम कौं, सौतिन कौं दुखदान॥

यहाँ भी 'नैन' और 'बैन' दो उपमेयों का 'इठलान लगे' एक ही धर्म वर्णित है।

(ख) उपमानों के एक धर्म का

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अंग अलोक बिलोकि तव, सकुचि बसे बन[1] जाय।
केहरि कीर कुरंग करि, कमल कंबु समुदाय॥

यहाँ केहरि आदि अनेक उपमानों का वन में जा बसना एक ही धर्म कहा गया है।

---

१ वन और जल।

२ पुनः यथा—कवित्त।

सपत नगेस आठौं ककुभ[1] गजेस कोल,
कच्छप दिनेस धरैं धरनि अखंड को।
पापी घालै[2] धरम सुपथ चालै मारतंड,
करतार प्रन पालै प्रानिन के चंड को॥
'भूषन' भनत सदा सरजा सिवाजी गाजी[3],
म्लेच्छन को मारै करि कीरति घमंड को।
जग-काजवारे, निहिचिंत करि डारे, सब
भोर देत आसिष तिहारे भुजदंड को॥
—भूषण।

यहाँ भी सातों नगेश (पर्वतराज) आदि उपमानों का 'धरैं धरनि' एक धर्म कहा गया है।

उपमानों के एक धर्म की माला १ उदाहरण यथा—सवैया।

तो सुर-सेवित-साखिन[4] के फल की औ धा-कन को सुधि आवै।
कोकिल-कूजन काव्य-कला रति-भारती[5] भारती-बीन[6] हु भावै॥
दाखन की मधु[7] माखन की चित चाखन की अभिलाष लखावै।
स्याम सुजानहिँ जो सखि! स्वामिनि श्रीमुख बैन न बोलि सुनावै॥

यहाँ आरंभ के तीन चरणों में क्रमशः फल आदि, कोकिल-कूजन आदि एवं दाख आदि अनेक उपमानों का 'सुधि आवै', 'भावै' एवं 'अभिलाष लखावै' एक-एक ही धर्म है; अतः माला है।

---

१ दिशा। २ नाश करता है। ३ शूर-सामंत। ४ कल्पवृक्ष। ५ रति की बाणी। ६ सरस्वती की वीणा। ७ शहद।

उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—दोहा।

कोक कुंभ नहिं लहत सखि! सोभा-उरज-उतंग।
नैन बैन बाँके भए, प्रगटत जोबन अंग॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ कोक (चक्रवाक) एवं कुंभ उपमानों को उरोजों की शोभा न प्राप्त होना और नैन एवं बैन उपमेयों का बाँके होना, एक-एक धर्म कहा गया है; अतः दोनों की 'तुल्ययोगिता' है।

२ द्वितीय तुल्ययोगिता

जिसमें हित और अनहित (मित्र-शत्रु, सुख-दुःख) में तुल्य (समान) व्यवहार बतलाया जाय।

१ उदाहरण यथा—कवित्तार्द्ध।

बिमल बिरागी त्यागी यागी बड़भागी भक्त,
बिषयानुरागी त्यौं कुसंगति करैया है।
कोऊ पंचकोसी माहिँ पंचपन पावैं[1] मुक्ति,
सबको समान देत कासी पुरी मैया है॥*

यहाँ पुण्यात्मा (मित्र) एवं पापात्मा (शत्रु) दोनों को श्रीकाशीजी द्वारा समान मुक्ति प्राप्त होना कहा गया है।

२ पुनः यथा—छप्पय।

अरि हु दंत तृन धरै, ताहि मारत न सबल कोइ।
हम संतत तृन चरहिँ, वचन उच्चरहिँ दीन होइ॥
अमृत-पय नित स्रवहिँ, वच्छ महि-थंभन जावहिँ।
हिंदुहिँ मधुर न देहिँ, कटुक तुरकहिँ न पियावहिँ॥

---

[1] मृत्यु को प्राप्त हो। * पूरा पद्य 'विकस्वर' में देखिए।

कह कवि 'नरहरि' अकबर ! सुनो, बिनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत ? मुयहु चाम सेवइ चरन ॥

—नरहरि।

यहाँ भी चतुर्थ चरण में हिंदू (हितैषी) और तुर्क (विद्वेषी) दोनों के प्रति गाय का समान व्यवहार करना कहा गया है।

३ तृतीय तुल्ययोगिता

जिसमें उत्कृष्ट (अधिक) गुणवाले उपमानों के साथ मिलाकर उपमेय का वर्णन किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मदन-महीपति-तिय-बदन, सरद-चंद-अरबिंद।
अरु तव मुख सुखमा-सदन, कहत सकल कवि-बृंद ॥

यहाँ श्रीराधिकाजी के मुख उपमेय का रति के मुख, शरद ऋतु के चंद्रमा और कमल उपमानों के साथ मिलाकर (सौंदर्य की समता करके) वर्णन किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

भोज बिक्रमादित्य नृप, जगदेवो रनधीर।
दानिन हू के दानि दिन, इंद्रजीत वर बीर ॥

—केशवदास।

यहाँ भी राजा भोज, विक्रमादित्य एवं जगदेव पँवार के साथ (उदारता की समता करके) ओड़छा के राजा इंद्रजीत का वर्णन किया गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

जग-प्रसिद्ध की पाँति मैं, गने जु प्रस्तुत जान।
लोकपाल सुरपति बरुन, यम कुबेर नृप-मान ॥

—अलंकार-आशय।

यहाँ भी इंद्र आदि उपमानों के साथ (लोक-पालन की समता करके) राजा मान का उल्लेख किया गया है।

सूचना—पूर्वोक्त "द्वितीय उल्लेखालंकार" में एक व्यक्ति एक ही वस्तु का पृथक्-पृथक् विषय-भेद द्वारा अनेक प्रकार से वर्णन करता है; और यहाँ (तुल्ययोगिता में) एक उपमेय को अनेक उपमानों के साथ मिलाकर उसका वर्णन किया जाता है। वहाँ केवल गुण-कथन का तथा यहाँ अनेक उपमानों से समता का भाव होता है; यही इनमें अंतर है।

(१५) दीपक

जहाँ उपमेय और उपमान दोनों की एक ही धर्म-वाची क्रिया कही जाय, वहाँ 'दीपक' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मुख मंजुल सुषमहिँ लसत, मित्र-मयूखनि[१] कंज।
चख अंजन-अंजित झख रु, खंजन चपल सुरंज॥

यहाँ मुख एवं चख उपमेय और इनके कंज तथा झख, खंजन उपमानों की एक ही क्रिया 'लसत' का व्यवहार हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

चंचल निसि उद्‌बस[२] रहैं, करत प्रात बसि राज।
अरविंदनि मैं इंदिरा, सुंदर नैननि लाज॥

—मतिराम।

यहाँ भी नेत्रों की लाज उपमेय और अरविंदों की श्री उपमान है। इन दोनों के लिये 'उद्‌बस रहैं' एवं 'राज करत' क्रियाएँ व्यवहृत हुई हैं।

---

१ सूर्य की किरणों से। २ उजड़ी हुई।

३ पुनः यथा—सवैया।

कामिनि कंत सौं, जामिनि चंद सौं, दामिनि पावस-मेघ-घटा सौं।
कीरति दान सौं, सूरति ज्ञान सौं, प्रीति बड़ी सनमान महा सौं॥
'भूषन' भूषन सौं तरुनी, नलिनी नव पूषन-देव-प्रभा[1] सौं।
जाहिर चारहुँ ओर जहान लसै हिंदुवान खुमान सिवा सौं॥

—भूषण।

यह भी 'हिंदुवान खुमान सिवा सौं' उपमेय-वाक्य एवं 'कामिनि कंत सौं' आदि उपमान-वाक्य हैं। इन सबकी एक ही क्रिया 'लसै' कही गई है।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'तुल्ययोगिता' अलंकार में केवल उपमेयों वा उपमानों का एक धर्म कहा जाता है; और इसमें उपमेय तथा उपमान दोनों का एक ही धर्म कहा जाता है। यही इनमें अंतर है।

(२) कुछ भाषा-ग्रंथों में लिखा है कि 'दीपक' का लक्षण उपमेय-उपमानों का गुण और क्रिया आदि एक धर्म होना है; किंतु वामनाचार्य के प्राचीन 'अलंकार-सूत्र' नामक ग्रंथ में वर्ण्य[2] अवर्ण्य[3] की एक ही क्रिया होना लिखा है। यथा—

"उपमानोपमेयवाक्येष्वेका क्रिया दीपकम्"

श्रीजीवानंद विद्यासागर-कृत 'साहित्य-दर्पण' की टीका से भी यही सिद्ध होता है। यथा—

"अत्रप्रस्तुताया अप्रस्तुताया च [illegible] क्रिया सम्बन्धः"

इसके अतिरिक्त संस्कृत तथा भाषा के जितने उदाहरण देखे गए, उन सबमें भी केवल क्रिया का ही उपयोग है; अतः पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि 'कारक-दीपक', 'माला-दीपक', 'आवृत्ति-दीपक', 'देहरीदीपक' अर्थात् 'दीपक' मात्र में ही केवल क्रिया का संबंध नियमित होता है।

---

१ सूर्यदेव की आभा। २ उपमेय। ३ उपमान।

(१६) कारक-दीपक

जहाँ क्रम पूर्वक अनेक क्रियाओं का एक ही कारक (कर्ता) हो, वहाँ 'कारक-दीपक' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

सुनै मन हू की, सुनि सेस हू धुनै है सीस,
ये ही सुख परस-समै को सरसावै री।
देखि झट लेत उर-आसय समेत, षट
स्वाद रसना तें अति सरस बतावै री॥
गंध-गुन-औगुन गनावै दूर ही तें चित्त,
चंचल की चाल पल-पल की जनावै री।
पाँचों इंद्रियन के औ मन के अनेक, एक
नैनन नलिन-नैनी नाटक नचावै री॥

यहाँ श्रोत्रादि पाँचों इंद्रियों एवं मन के क्रमशः श्रवणादि एवं संकल्प-विकल्प विषयों या कार्यों को अपने नेत्रों द्वारा करनेवाली एक श्रीराधिकाजी ही कही गई हैं।

२ पुनः यथा—कवित्त।

कंस तें पिता को बंस द्रोन-सुत-अस्त्र हू तें,
अंस अभिमन्यू को[1] उबारो अघ-हीनो तैं।
पूतनादि पातकी बिदूरथ लौं मारि, कौरू-
पांडुन भिराइ भूमि-भार दूर कीनो तैं॥

---

१ परीक्षित।

मातु - गुरु - बिप्र - पुत्र[1] मृतक मिलाए आनि,
उद्धव बिजै[2] कों गूढ़ ज्ञान, भक्ति दी नो[3] तैं।
रास ब्रजनारिन लौं द्वारका बिहारन लौं,
कान्ह ! अवतार कोटि कारन लौं लीनो तैं ॥

यहाँ भी 'कंस के अत्याचारों से अपने पिता वसुदेवजी के वंश को उबारना' आदि क्रम पूर्वक अनेक क्रियाओं के कर्ता एक श्रीकृष्ण ही कहे गए हैं।

३ पुनः यथा—दोहा।

पूरन सकल बिलास रस, सरस पुत्र - फल - दान।
अंत होइ सहगामिनी, नेह - नारि को मान ॥
—चंद बरदाई।

यहाँ भी क्रमशः हास-विलास की पूर्ति, सुपुत्रोत्पत्ति एवं अंत में सहगामिनी (सती) होना, इन तीन क्रियाओं की करनेवाली एक धर्मपत्नी कही गई है।

(१७) माला-दीपक

जहाँ वर्ण्य-अवर्ण्य की एक क्रिया का गृहीत-मुक्त-रीति से व्यवहार किया जाय, वहाँ 'माला-दीपक' अलंकार होता है।[4]

---

१ माता देवकी के पुत्र, गुरु सांदीपनि के पुत्र और एक ब्राह्मण का पुत्र। २ अर्जुन। ३ नवधा (भक्ति)। ४ यह अलंकार 'दीपक' के और 'एकावली' की गृहीत-मुक्त-रीति के संयोग से होता है।

१ उदाहरण यथा—सोरठा।

प्रान-परायन देह, देह-परायन रूप-रँग।
रूप-परायन नेह, नेह-परायन पिय-प्रिया॥

यहाँ पूर्व-गृहीत 'प्रान' शब्द का त्याग करके एक ही 'परायन' क्रिया से 'देह' शब्द का ग्रहण किया गया है; और शेष वर्णन भी इसी प्रकार है।

२ पुनः यथा—दोहा।

भू-मंडल मैं ब्रज बसत, ब्रज मैं सुंदर स्याम।
सुंदर स्याम-स्वरूप मैं, मो मन आठौं जाम॥

—राजा रामसिंह (नरवलगढ़)।

यहाँ भी भू-मंडल में ब्रज, ब्रज में श्यामसुंदर और श्यामसुंदर में कवि के मन का रहना गृहीत-मुक्त-रीति से कहा गया है; और इनमें एक ही क्रिया 'बसत' का प्रयोग हुआ है।

माला-दीपक-माला १ उदाहरण यथा—सवैया।

बात को दीप दिया को पतंग पतंग को तेज कहाँ लौं जगैहैं।
ग्राव[1] को कुंद जु कुंद को फुंदन फुंद को मोती कहा लौं रहैहैं॥
पात को बुंदन बुंद-प्रसून प्रसून मैं बास कहाँ लगि रैहैं।
साधन गुंज-प्रबीन तजे तब[2] प्रान कपूर की ज्यौं उड़ि जैहैं॥

—प्रवीण सागर।

यहाँ प्रथम चरण में 'बात' शब्द का त्याग करके 'दीप' शब्द का और फिर 'दीप' का त्याग करके 'पतंग' का ग्रहण 'कहाँ लौं जगैहैं' इस एक ही क्रिया द्वारा हुआ है। इसी प्रकार द्वितीय एवं तृतीय चरण में भी है; अतः यह माला है।

---

१ पत्थर। २ साधन कालीमरिच रूपी राजकुमारी प्रवीण ने जब त्याग दिया, तब।

सूचना—'चंद्रालोक' में इस 'माला-दीपक' अलंकार को एकावली के समीप स्थान दिया गया है; किंतु कई ग्रंथों में इसे 'दीपक' के समीप रखा गया है; और इसके नाम में ही 'दीपक' है; अतः यह 'दीपक' से ही विशेष संबंध रखता है।

(१८) आवृत्ति-दीपक

जहाँ क्रिया-शब्दों की आवृत्ति (एक से अधिक बार प्रयोग) हो, वहाँ 'आवृत्ति-दीपक' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ पदावृत्ति-दीपक

जिसमें एक ही क्रिया-पद की आवृत्ति हो; और उन क्रिया शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हों।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

द्रवत न तन हू पै तनक, द्रवत न जे रन त्यागि।
लहत न तन पुनि ते अनत, यह अंतिम तन त्यागि॥

यहाँ क्रिया-वाची एक ही 'द्रवत' शब्द दो बार आया है; और दोनों के 'पिघलना' एवं 'भागना' भिन्न-भिन्न अर्थ हुए हैं।

२ पुनः यथा—दोहा।

पनिहारी पानी भरत, तू कत भरत उसास।
डग न भरत मग रुकि रह्यौ, कहु पंथी! किहिं आस?॥

यहाँ भी क्रिया-वाची 'भरत' शब्द का तीन बार प्रयोग हुआ है; और इनके क्रमशः '(पानी) भरना', '(उच्छ्वास) मारना' एवं '(पैर आगे को) बढ़ाना' भिन्न-भिन्न अर्थ हुए हैं।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

दोऊ दुहूँ चाहैं दोऊ दुहुँन सराहैं सदा,
दोऊ रहैं लोलुप दुहूँन छबि न्यारी के।
एकै भए रहैं नैन मन प्रान दोहुँन के,
रसिक बनेई रहैं दोऊ रस-क्यारी के॥
'हरि औध' केवल दिखात द्वै सरीर ही है,
नातो भाव दीखै हैं महेस-गिरि-बारी के।
प्रान-प्यारे-चित मैं निवास प्रान-प्यारी रखै,
प्रान-प्यारो बसत हिये मैं प्रान-प्यारी के॥

—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ।

यहाँ भी चतुर्थ चरण में 'निवास रखै' एवं 'बसत' एकार्थ-वाचक, पर भिन्न-भिन्न क्रिया-शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।

३ पदार्थावृत्ति-दीपक

जिसमें पद और अर्थ दोनों की आवृत्ति हो, अर्थात् वही क्रिया-पद उसी अर्थ में एक से अधिक बार व्यवहृत हुआ हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

विषयिन के संतोष नहिं, नहिं लोभिन के लाज।
बार-बधुन के नेह नहिं, नहिं नदियन के पाज॥

यहाँ 'नहिं' क्रिया-पद का एक ही अर्थ में चार बार व्यवहार किया गया है ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

संपति के आखर ते पाँय मैं लिखे हैं, लिखे
भुव-भार थाँभिबे के भुजनि बिसाल मैं ।
हिय मैं लिखे हैं हरि-मूरति बसाइबे कों,
हरि-नाम आखर सो रसना रसाल मैं ॥
आँखिन मैं आखर लिखे हैं कहै 'रघुनाथ',
राखिबे कों दृष्टि सब ही के प्रतिपाल मैं ।
सकल दिसान बस करिबे के आखर ते,
भूप बरिबंड के बिधाता लिखे भाल मैं ॥
—रघुनाथ ।

यहाँ भी 'लिखे' क्रिया-शब्द का एक ही अर्थ में अनेक बार प्रयोग हुआ है ।

३ पुनः यथा—कवित्त ।

फोरि डारौं फलक[1] जमीन जोरि डारौं बल,
बारिध मैं बैरिन के बृंद बोरि डारौं मैं ।
रोरि डारौं रन घन घोरि डारौं बज्री-बज्र,
छोरि डारौं बारिध-मजाद तोरि डारौं मैं ॥
'अवधबिहारी' रामचंद्र को हुकुम पाऊँ,
चंद कों निचोरि मेरु कों मरोरि डारौं मैं ।
मोरि डारौं मान, मानी मूढ़ महिपालन की
नाक तोरि डारौं औ पिनाक तोरि डारौं मैं ॥
—अवधबिहारी ।

यहाँ भी लक्ष्मणजी की उक्ति में 'डारौं' क्रिया-शब्द एक ही अर्थ में अनेक बार आया है ।

---

1 आकाश ।

पदार्थावृत्ति-दीपक-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

दौरे काल कंक[1] करतारी कर तारी दै-दै,
दौरी काली किलकत सुधा की तरंग सौं।
कहै 'हरिकेस' दंत पीसत खबीस[2] दौरे,
दौरे मंडलीक गीध गीदर उमंग सौं॥
वीर जयसिंह! जंग-जालम सु कौनपर,
फरकाई भुज त्यौं चढ़ाई भौंहैं भंग सौं।
भंग डारि मुख सौं, भुजन सौं भुजंग डारि,
हर्षि हर दौरे, डारि गौरी अरधंग सौं॥

—हरिकेश ।

यहाँ 'दौरे' क्रिया-पद का 'दौड़ना' अर्थ में चार बार एवं 'डारि' क्रिया-पद का 'डालना' अर्थ में तीन वार प्रयोग हुआ है। दो जगह यही चमत्कार होने के कारण यह माला है।

सूचना—यह अलंकार एक प्रकार का पूर्वोक्त 'शब्दावृत्ति-लाटानुप्रास' ही है; किंतु क्रिया-शब्द की आवृत्ति में 'पदार्थावृत्ति-दीपक' और अक्रिया-शब्द की आवृत्ति में 'शब्दावृत्ति-लाटानुप्रास' जानना चाहिए।

विशेष सूचना—उक्त चार 'दीपक' अलंकारों के अतिरिक्त **'देहरी-दीपक'** नामक अलंकार का विहारी-सतसई की टीका लाल-चंद्रिका में एवं अलंकार-मंजूषा में यह लक्षण लिखा है—

"परै एक पद बीच मैं, दुहुँ दिसि लागै सोइ।
सो है 'दीपक-देहरी', जानत हैं सब कोइ॥"

किंतु किसी अन्य ग्रंथ में यह नहीं पाया जाता; और हमको इसमें कोई ऐसा चमत्कार नहीं दिखाई देता जिससे इसकी अलग गणना की जा सके क्योंकि इसमें जो पद देहरी-दीपकवत् आता

---

१ पक्षी-विशेष। २ प्रेत-विशेष।

है वह दो पक्षों में गृहीत होता है; इस प्रकार उस पद की एक तरह से आवृत्ति हो जाती है; अतः यह 'पदार्थावृत्ति-दीपक' का एक संक्षिप्त स्वरूप ही है। सुतरां इसका दिग्दर्शन मात्र करा देते हैं—

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

बिरचि बिरंचि ने प्रपंच पंचभूतन तें,
रचना बिचित्र लोक लोकप घनेरे की।
जीव जड़ जंगम भुजंगम अगूढ़ गूढ़,
बरनौं कहाँ लौं मतिमूढ़ बिन बेरे की[1]॥
पूरन लौं काम, श्रम हरन तमाम तथा
हेतु-उपराम[2] यह बात मन मेरे की।
भागवत ब्यास, बिनै-पत्रिका पियूष पूरि
तुलसी, बनाई त्यौं निकाई मुख तेरे की॥

यहाँ 'बनाई' क्रिया-पद 'देहरी-दीपक' है। यह 'भागवत और विनय-पत्रिका बनाई' एवं 'मुख की निकाई बनाई' दोनों तरफ देहरी-दीपकवत् प्रकाश डालता है।

२ पुनः यथा—सोरठा।

बंदउँ बिधि-पद-रेनु, भव-सागर जेहि कीन्ह जहँ।
संत सुधा, ससि धेनु, प्रगटे खल बिष बारुनी॥

—रामचरित-मानस।

यहाँ भी 'प्रगटे' क्रिया-शब्द मध्य में है; और पूर्व के 'संत सुधा, ससि धेनु' एवं उत्तर के 'खल बिष बारुनी' दोनों में समान रूप से लगता है।

---

१ बिना पते की। २ शांति।
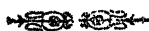
✓(१६) प्रतिवस्तूपमा

जहाँ उपमेय-उपमान-वाक्यों में एक ही धर्म का एकार्थ-वाची भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा वर्णन किया जाय, वहाँ 'प्रतिवस्तूपमा' अलंकार होता है ।

१ उदाहरण यथा—कवित्त-चरण ।

स्यामल घटा मैं ज्यौं चमंक चपला की चारु,
नीले दुपटा मैं त्यौं दमंक दुति पीली की । ❀

यहाँ नीला दुपट्टा और श्रीराधिकाजी की पीली अंग-द्युति उपमेय और श्यामल घटा एवं चपला की चमक उपमान-वाक्य हैं । इनका 'चमंक' एवं 'दमंक' एकार्थ-वाची शब्दों से एक ही धर्म 'चमकना' कहा गया है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

बीती बरषा-काल अब, आई सरद सुजाति ।
गई अँधारी, होति है, चारु चाँदनी राति ॥

—केशवदास ।

यहाँ भी वर्षा-काल एवं शरद्-ऋतु उपमेय और 'अँधारी' एवं 'चाँदनी राति' उपमान-वाक्य हैं । इनके क्रमशः 'बीती' एवं 'गई' और 'आई' एवं 'होति है' एकार्थ-वाची भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा चला जाना एवं आना एक-एक ही धर्म कहे गए हैं । दो होने के कारण माला है ।

❀ पूरा पद्य 'स्वभावोक्ति' की सूचना में देखिए ।

यह अलंकार वैधर्म्य (जिसमें विधि एवं निषेध रूप धर्म एकार्थ-वाची भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा कहा जाय) से भी होता है—

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

तजत न सज्जन बाँह गहि, कियौ जु अंगीकार ।
अंक मयंक, भुजंग भव, धरत धरनि मल-भार ॥

यहाँ सज्जन का व्यवहार उपमेय और चंद्रमा, शंकर एवं पृथ्वी का व्यवहार उपमान-वाक्य हैं, इनका 'तजत न' (निषेध रूप) तथा 'धरत' (विधि रूप) एकार्थ-वाची भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा एक ही धर्म 'नहीं छोड़ना' कहा गया है ।

२ पुनः यथा—दोहार्द्ध ।

बिष-धर साँप न सेइए, तजिए बैनहिँ कूर ।

—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी 'क्रूर वचन' उपमेय और 'विष-धर साँप' उपमान-वाक्य हैं, इनका 'तजिए' (विधि रूप) एवं 'न सेइए' (निषेध रूप) एकार्थ-वाची भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा एक ही धर्म 'त्यागना' कहा गया है ।

सूचना—(१) इस अलंकार में वस्तु-प्रतिवस्तु-भाव (जुदे-जुदे शब्दों द्वारा एक धर्म कहा जाना) होता है, इसीसे इसको 'प्रतिवस्तूपमा' कहा गया है ।

(२) इस 'प्रतिवस्तूपमा' अलंकार की तरह पूर्वोक्त 'अर्थावृत्ति-दीपक' में भी भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा एक ही धर्म कहा जाता है; किंतु वहाँ उपमेय-उपमान-वाक्य नहीं होते; और यहाँ होते हैं ।

(२०) दृष्टांत

जहाँ उपमेय-उपमान-वाक्यों और इनके साधारण धर्मों का बिंब-प्रतिबिंब-भाव[1] हो, अर्थात् उपमेय-वाक्य को उपमान-वाक्य से दृष्टांत दिया जाय, वहाँ 'दृष्टांत' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

दीन दरिद्रिन दुखिन को, करत न प्रभु अपकार।
केहरि कबहुँ कि कृमिन पै, करतल करत प्रहार॥

यहाँ पूर्वार्द्ध उपमेय-वाक्य एवं उत्तरार्द्ध उपमान-वाक्य है; और 'अपकार (तिरस्कार) न करना' एवं 'प्रहार न करना' ये उन दोनों के भिन्न-भिन्न साधारण धर्म हैं। इन सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव है, अर्थात् उपमेय-वाक्य को उपमान-वाक्य से दृष्टांत दिया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

तुम तारत अपनी प्रजहिं, कहा अधिक उपकार।
वारिहु बोरत दारु नहिं, अपनो अंग विचार॥

---

१ 'बिंब' किसी तैजस पदार्थ के मंडल को एवं 'प्रतिबिंब' उस बिंब के आभास (अक्स) को कहते हैं। जैसे—"राजा में उसी प्रकार प्रताप है, जिस प्रकार सूर्य में तेज" इस वाक्य में राजा उपमेय एवं प्रताप इसका धर्म है, यह दोनों बिंब हैं, तथा सूर्य उपमान एवं तेज उसका धर्म है, जो दोनों प्रतिबिंब हैं। यहाँ राजा उपमेय एवं सूर्य उपमान का और इनके प्रताप एवं तेज साधारण धर्मों का दृष्टांत (नज़ीर) रूप से वर्णन हुआ है। इसीको बिंब-प्रतिबिंब-भाव कहते हैं। २ काष्ठ।

यहाँ भी पूर्वार्द्ध उपमेय-वाक्य एवं उत्तरार्द्ध उपमान-वाक्य है; और 'तारना' एवं 'न डुबोना' ये उन दोनों के भिन्न-भिन्न साधारण धर्म हैं। इन सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव से वर्णन है।

३ पुनः यथा—सवैया।

हौं सुख पाइ सिखाइ रही सिख सीखे न ये सिख तैं हूँ सिखाई।
मैं बहुतै दुख पाइ हूँ देखे ये 'केसव' क्यौं हूँ कुटेव न जाई॥
दंड दिए बिन साधुन हूँ सँग छूटत क्यौं खल की खलताई।
देखहु दै मधु की घुट कोटि मिटै न घटै बिष की बिषताई॥
—केशवदास।

यहाँ भी तृतीय चरण में उपमेय-वाक्य एवं चतुर्थ चरण में उपमान-वाक्य है, इनके 'दुष्टता न छूटना' एवं 'विषता न जाना' भिन्न-भिन्न साधारण धर्म हैं। इन सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव है।

४ पुनः यथा—दोहा।

भरतहिँ होइ न राज-मद, बिधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि, छीर-सिंधु बिनसाइ॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ भी पूर्वार्द्ध उपमेय-वाक्य एवं उत्तरार्द्ध उपमान-वाक्य है; और 'गर्व न होना' तथा 'न फटना' इनके भिन्न-भिन्न साधारण धर्म हैं। इन सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव है।

सूचना—पूर्वोक्त 'प्रतिवस्तूपमा' अलंकार में तो उपमेय-उपमान दोनों वाक्यों का शब्द-भेद से एकार्थ-वाची एक धर्म कहा जाता है; और इसमें दोनों वाक्यों के भिन्न-भिन्न धर्म होते हैं तथा उनमें बिंब-प्रतिबिंब-(दृष्टांत)-भाव रहता है।

विशेष सूचना—किसी-किसी भाषा-ग्रंथ में इस 'दृष्टांत' अलंकार के साथ ही **'उदाहरण'** नामक अलंकार भी अलग मानकर वा उसके भेद की भाँति इस आधार पर लिखा है कि इसको प्राचीनों ने भिन्न माना है; और यह लक्षण लिखा है—

"ज्यौं, यौं, जैसे कहि करिय, युग घटना सम तूल।
'उदाहरन' भूषन कहैं, ताहि सुकवि बुधि-मूल॥"

किंतु संस्कृत एवं भाषा के प्रायः अलंकार-ग्रंथों में यह भिन्न नहीं माना गया है; और केवल ज्यौं, जिमि आदि वाचकों का होना या न होना उसकी भिन्न-गणना करने के लिये पर्याप्त कारण नहीं है; अतः यहाँ उसका दिग्दर्शन मात्र करा देते हैं—

१ उदाहरण यथा—सवैया।

सक सुधाकर आदित आदि सुधाद[1] सुधा के सवाद सँतोषनि।
जो जन जान्हवी[2]-तीर बसैं नित ता जल कों जो दलैं दुख दोषनि॥
जानि अरोचक, गोरस चाखन चाहैं पियो पय कूप अहो! खनि।
पाठक त्यों मम भाषित लौं अभिलाषहिंगे लखि लाख अनोखनि॥

यहाँ कविता के पाठकों का वृत्तांत उपमेय-वाक्य और देवगण एवं गंगातट निवासियों का वृत्तांत उपमान-वाक्य है। तथा 'इस कविता को पढ़ना' उपमेय का और 'गोरस चखना' एवं 'कूप-जल पीना' उपमानों के भिन्न-भिन्न साधारण धर्म हैं। इन सब का बिंब-प्रतिबिंब-भाव से वाचक-शब्द 'त्यौं' के द्वारा वर्णन हुआ है।

---

१ देवता। २ गंगा।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम-उपल कृषी दलि गरहीं॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ भी समाहृत[1] खल का वृत्तांत उपमेय-वाक्य एवं हिम-उपल (बरफ)-वृत्तांत उपमान-वाक्य है; और 'शरीर त्याग देना' उपमेय का एवं 'नष्ट हो जाना' उपमान का भिन्न-भिन्न धर्म है। इन सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव से वाचक-शब्द 'जिमि' के द्वारा वर्णन हुआ है।

३ पुनः यथा—दोहा।

खेत बनाइ किसान यौं, करत मेह-अवसेर।
वासकसज्जा बाम ज्यौं, रहति कंत-मग हेर॥
—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'।

यहाँ भी किसान का वृत्तांत उपमेय वाक्य एवं वासकशय्या नायिका का वृत्तांत उपमान-वाक्य है, और 'वर्षा की प्रतीक्षा करना' उपमेय का एवं 'नायक की राह देखना' उपमान का, भिन्न-भिन्न धर्म है। इन सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव से, 'यौं' 'ज्यौं' वाचक-शब्दों द्वारा वर्णन हुआ है।

४ पुनः यथा—दोहा।

मिसरी माहैं मेल करि, माल बिकाना बंस।
यौं 'दादू' महँगा भया, पारब्रह्म मिलि हंस॥
—दादूदयाल।

यहाँ भी 'पारब्रह्म मिलि हंस' उपमेय-वाक्य एवं 'मिसरी माहैं

1 ऊपर से लाए हुए।

मेल करि, बंस' उपमान-वाक्य है। 'महिँगा भया' उपमेय का और '(मिसरी के भाव) माल विकाना' उपमान का भिन्न-भिन्न धर्म है। इन सबका बिंब-प्रतिबिंब-भाव से वाचक-शब्द 'यौं' द्वारा वर्णन हुआ है।

(२१) निदर्शना

जहाँ उपमेय-उपमान-वाक्यों के अर्थों में भिन्नता होते हुए भी एक में दूसरे का इस प्रकार से आरोप किया जाय, जिससे उनमें समानता जान पड़े, वहाँ 'निदर्शना' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ प्रथम निदर्शना

जिसमें उपमेय-उपमान-वाक्यों के समान अर्थों का अभेद आरोप हो (अर्थात् दोनों की एकता कही जाय)। ऐसा आरोप प्रायः 'जे' 'ते' 'जो' 'सो' आदि वाचक-शब्दों के द्वारा होता है। इसको 'वाक्यार्थ-वृत्ति' निदर्शना भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बरनत नायक-नायिका, हरि-राधा तजि आन।
सो कवि त्यागत कल्पतरु, थूहर गहत अजान॥

यहाँ "श्रीकृष्ण एवं राधिका को छोड़कर किसी अन्य नायक-नायिका का वर्णन किया जाना" उपमेय-वाक्य है, जिसमें

सो वाचक-शब्द द्वारा "कल्पवृक्ष को छोड़कर थूहर को ग्रहण करना" उपमान-वाक्य के समान अर्थ का अभेद आरोप हुआ है।

२ पुनः यथा—चौपाई।

जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत,आक फिरहिं पय लागी॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ भी "भक्ति को त्यागकर ज्ञान के लिये श्रम करना" उपमेय-वाक्य में "कामधेनु को छोड़कर आक को ढूँढ़ना" उपमान-वाक्य का जे, ते, वाचक द्वारा अभेद आरोप हुआ है।

३ पुनः यथा—सवैया।

दुर्लभ या नर-देह अमोलक पाइ अजान अकारथ खोवै।
सो मतिहीन बिबेक बिना नर साज मतंगहिं ईंधन ढोवै॥
कंचन-भाजन धूरि भरै सठ मूढ़ सुधारस सौं पग धोवै।
बोहित काग उड़ावन कारन डारि महा मनि मूरख रोवै॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ भी "दुर्लभ मनुष्य-देह पाकर उसे व्यर्थ गँवाना" उपमेय-वाक्य है, जिसमें 'सो' वाचक-शब्द द्वारा "हाथी पर ईंधन ढोना", "स्वर्ण-पात्र में धूलि भरना", "अमृत से पाँव धोना" और "जहाज पर से काग को उड़ाने के निमित्त मणि को फेंकना" उपमान-वाक्यों का अभेद आरोप हुआ है।

यह अलंकार वाचक-शब्दों के विना भी होता है;

किंतु ऐसे स्थल पर वाचक-शब्दों का समाहार[1] किया जाता है—

१ उदाहरण यथा—सवैया ।

भरिबो है समुद्र को संबुक[2] में, छिति को छिगुनी[3] पर धारिबो है ।
बँधिबो है मृनाल सौं मत्त करी, जुही-फूल सौं सैल बिदारिबो है ॥
गनिबो है सितारन को कवि 'संकर' रेनु सौं तैल निकारिबो है ।
कविता समुझाइबो मूढ़न कौं, सविता गहि भूमि पै डारिबो है ॥
—प० नाथूराम शंकर शर्मा ।

यहाँ 'मूर्खों को कविता समझाना' उपमेय-वाक्य है, जिसमें 'संबूक में समुद्र भरना' आदि सात उपमान-वाक्यों का बिना वाचक-शब्द के आरोप हुआ है ।

२ द्वितीय निदर्शना

जिसमें उपमेय के गुण का उपमान में अथवा उपमान के गुण का उपमेय में अभेद आरोप किया जाय । इसको 'पदार्थ-वृत्ति' निदर्शना भी कहते हैं । इसके दो भेद हैं—

(क) उपमेय के गुण का उपमान में आरोप ।

१ उदाहरण यथा—दोहा

मेघन, घन मेचक बरन, गाज-गजारि गँभीर ।
जग जीवन[4]-बितरन, दिए, अपने गुन रघुबीर ॥

---

१ अकथित शब्दार्थ बाहर से लाकर लगाया जाय। २ सीप । ३ कनिष्ठिका अँगुली । ४ प्राण तथा जल ।

यहाँ श्रीरघुनाथजी उपमेय के गहरे श्याम वर्ण, सिंह के समान गंभीर-नाद, एवं जगज्जीवन-दातृत्व, गुणों का मेघ उपमान में आरोप हुआ है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

प्यारी ! तेरे अंगन की उमगी सुबास सोई,
लागी हरिचंदन[1] मैं इंदिरा के घर[2] मैं।
मालती-लता-बन मैं सेवती गुलाबन मैं,
मृगमद घनसार अंबर अगर मैं॥
उझलि-उझलि छबि छाई पुनि छिति पर,
देखियत सोई मनि-मानिक-निकर मैं।
चंपक-बनी मैं औ चिराग की अनी मैं,
चारु चंद की कला मैं चपला मैं चामीकर[3] मैं॥

—अलंकार-आशय।

यहाँ भी नायिका के अंग उपमेय के सुवास गुण का हरि-चंदन आदि उपमानों में और देह-द्युति गुण का मणि आदि उप-मानों में आरोप हुआ है।

३ पुनः यथा—चौपाई।

जेहि दिन दसन-जोति निरमई। बहुतै जोति जोति ओहि भई॥
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
जहँ-जहँ बिहँसि सुभावहिं हँसी। तहँ-तहँ छिटकि जोति परगसी॥

—मलिक मुहम्मदजायसी।

यहाँ भी रानी पद्मावती की दंत-ज्योति उपमेय के प्रकाश गुण का सूर्य आदि उपमानों में आरोप किया गया है।

---

१ देववृक्ष। २ कमल। ३ सुवर्ण।

(ख) उपमान के गुण का उपमेय में आरोप ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

पारस की सुबरन-करन[1], बारिद-बरसन-बान ।
धनद-कोष की सरसता[2], राम-पानि पहिचान ॥

यहाँ पारस, वारिद और धनद-कोष उपमानों के क्रमशः सुवर्ण करने, बरसने और सरसता गुणों का श्रीरघुनाथजी के हाथ उपमेय में आरोप किया गया है ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

भारती को देखा नहीं कैसा है रमा का रूप ,
केवल कथाओं में ही सुने चले आते हैं ।
सीताजी का शील सत्य, वैभव शची का कहीं ,
किसी ने लखा ही नहीं ग्रंथ ही बताते हैं ॥
'दीन' दमयंती की सहन-शीलता की कथा ,
झूठी है कि सच्ची कौन जाने कवि गाते हैं ।
इंदूपुर-वासिनी प्रकाशिनी मल्हार-वंश ,
मातु श्रीअहल्या में सभी के गुण पाते हैं ॥
—लाला भगवानदीन ।

यहाँ भी अहल्या बाई उपमेय में भारती, रमा, सीता, शची और दमयंती उपमानों के गुणों का आरोप किया गया है ।

इस भेद की माला १ उदाहरण यथा—दोहा ।

सुजन सभागिन के बसै, बैननि सुधा-मिठास ।
कुसुम-झरन कल हास मैं, मुख मैं चंद-प्रकास ॥

---

१ स्पर्श द्वारा स्वर्ण करने की । २ कुबेर के खजाने का अक्षयत्व गुण ।

यहाँ वचन, हास एवं मुख उपमेयों में क्रमशः अमृत, पुष्प एवं चंद्रमा उपमानों के मिठास, झड़ने एवं प्रकाश गुणों का आरोप किया गया है; अतः माला है।

२ पुनः यथा—सवैया।

ब्याल,मृनाल सुडाल कराकृति, भावतेजू की भुजान मैं देख्यौ।
आरसी सारसी[1] सूर ससी दुति आनन-आनँदखान मैं देख्यौ॥
मैं मृग मीन मृनालन की छबि 'दास' उन्हीं अँखियान मैं देख्यौ।
जो रस ऊख मयूख पियूष मैं सो हरि की बतियान मैं देख्यौ॥
—भिखारीदास।

यहाँ भी प्रथम चरण में व्याल, मृणाल, डाल एवं सूँड़ उपमानों का आकृतिवाला गुण भुजा उपमेय में स्थापित हुआ है। इसी प्रकार शेष तीनों चरणों में भी हैं; अतः माला है।

३ तृतीय निदर्शना

जिसमें अपनी सत् या असत् (भली, बुरी) क्रिया से अन्य को सत् या असत् अर्थ (व्यवहार) की शिक्षा दी जाय।

१ उदाहरण यथा—छप्पय।

यद्यपि संत हु सहत कष्ट किहिँ कर्म-उदय तें।
तदपि होत उन्नत अवस्य पुनि तप-संचय तें॥
देखिय दुष्ट दिगंत-भूमि भोगत समस्त सुख।
किंतु होत संतान-प्रान-जुत अंत अस्त सुख॥
मुनि बालमीकि-नारद-चरित उक्तासय उत्तम कहत।
परिनाम-पाप, लंकेस अरु कंस-असुर-चरितन लहत॥

[1] कमलिनी।

यहाँ "संतों का किसी प्रकार कष्ट सहकर भी अंत में उन्नत हो जाना" और "दुष्टों का साम्राज्यादि सुख भोगकर भी अंत में बिलकुल नष्ट हो जाना" उपमेय-वाक्य हैं, जिनके सत् और असत् अर्थों की शिक्षा अन्यों को महर्षि वाल्मीकि एवं देवर्षि नारद के और रावण एवं कंस के चरित्रों (जो उपमान-वाक्य हैं) की क्रियाएँ देती हैं।

✓ २ पुनः यथा—दोहा।

तप-बल पद पावै अचल, खीन पुन्य गिरि जाइ।
उन्नत ह्वै ध्रुव कहत अरु, उडु गिरि रहे बताइ॥

यहाँ भी भक्त ध्रुव के उन्नत होने की क्रिया के द्वारा और अन्य तारागों के टूटकर गिर पड़ने की क्रिया के द्वारा क्रमशः तपोबल-से उच्च पद पाने रूप सदर्थ की और क्षीण-पुण्य से गिरने रूप असदर्थ की शिक्षा देना कहा गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

तजि आसा तन प्रान की, दीपहिं मिलत पतंग।
दरसावत सब नरन कों, परम प्रेम को ढंग॥
—भिखारीदास 'दास'।

यहाँ भी पतंग का [illegible] त्यागकर दीपक से मिलने की क्रिया के द्वारा शुद्ध प्रेम के सदर्थ की शिक्षा देना कहा गया है।

४ पुनः यथा—दोहा।

मधुप! त्रिभंगी हम तजी, प्रगट परम करि प्रीति।
प्रगट करत सब जगत मैं, कटु कुटिलन की रीति॥
—मतिराम।

यहाँ भी 'कुटिलों में कुटिलता होती है' इस असदर्थ की शिक्षा श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों को त्याग देने की क्रिया से दी गई है।

सूचना—'प्रतिवस्तूपमा' में उपमेय-उपमान दोनों वाक्य एक दूसरे से निरपेक्ष होते हैं; और इसमें उक्त दोनों वाक्य परस्पर सापेक्ष होते हैं। यही भिन्नता है।

(२२) व्यतिरेक

जहाँ उपमेय में (उपमान की अपेक्षा) उत्कर्ष वा उपमान में अपकर्ष दिखलाने के द्वारा उपमेय की उत्कृष्टता (विशेषता) का वर्णन हो, वहाँ 'व्यतिरेक' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम व्यतिरेक, उपमेय में उत्कर्ष का

१ उदाहरण यथा—सवैया।

अंग अनंग की जोति जगै तनु-संग न भृंग तजैं मधुहारी[१]।
पान-प्रमान चढ़ै मदिरा तव ध्यानहिँ बीर! महा मदकारी॥
मान-विमोचन भौंह-कमान बिलोचन-बान कटाछ-कटारी।
श्रीव्रजचंद-चितौन को चुंबक तो मुख, अंबुज-अंबकवारी[२]!॥

यहाँ द्वितीय चरण में मद्य उपमान से नायिका उपमेय में 'ध्यान मात्र' द्वारा अधिक मादकता होने का उत्कर्ष कहा गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

कीधौं मुख-कंज में मरालबाहिनी[३] की मंजु,
कोमल कमल-दल-तलप[४] रँगीली है।
कीधौं रस-राय-रस[५] जाँचिबे की जंत्रिका है,
कीधौं बेद बाँचिबे की बाँसुरी सुरीली है॥

---

१ मकरंद-लोभी। २ कमल-नयनी!। ३ शारदा। ४ शय्या। ५ रस = नव, राग = छः, रस = शृंगारादि नव रस और कटु आदि षट्रस।

कीधौं पटु प्रीतम छबीले छलिया की छल-
गाँठ खोलिबे की चारु चाबी चटकीली है।
रीझिहैं रसिक लाल देखि मेरी राधाजू की,
रसना रसाल[1] हू के रस तें रसीली है॥

यहाँ भी श्रीराधारानी की रसना उपमेय में आम्रफल उपमान के रस से भी अधिक रसीलापन बतलाया गया है।

२ द्वितीय व्यतिरेक, उपमान में अपकर्ष का

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

लागी है न लगन विरागी बड़भागिन के,
त्यौं न अनुरागिन के वाके सुमरन की।
दीखत दयालुता न पातकी दुखीन दीन,
देखिकै दुरित[2] दुख दारिद दरन को॥
स्याम-मन भाई चतुराई हू न आई वाहि,
पाई प्रभुताई ना कन्हाई के करन की।
ममता करै सो अरबिंद की अधमता है,
समता लहै ना रानी राधिका-चरन की॥

यहाँ श्रीवृषभानु-नंदिनी के 'चरण' उपमेय की अपेक्षा 'कमल' उपमान में 'लागी है न लगन' आदि अपकर्ष कहे गए हैं।

२ पुनः यथा—कवित्त।

देखि तनु-जोति बिज्जु लज्जित बिसेष होति,
कंपित सरीर दुरि-दुरिकै दिखायौ जाइ।
चंपक-कुसुम की सघन गंध, हाटक[3] हू,
निपट निगंध पटतर[4] क्यों बतायौ जाइ॥

---

१ आम। २ पाप। ३ सुवर्ण। ४ समता।

मेटत प्रकास ज्यौं उसास आरसी के लागि,
अंगराग जौ पै इन अंगन लगायौ जाइ।
चीर लपटायौ पै सवायो तनु तेज पायौ,
झीनी बदरी तें क्यौं छपाकर छिपायौ जाइ॥

यहाँ भी पूर्वार्द्ध में श्रीराधारानी की अंग-द्युति उपमेय से बिजली, चंपक-पुष्प एवं सुवर्ण उपमानों में क्रमशः लज्जित, उग्रगंध और निर्गंध होने का अपकर्ष बतलाया गया है।

३ पुनः यथा—चौपाई।

गिरा मुखर[1] तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही?॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ भी जगज्जननी जानकीजी उपमेय से गिरा, भवानी, रति एवं रमा उपमानों में मुखरता आदि का अपकर्ष कहा गया है।

४ पुनः यथा—कवित्त।

कोऊ बिगरी है तरी तीर मैं बनावन कों,
कोऊ सुधरी तो रही नाहक धरी-धरी।
कोऊ पधरी तो कछु दूर जाइ फेरि अरी,
कोऊ सरी संग-बस नीर मैं परी-परी॥
कोऊ पतरी सी बही फूल की छरी सी आप,
कोऊ ऊबि डूबि गई भार तें भरी-भरी।
श्रीयुत नरेस चंद्रसेखरजू! मेरे जान,
रावरी तरी के तौर और ना तरी तरी॥
—महामहोपाध्याय पं० देवीप्रसाद शुक्ल कवि-चक्रवर्ती।

१ वाचाल।

यहाँ भी राजा चंद्रशेखर की तरी (नाव) उपमेय की अपेक्षा अन्य तरियाँ उपमानों में 'बिगरी है' आदि वर्णन से अपकर्ष दिखलाया गया है।

उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—कवित्त।

तैने दिव्य-नारी[1] बर बसन बिहीन कीन्ही,
मैं हौं दिव्य-नारी[2] बर बसन बरन कौं।
तैने पय पान कीन्हौ, ताको पुनि प्रान लीन्हौ,
मैं हौं पय पान कीन्हौ ता हित मरन कौं॥
ससकत सेस सिटि[3], कसकत कंप किटि[4],
चसकत पान[5], लख! धसकि धरन[6] कौं।
तेरो अवतार भुव-भार कौं हरन कान्ह!
मेरो अवतार भुव भार सौं भरन कौं॥ ❀

—स्वामी गणेशपुरीजी (पद्मेश)।

यहाँ श्रीकृष्ण उपमान में अपकर्ष और कर्ण उपमेय में उत्कर्ष टिप्पणी के अनुसार वर्णित हुए हैं; अतः यह 'उभय पर्यवसायी' है।

---

१ गोपिकाएँ। २ अप्सरा। ३ थककर। ४ वाराह-अवतार। ५ हाथ। ६ पृथ्वी।

❀ कर्ण-वचन श्रीकृष्ण से—तुमने गोपियों को (उनका चीर हरण करके) वस्त्र विहीन किया, मैं उत्तम वस्त्रधारी अप्सराओं को बरने के लिये हूँ। तुमने जिसका पय पान किया, उसी पूतना का वध किया, मैंने जिसका अन्न-जल भक्षण किया है, उस दुर्योधन के हेतु मरने के लिये मैं उपस्थित हूँ। मेरे पराक्रम से धँसती हुई पृथ्वी को तुम शेष एवं वराह रूप से धारण करने में असमर्थ हो रहे हो। तुम्हारा अवतार भू-भार हरने को और मेरा अवतार पृथ्वी को भार से भरने के लिये है, अर्थात् मेरे बोझ से पृथ्वी पर भार है।

सूचना—यद्यपि किसी-किसी ग्रंथ में उपमेय की अपेक्षा उपमान की उत्कर्षता तथा उपमेय-उपमान-वाक्यों में किंचित् विलक्षणता के (न्यूनाधिक) वर्णन में भी 'व्यतिरेक' अलंकार माना है; और कहा है कि प्रस्तार भेद से इसके शतशः प्रकार हो सकते हैं; तथा 'अलंकार-आशय' में इसके ३२ प्रकार के लक्षण एवं उदाहरण लिखे हैं; तथापि इन्हें अनपेक्षित समझते हुए हमने इतना अधिक विस्तार न करके प्रायः ग्रंथों के अनुसार यहाँ मुख्य दो ही भेद लिखे हैं।

(२३) सहोक्ति

जहाँ सह, संग, साथ आदि शब्दों की सामर्थ्य से एक ही क्रिया-शब्द दो अर्थों का (एक का प्रधानता से और दूसरे का गौणता से) बोधक हो, वहाँ 'सहोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कुल कीरति गुन मान मति, महत रहत धन-साथ।
ज्ञान भक्ति तप त्याग उर, आवत सह-रघुनाथ॥

यहाँ दो सहोक्तियाँ हैं, पूर्वार्द्ध में 'रहत' क्रिया-शब्द 'साथ' शब्द की सामर्थ्य से धन एवं कुल दो अर्थों का बोधक हो गया है; और धन के साथ प्रधानता से तथा कुल आदि के साथ गौणता से उसका अन्वय हुआ है, इसी प्रकार उत्तरार्द्ध में 'आवत' क्रिया-शब्द 'सह' शब्द की सत्ता से दो अर्थों का सूचक हुआ है।

२ पुनः यथा—सवैया ।

रूप अनूप लख्यौ कितनो 'रघुनाथ' कहै ब्रज की बनिता को ।
पै नहिं ऐसो पस्यौ कोउ दीठि बन्यौ एहि भाँतिन तें सिर-पा को[1] ॥
और कहौं सो सुनौ चित दै एहि भाँतिन को निरख्यौ गुन वाको ।
जात दिगंतन लौं चलिकै मिलि साथ समीर के सौरभ जाको ॥

—रघुनाथ ।

यहाँ भी 'जात' क्रिया-शब्द 'साथ' शब्द की सामर्थ्य से समीर एवं सौरभ दो अर्थों का बोधक हो गया है; तथा समीर के साथ मुख्यता से और सौरभ के साथ गौणता से उसका अन्वय हुआ है।

३ पुनः यथा—सवैया ।

कूकत ही हिय हूक चलावति कोपि कसाइनि क्वैलिया काली ।
लोचन-नीर के संग वही ब्रज-बालनि के कुल-कानि की डाली ॥
देखहिं कौन उपाय किएँ रस-सागर नागर कौं दृग-पाली ।
जीवन-प्रान-अधार वही, वन बाँसुरी टेरत जो बनमाली ॥

—पं॰ किशोरीलाल गोस्वामी ।

यहाँ भी 'वही' क्रिया-शब्द 'संग' शब्द की सत्ता से 'लोचन-नीर' एवं 'कुल-कानि की डाली' दो अर्थों का बोधक हो गया है; और लोचन-नीर के साथ प्रधानता से तथा कुल-कानि की डाली के साथ गौणता से उसका अन्वय हुआ है ।

सहोक्ति माला १ उदाहरण यथा—सवैया ।

मुनिनाथ के गात [illegible]-साथहि वो सहसा सिव-चाप उठायौ ।
नर-नाथन के दृग-मंडल-साथहि जो अवनी-तल-ओर नमायौ ॥

---

१ सिर से पैर तक का ।

[illegible]हि त्यौं गुनि खैंचिकै जो छिन माहिँ चढ़ायौ
भृगुनाथ के गर्ब अखंडित साथ सो खंडितकै रघुनाथ गिरायौ ॥

—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार।

यहाँ प्रथम चरण में 'उठायौ' क्रिया-शब्द 'साथ' शब्द की सामर्थ्य से शिव-चाप तथा रोमांच दो अर्थों का बोधक हो गया है; और शिव-चाप के साथ प्रधानता से एवं 'रोमांच' के साथ गौणता से उसका अन्वय हुआ है। इसी प्रकार शेष तीनों चरणों में भी तीन सहोक्तियाँ हैं; अतः माला है।

सूचना—'सहोक्ति' अलंकार में 'सह' आदि शब्दों के साथ चमत्कारिक (मनोरंजक) अर्थ होना आवश्यक है, साधारण वर्णन में 'सह' आदि शब्द होते हुए भी यह अलंकार नहीं होता। जैसे—"नाइ मुनिहिँ सिर सहित-समाजा" में चमत्कार का अभाव है।

(२४) विनोक्ति

जहाँ कोई प्रस्तुत किसी वस्तु के बिना अशोभन अथवा किसी के बिना शोभन कहा जाय, वहाँ 'विनोक्ति' अलंकार होता है। इसका वाचक प्रायः 'बिना' शब्द होता है; किंतु कहीं 'हीन' 'रहित' 'न हो' आदि भी हो जाते हैं। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम विनोक्ति, अशोभन की

१ उदाहरण यथा—दोहा।

लसत न पिय-अनुराग बिन, तिय के सरस सिँगार।
बिदुषन के बैराग बिन, त्यौं बेदांत-बिचार ॥

यहाँ पति के प्रेम विना स्त्री के शृंगार की एवं वैराग्य के विना पंडितों के वेदांत-विचार (प्रस्तुतों) की अशोभनता कही गई है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

सुंदर सरीर होइ, महा रनधीर होइ,
बीर होइ भीम सो, भिरैया आठों जाम को।
गरुओ गुमान होइ, भलो सावधान होइ,
सान होइ साहिबी प्रताप-पुंज-धाम को॥
भनत 'अमान' जो पै मघवा महीप होइ,
दीप होइ वंस को, जनैया गुन-ग्राम को।
सर्व गुन-ज्ञाता होइ, जद्यपि विधाता होइ,
दाता जो न होइ तो हमारे कौन काम को॥

—अमान।

यहाँ भी कवि द्वारा किसी राजा में (सुंदर शरीर आदि अनेक गुण होते हुए भी) "दाता जो न होइ तो हमारे कौन काम को" यह अशोभनता 'न होइ' वाचक द्वारा बतलाई गई है।

विनोक्ति अशोभन की माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

गुन बिन धनु जैसे, गुरु बिन ज्ञान जैसे,
मान बिन दान जैसे, जल बिन सर है।
कंठ बिन गीत जैसे, हेत बिन प्रीति जैसे,
बेस्या रस-रीति जैसे, फूल बिन तर है॥
तार बिन जंत्र जैसे, स्याने बिन मंत्र जैसे,
नर बिन नारि जैसे, पूत बिन घर है।
'टोडर' सुकवि जैसे, मन मैं बिचारि देखौ,
धर्म बिन धन जैसे, पंखी बिन पर है॥

—राजा टोडरमल।

यहाँ 'गुन बिन धनु' आदि वाक्यों में अशोभनता की बहुत सी विनोक्तियाँ हैं; अतः माला है।

२ द्वितीय विनोक्ति, शोभन की

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बिन कज्जल कारे नयन, निरखि अधिक आनंद।
मुख मंजुल दूनो दिपत, बिन मंडन[1] जिमि चंद॥

यहाँ शोभन की दो विनोक्तियाँ हैं। कज्जल के बिना काले नेत्र अधिक आनंदकारी और मंडन के बिना मंजुल मुख चंद्रमा की तरह दूना देदीप्यमान बतलाया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

देखत दीपति दीप की, देत प्रान अरु देह।
राजत एक पतंग मैं, बिना कपट को नेह॥
—मतिराम।

यहाँ भी पतंग का दीपक-ज्योति में बिना कपट का (पवित्र) प्रेम रखना कहा गया है।

उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—दोहा।

लाज बिना राजत नहीं, कुल-तिय लोचन त्याग।
लाज बिना राजत सही, गनिका हरि-जन फाग॥

यहाँ लज्जा के बिना कुलांगना, नेत्र और दान शोभित न होने में अशोभन की एवं लज्जा के बिना वेश्या, भक्त और फाग शोभित होने में शोभन की विनोक्ति है।

---

१ आभूषण।

(२५) समासोक्ति

जहाँ प्रस्तुतार्थ[१] के वर्णन में समानार्थ-सूचक श्लिष्ट वा अश्लिष्ट (साधारण) विशेषण-शब्दों की सत्ता से किसी अप्रस्तुतार्थ[२] का बोध होता हो, वहाँ 'समासोक्ति' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम समासोक्ति, श्लिष्ट शब्दों की

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मुख पियूषमय सीत रुचि, ऋषि[३]-संभव सुचि देह।
पै ससि सेवत वारुनी, अति अनुचित गति एह॥

यहाँ चंद्रमा का वर्णन प्रस्तुतार्थ है, जिसमें मुख पीयूषमय, शीतल रुचि, ऋषि-संभव शुचि देह एवं वारुणी (पश्चिम दिशा और मदिरा) सेवत, इन समानार्थ-सूचक विशेषण-शब्दों की सत्ता से किसी मद्य-सेवी ब्राह्मण का अप्रस्तुतार्थ भी प्रकट होता है; और 'वारुणी सेवत' विशेषण श्लिष्ट होने के कारण यह श्लेष-मूला है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सालंकार सुबर्न-जुत, रस-निरभर गुन लीन।
भाव-निबंधित जयति जग, कवि-भारती नवीन॥

—जसवंत-जसोभूषण।

यहाँ भी कवि-भारती (वाणी) की स्तुति प्रस्तुतार्थ के

---

१ जिस अर्थ का वर्णन करना हो। २ जिस अर्थ का वर्णन न करना हो। ३. चंद्रमा-पक्ष में अत्रि ऋषि।

वर्णन में अलंकार (उपमादि चमत्कार एवं हारादि भूषण), सुवर्ण (सुंदर अक्षर एवं शरीर का रंग), रस (शृंगारादि एवं अनुराग), गुण (माधुर्यादि तथा शीलादि), भाव (स्थायी आदि एवं विचार) और नवीन (अपूर्व एवं नववयस्का) इन श्लिष्ट विशेषणों के सादृश्य से नायिका की प्रशंसावाला अप्रस्तुतार्थ भी प्रतीत होता है।

२ द्वितीय समासोक्ति, अश्लिष्ट शब्दों की

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

गोप मिलि खेलैं आजु चौपर अथाई माँझ,
पासे हार जीत होनहार होइ सो परैं।
एक ओर तेरह औ बारह इतेई रहैं,
एक ओर पच्चिस औ बाइस बन्यौ करैं॥
एक ओर एक ह्वै अनेकन तें एक ओर,
एक तें अनेक ह्वै बिसेष बढ़िबो करैं।
एक ओर सारैं बार-बार मरि जाम्यौ करैं,
एक ओर निडर निकेत पहुँच्यौ करैं।

यहाँ प्रस्तुत चौपर-खेल का वृत्तांत कहने में 'पासे हार जीत होइ सो पर' आदि साधारण और दोनों पक्षों में समानार्थ-वाची विशेषणों की सामर्थ्य से अप्रस्तुत जगज्जीवों का वृत्तांत भी जाना जाता है।

२ पुनः यथा—दोहा।

लोभ लग्यौ निसि-दिन भ्रम्यौ, बन उपबन बहु ठौर।
मिली मलिंदहिं मालती सरिस पै न अलि! और॥

यहाँ भी प्रस्तुत भ्रमर-वृत्तांत के वर्णन से नायक की लंपटता के उपालंभ रूप अप्रस्तुतार्थ का भी बोध होता है।

३ पुनः यथा—दोहा ।

तप्यौ आँच अब बिरह की, रह्यौ प्रेम-रस भीजि ।
नैननि के मग जल बहै, हियौ पसीजि-पसीजि ॥
—विहारी ।

यहाँ भी नायक के विरह-निवेदन प्रस्तुतार्थ में वियोगाग्नि एवं प्रेम-जल से पसीजकर नेत्रों द्वारा अश्रु-जल निकलने में अर्क निकलने की रीति के अप्रस्तुत वृत्तांत का भी बोध होता है ।

सूचना—पूर्वोक्त 'श्लेष' अलंकार में विशेष्य भिन्न-भिन्न होते हैं; और जितने अर्थ हों, वे सभी प्रस्तुत होते हैं । यहाँ प्रस्तुत से अप्रस्तुत की प्रतीति होती है । यही इन दोनों में अंतर है ।

विशेष सूचना—कविराजा मुरारिदान ने 'जसवंत-जसोभूषण' नामक ग्रंथ में 'समासोक्ति' पद में 'समास' शब्द का अर्थ 'संक्षेप' करके 'थोड़े से अधिक कहना' इसका लक्षण कहा है; और यह उदाहरण दिया है—

"छत-जुत करत जु पीन कुच, गहत जु सुंदर केस ।
हरत बसन बन भुवि खदिर, तुव अरि-तियन नरेस ! ॥"

प्रस्तुत खदिर (खैर)-वृक्ष का वृत्तांत कहने में अप्रस्तुत कामी-पुरुष की चेष्टाओं का भी बोध होना, थोड़े से अधिक कहने के उक्त लक्षण से इसको घटित किया है; और इसी आधार पर साक्षात् विष्णु-अवतार दिव्यदर्शी-भगवान् वेदव्यास आदि प्राचीन आचार्यों के (समानार्थ-सूचक) निम्नोक्त लक्षणों का खंडन किया है—

भगवान् वेदव्यास का मत—

"यत्रोक्ताद्गम्यतेऽन्योऽर्थस्तत्समानविशेषणः ।
सा समासोक्तिरुदिता संक्षेपार्थतया बुधैः ॥"

महाराज भोज का मत—

"यत्रोपमानादेवैतदुपमेयं प्रतीयते ।
अतिप्रसिद्धेस्तामाहुः समासोक्तिं मनीषिणः ॥"

आचार्य दंडी का मत—

"वस्तु किञ्चिदभिप्रेत्य तत्तुल्यस्यान्यवस्तुनः।
उक्तिः संक्षेपरूपत्वात्सा समासोक्तिरिष्यते॥"

मम्मटाचार्य का मत—

"परोक्तिर्भेदकैः[1] श्लिष्टैः समासोक्तिः।"

राजानक रुय्यक का मत—

"विशेषणानां साम्यादप्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्तिः।"

कविवर जयदेव का मत—

"समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत्।"

उन्होंने लिखा है—"समासोक्ति शब्द के नामार्थ स्वारस्य को नहीं जानते हुए उदाहरणों से भ्रम करके प्राचीनों ने प्रस्तुत से अप्रस्तुत की गम्यता में 'समासोक्ति' एवं अप्रस्तुत से प्रस्तुत गम्य होने में 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' मानकर प्रस्तुत से अप्रस्तुत की गम्यता में 'समासोक्ति' नाम को उपर्युक्त लक्षणों में घटाया है।" स्वयं कविराजाजी ने अप्रस्तुत से प्रस्तुत एवं प्रस्तुत से अप्रस्तुत दोनों की गम्यता में 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' अलंकार ही मानकर केवल संक्षेप से अधिक कहने को 'समासोक्ति' अलंकार का विषय मान लिया है। अस्तु।

हमारे विचार से आपने 'समासोक्ति' शब्द का जो आशय सूक्ष्म दृष्टि से समझकर लिखा है! वेदव्यास आदि प्राचीनों ने साधारणतः वही आशय समझकर उक्त लक्षण बनाए हैं; और अल्प से अधिक कहे जाने का ही अभिप्राय (आलंकारिक वा साहित्य-शैली के अनुसार) कहा है। 'एक अर्थ कहने में समान विशेषणों की सामर्थ्य से दो अर्थ सिद्ध हों" इसके अतिरिक्त अल्प से अधिक कहना और क्या हो सकता है?

स्वयं कविराजाजी का उक्त 'छत-जुत' उदाहरण एवं उसका मिलान भी प्रस्तुत से अप्रस्तुत गम्य होने का ही है; और ठीक प्राचीनों के लक्षण-

---

1 विशेषणों से।

नुसार है; तो भी आपने न जाने क्यों पूज्य-पाद प्राचीनों के उपयोगी लक्षणों का खंडन कर डाला है !

अब रहा आप का यह विचार—"यदि अप्रस्तुत से प्रस्तुत की अथवा प्रस्तुत से अप्रस्तुत की प्रतीति को 'समासोक्ति' मानेंगे, तो व्यंग्य-मात्र 'समासोक्ति' अलंकार हो जायगा।" यदि ऐसा हो तो अप्रस्तुत से प्रस्तुत की अथवा प्रस्तुत से अप्रस्तुत की प्रतीति में आपने जो 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' का ही स्वीकार किया है, क्या वह 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' अलंकार व्यंग्य-मात्र नहीं हो जायगा ? कदाचित् इससे अधिक यहाँ कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

---

(२६) परिकर

जहाँ विशेष्य[1] का वर्णन साभिप्राय[2] विशेषणों[3] से किया जाय, वहाँ 'परिकर' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—कवित्तार्द्ध।

स्याम-घन-अंक में चमंक चपला की चारु,
पंकज-प्रतीका रानी राधिका रही विराज।
देख्यौ बिसमय एक देस एक ही समय,
एक साथ पावस बसंत ऋतु आई आज॥*

यहाँ रानी राधिका विशेष्य है, जिसका पंकज-प्रतीक साभिप्राय विशेषण है, क्योंकि पंकज वसंत का अंग होता है।

---

१ व्यक्ति-विशेष जैसे—शारदा, संत, वृषभ, मयूर, कैलास, कदंब आदि। २ अन्य अभिप्राय-युक्त। ३ विशेष्य के गुण, स्वभाव, व्यवस्था आदि जैसे—बुद्धिदात्री, दयालु, दुर्बल, सुंदर, उज्ज्वल, सघन आदि। विशेषण प्रायः विशेष्य से पहले प्रयुक्त होता है, जैसे—बुद्धिदात्री शारदा आदि। ४ अवयव (अंग)। * पूरा पद्य 'विरोध' में देखिए।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

तदपि परम करुनामयि माता। प्रतिदिन जीवन उन्नति-दाता ॥

यहाँ भी माता (पार्वती) विशेष्य का 'करुणामयि' विशेषण जीवों की प्रतिदिन उन्नति करने के कारण साभिप्राय है।

३ पुनः यथा—दोहा ।

ससि-बदनी मोसौं कहत, सो यह साँची बात।
नैन नलिन ये रावरे, न्याय निरखि नै जात ॥
—बिहारी।

यहाँ भी 'धीरा नायिका' विशेष्य का 'ससि-बदनी' साभिप्राय विशेषण है, क्योंकि चंद्रमा के उदित होने पर कमलों का संकुचित होना प्रसिद्ध है।

(२७) परिकरांकुर

जहाँ विशेष्य का सभिप्रायता से वर्णन किया जाय, वहाँ 'परिकरांकुर' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मनहुँ कृष्ण ! खैंचत थके, जदपि आप जदुबीर !।
मो अघ भो बलबीर ! वह, द्रुपद-सुता को चीर ॥

यहाँ 'कृष्ण' विशेष्य है, जो 'आकर्षण करना' अर्थ होने के कारण 'साभिप्राय' है।

२ पुनः यथा—दोहा ।

विनय कान्ह की हठभरे, तब सठ ! करी न कान।
अब जरियत करियत कहा ?, मन ! मोहन सौं मान ॥

यहाँ भी कलहांतरिता नायिका के (अपने मन के प्रति) कथन में 'मोहन' शब्द विशेष्य है, जिसमें मोहने के अर्थ के कारण साभिप्रायता है।

३ पुनः यथा—दोहा।

कियौ सबै जग काम-बस, जीते जिते अजेइ।
कुसुमसरहिँ सर-धनुष कर, अगहन गहन न देइ॥

—विहारी।

यहाँ भी 'अगहन' शब्द का 'ग्रहण न करना' अर्थ है; इससे वह साभिप्राय विशेष्य है।

---

(२८) अर्थ-श्लेष

जहाँ शब्दों के अर्थ ऐसे शक्ति-संपन्न हों कि यदि अन्य प्रकरण से अवरोध[१] न हो तो वाक्य का एक ही अर्थ अनेक (एक से अधिक) पक्षों में घटित हो जाय, वहाँ 'अर्थ-श्लेष' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

पर मंदिर जाइ बुलाए बिना मृदु बात बनाइ रिझायौ करैं।
कविता कमनीयन की[२] पतियान पियूष-प्रबाह बहायौ करैं॥
गुन गौरवता अपनी न गनैं निगुनीन हु के गुन गायौ करैं।
परमारथ-स्वारथ साधत यौं सम साधु-असाधु लखायौ करैं॥

---

१ जैसे 'घन' शब्द बादल और मोथा (औषधि-विशेष) दो अर्थों का बोधक है, किंतु औषधि-पक्ष में बादल अर्थ का और वर्षा-ऋतु-पक्ष में मोथा अर्थ का अवरोध हो जाता है। २ मनोहर कविताओं की।

यहाँ साधु और असाधु का श्लेष है। यदि 'पर मंदिर' आदि के स्थान पर 'अन्य के गृह' आदि शब्द रख दिए जायँ, तो भी यथार्थ श्लेष बना ही रहेगा; अतः अर्थ-श्लेष है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सुखदा सिखदा अर्थदा, जसदा रस[1]-दातारि।
रामचंद्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु-नारि॥
—केशवदास।

यहाँ भी श्रीरामचंद्रजी की मुद्रिका एवं गुरु-नारि की 'सुखदा' आदि श्लिष्ट शब्दों से समता वर्णित है।

सूचना—(१) इस 'अर्थ-श्लेष' में शब्दों का एक ही अर्थ दो पक्षों में घटित होता है, जो उदाहरणों से स्पष्ट सूचित है, उन शब्दों के पर्याय रख देने से भी 'श्लेष' ज्यों का त्यों बना रहता है। पूर्वोक्त 'शब्द-श्लेष' में एक शब्द के दो अर्थ होते हैं; और उनके स्थान पर उनका पर्याय रखने से श्लिष्टता नहीं रहती। दोनों में यही अंतर है।

(२) इस 'अर्थ-श्लेष' के प्रायः उदाहरणों में 'संदेह' अलंकार का संयोग होता है। जैसे 'सुखदा सिखदा' वाले उदाहरण में है।

(२९) अप्रस्तुत-प्रशंसा

जहाँ अप्रस्तुतार्थ के वर्णन द्वारा प्रस्तुतार्थ सूचित किया जाय, वहाँ 'अप्रस्तुत-प्रशंसा[2]' अलंकार होता है। इसके पाँच भेद हैं—

---

१ आनंद। २ यहाँ 'प्रशंसा' शब्द से तात्पर्य 'वर्णन करना' है, न कि स्तुति।

१ कारण-निबंधना

जिसमें अप्रस्तुत कारण का वर्णन करके प्रस्तुत कार्य का बोध कराया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

आवत नित नियमित समय, बहु विधि देत असीस।
खाइ खरच निज गाँठ को, कवि कुस भयौ महीस! ॥

यहाँ मंत्री की उक्ति में किसी कवि का सत्कार कराना प्रस्तुत कार्य है, जिसका वर्णन न करके 'आवत नित' आदि अप्रस्तुत कारणों के वर्णन द्वारा राजा को उक्त कार्य का बोध कराया गया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

हे हरिजू! बिछुरें तुम्हरे नहिं धारि सकी सो कोऊ विधि धीरहिं।
आखिर प्रान तजे दुख सौं, न सँभारि सकी वा वियोग की पीरहिं॥
पै 'हरिचंद' महा कलकानि कहानी सुनाऊँ कहा बलबीरहिं।
जानि महागुन रूप की राखि न प्रान तज्यौ चहैं वाके सरीरहिं॥

—भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र।

यहाँ भी नायिका से नायक को मिलाना प्रस्तुत कार्य है, जिसका वर्णन न करके नायिका की वियोग-दशा रूपी अप्रस्तुत कारण के वर्णन द्वारा उस कार्य का बोध कराया गया है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

कोमलता कंज तें, सुगंध लै गुलाबन तें,
चंद तें प्रकास लीन्हौ उदित उजेरो है।
रूप रति-आनन तें, चातुरी सुजानन तें,
नीर नीरवानन[1] तें, कौतुक निबेरो है॥

---

१ आबदार वस्तुएँ जैसे मोती आदि।

'ठाकुर' कहत ये मासाला, बिधि कारीगर,
रचना निहारि क्यौं न होत चित चेरो है।
कंचन को रंग लै, सवाद लै सुधा को,
बसुधा को सुख लूटिकै बनायौ मुख तेरो है॥
—ठाकुर (प्राचीन)।

यहाँ भी श्रीराधिकाजी के मुख के सौंदर्य का वर्णन प्रस्तुत कार्य है, जो 'कोमलता कंज तें' आदि अनेक कारणों का वर्णन करके सूचित किया गया है।

४ पुनः यथा—दोहा।

'सम्मन' नैनन मैं गिरी, जिन नैनन की सैन।
फिर काढ़न कों चाहिए, वे ही तीखे नैन॥
—सम्मन।

यहाँ भी नायिका को नायक से मिलाना प्रस्तुत कार्य है, जिसका वर्णन न करके 'सम्मन नैनन मैं गिरी' आदि अप्रस्तुत कारण कहकर नायिका को (सखी द्वारा) उक्त कार्य सूचित किया गया है।

२ कार्य-निबंधना

जिसमें अप्रस्तुत कार्य का वर्णन करके प्रस्तुत कारण का बोध कराया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बरनाश्रम निज धरम-रत, कलह कलेस न लेस।
धन्य-धन्य यह देस जहँ, बरसत समय सुरेस॥

यहाँ 'धर्मात्मा राजा' प्रस्तुत कारण का 'बरनाश्रम निज धरम-रत' आदि अप्रस्तुत कार्यों के वर्णन द्वारा बोध कराया गया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

बासर कों निकसै जु भट्टू, रवि को रथ माँझ-अकास अरै री।
रैन इहै गति है 'रसखान' छपाकर आँगन तें न टरै री॥
आठौंहि जाम चल्यौई करैं, निसि भोर के त्रास उसास भरै री।
तेरो न जान कछू दिन रात, बिचारे बटोही की बाट परै री॥

—रसखान।

यहाँ भी नायिका का सौंदर्य प्रस्तुत कारण है, जो आकाश के मध्य में सूर्य और चंद्रमा के रथ रुक जाने के अप्रस्तुत कार्य के वर्णन द्वारा सूचित किया गया है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

न्हान समै 'दास' मेरे पाँयनि पर्यौ है सिंधु-
तट नर-रूप ह्वै निपट बेकरार मैं।
मैं कही तू को है? कह्यौ बूझति कृपा कै तो,
सहाय कछु करो ऐसे संकट अपार मैं॥
मैं हूँ बड़वानल बसायौ हरि ही को मेरी,
बिनती सुनाओ द्वारकेस-दरबार मैं।
ब्रज की अहीरिनी की अँसुवा-वलित आइ,
जमुना जरावै मोहि महानल-झार मैं॥

—भिखारीदास।

यहाँ भी किसी ब्रजांगना का श्रीकृष्ण-वियोग प्रस्तुत कारण है, जिसका वर्णन न करके उसके अश्रुपात-मिश्रित यमुनाजल द्वारा समुद्र में वाड़वाग्नि को जलाने का अप्रस्तुत कार्य वर्णित है।

यहाँ भी वीर पुरुषों के सामान्यार्थ का बोध कराने के लिये बाज पक्षी का अप्रस्तुत विशेष वृत्तांत कहा गया है।

४ सामान्य-निबंधना

जिसमें अप्रस्तुत सामान्य के वर्णन द्वारा प्रस्तुत विशेष का बोध कराया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

पछितैहैं कारज परे, पैहैं विषम विषाद।
हे नृप! गज को भार जे, देत गधे पर लाद॥

यहाँ अयोग्य अमात्य पर राज्य का कार्य-भार रख देनेवाला राजा प्रस्तुत विशेष है, जिसके संबंध में हाथी का भार गधे पर लादनेवाले मनुष्यों (अप्रस्तुत सामान्य) का वर्णन है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सीख न मानैं गुरुन की, अहितहि हित मन मानि।
सो पछनावैं, तासु फल, लखन! भए हित-हानि॥
—मतिराम।

यहाँ भी परकीया-खंडिता नायिका का नायक के प्रति उपालंभ प्रस्तुत विशेष है, जिसका 'सीख न मानैं' आदि अप्रस्तुत सामान्य के वर्णन द्वारा बोध कराया गया है।

५ सारूप्य-निबंधना

जिसमें समान अप्रस्तुत का वर्णन करके प्रस्तुत का बोध कराया जाय। इसीको 'अन्योक्ति' कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—सोरठा।

बिकसत बौर[1]-मिठास, निकसत नव पल्लव निदरि।
पिक! सतराय[2] पलास, धिक सत[3] सेवत मंदमति॥

यहाँ योग्य वस्तु का त्याग करके अयोग्य वस्तु का सेवन करनेवाले प्रस्तुत मनुष्य को बोधित करने के लिये उसके प्रति कुछ न कहकर उसीके समान अप्रस्तुत कोकिल के प्रति कहा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

उनमादक बाधक-बिनय, निंदामय सकलंक।
छुटत न लग्यौ महीप-मुँह, रे मदपात्र! असंक॥

यहाँ भी अप्रस्तुत मद्यपात्र के प्रति कहकर उसीके समान राजा के मुँह लगे हुए किसी प्रस्तुत चुगुलखोर को उपालंभ दिया गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

को छूट्यौ इहि जाल परि, मत कुरंग! अकुलाइ।
ज्यौं-ज्यौं सुरझि भज्यौ चहै, त्यौं-त्यौं उरझत जाइ॥
—बिहारी।

यहाँ भी अप्रस्तुत मृग के प्रति कहकर उसके तुल्य सांसारिक मनोरथों की पूर्ति करके विरक्त होने की इच्छा करनेवाले विचार-शून्य प्रस्तुत पुरुष को सूचित किया गया है।

४ पुनः यथा—दोहा।

हम तो तेरे फलन की, तब ही छोड़ी आस।
निकसत मुँह कारो कियौ, रे मतिमंद पलास!॥
—अज्ञात कवि।

---

१ आम्र-मंजरी। २ गर्व करके। ३ सौ बार धिक्कार है।

यहाँ भी अप्रस्तुत पलाश-वृक्ष को संबोधित करके उसीके सदृश प्रस्तुत कुपूत को बोधित किया गया है ।

५ पुनः यथा—कवित्त ।

पुहुमी सबीज करो बारिद ! तिहारी रीति ,
सबपै समान दीठि प्रभुता सुहात की ।
स्वाति-बूँद पाइ प्रेमी पालत कुटुंब सदा ,
ओर सों न प्रीति ऐसी रीति इहिं जात की ॥
'पर्सुराम' एरे घन ! बरस पपीहा काज ,
आइ जैहै पौन रैहै प्रभुता न हात की ।
कित जल जैहै कित उमँग बिलैहै कित ,
तू ही चलि जैहै कित जैहै उड़ि चातकी ॥
—परशुराम कहार ।

यहाँ भी किसी प्रस्तुत समृद्ध पुरुष को दान का उपदेश करना है, पर ऐसा न करके उसीके समान अप्रस्तुत मेघ के प्रति कहकर उक्त पुरुष को बोधित किया है ।

६ पुनः यथा—आर्य्या छंद ।

किंशुक ! मा वह गर्वं निज शिरसि भ्रमरोऽपवेशनेन ।
[illegible] मज्जति द्विरेफः
—अज्ञात कवि ।

यहाँ भी किसी मिथ्याभिमानी पुरुष का गर्व-परिहार प्रस्तुतार्थ है, उसकी जगह अप्रस्तुत पलाश-वृक्ष का वृत्तांत कहा गया है कि हे पलाश ! तू व्यर्थ ही अपने ऊपर भ्रमर के बैठने का गर्व करता है । यह तो मोगरा के वियोग में तेरे पुष्प को अग्नि समझकर उसमें जलने को गिरा है, न कि मकरंद के लोभ से ।

सूचना—(१) इस 'सारूप्य-निबंधना' (अन्योक्ति) में जो अप्रस्तुत वृत्तांत कहा जाता है, वह हमारे विचार से, यदि किसी के प्रति कहा जाय तो विशेष रमणीयता आ जाती है; इसलिए हमने सब उदाहरण इसी प्रकार के दिए हैं। इसके प्रमाण भी निम्नोक्त ग्रंथों में पाए जाते हैं। यथा—

विहारी-सतसई की टीका, लाल-चंद्रिका—

"अन्योकति जहँ और प्रति, कहै और की बात।"

अलंकार-आशय—

"अन्योकति अरु की कहैं, औरैं प्रतिहि सुजाति।"

अलंकार-मंजूषा—

"कहूँ सरिस सिर डारिकै, कहै सरिस सौं बात।"

(२) इस 'अन्योक्ति' में अप्रस्तुतार्थ के वर्णन द्वारा प्रस्तुतार्थ सूचित किया जाता है; और पूर्वोक्त 'समासोक्ति' अलंकार में इसके विपरीत प्रस्तुत के वर्णन से अप्रस्तुतार्थ का बोध कराया जाता है; अतः ये दोनों परस्पर विरोधी हैं। कुछ ग्रंथों में इनसे मिलता-जुलता 'प्रस्तुतांकुर' नामक अलंकार स्वतंत्र माना गया है; किंतु हमें उसमें चमत्कारिक पृथक्ता प्रतीत नहीं होती; इसलिए उसका उल्लेख नहीं किया गया।

(३०) पर्यायोक्ति

जहाँ 'पर्याय' शब्द के 'प्रकार' और 'व्याज' (मिस) इन दो अर्थों के आधार पर वर्णन हो, वहाँ 'पर्यायोक्ति' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम पर्यायोक्ति

जिसमें विवक्षितार्थ[1] का वर्णन सीधी रीति से न करके चमत्कारिक प्रकारांतर से किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बिन हरि-सुमरन हू समय, गनत नरायु मँझार।
नहिं जमराज-बिचार यह, प्रत्युत अत्याचार॥

यहाँ विवक्षितार्थ यह है—"परमात्मा के स्मरण के विना मनुष्य का जितना काल व्यतीत होता है, वह व्यर्थ है।" किंतु इस प्रकार सीधी रीति से यह बात न कहकर इस प्रकारांतर से कही गई है—"यमराज मनुष्यों की आयु में उस समय की भी गणना करता है, यह उसका विचार नहीं बल्कि अत्याचार है।"

२ पुनः यथा—दोहा।

चल्यौ चहत परदेस अब, प्रिय प्रानन के नाथ।
कछु ठहरौ लै जाइयौ, अँसुवा! असुवन[2] साथ॥

यहाँ भी प्रवत्स्यत्पतिका नायिका का—"पति के परदेश जाने से ये प्राण न रहेंगे" विवक्षितार्थ है, जो सरल रीति से न कहकर अश्रुपात के प्रति इस ढंग से कहती है—"तुम कुछ ठहरकर प्राणों को भी साथ लेते जाना।"

३ पुनः यथा—कवित्त।

भीम कौं द्यौ हौ बिष ता दिन बयौ हौ बीज,
[illegible] भएँ ताको अंकुर लखायौ है।
द्यूत-क्रीड़ा आदि बिसतार पाइ बड़ो भयौ,
द्रौपदी-हरन भएँ मंजरि सौं छायौ है॥

---

१ जिस बात का वर्णन करना हो। २ प्राणों को।

मत्स्य गाय घेरी जब पुष्प-फल-भार भर्‌यौ,
तैने ही कुमंत्र-जल सींचिकै बढ़ायौ है।
बिदुर के बचन-कुठार तैं न कर्‌यौ बृच्छ,
वाको फल पाकौ भूप! तेरी भेट आयौ है॥
—बारहठ स्वरूपदास साधु।

यहाँ भी संजय द्वारा राजा धृतराष्ट्र के प्रति दुर्योधन की मृत्यु विवक्षितार्थ का परम रमणीयता पूर्वक प्रकारांतर से वर्णन किया गया है।

४ पुनः यथा—सोरठा।

दीन जानि सब दीन, एक न दीनौ दुसह दुख।
सो अब हम कहँ दीन, कछु नहिं राख्यौ बीरबर!॥
—बादशाह अकबर।

यहाँ भी राजा बीरबल की मृत्यु का शोक प्रकाश करना कथितार्थ है, जो रमणीयता पूर्वक अन्य प्रकार से कहा गया है।

२ द्वितीय पर्यायोक्ति

जिसमें किसी रमणीय व्याज द्वारा अभीष्ट-साधन किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

पुनि-पुनि कर-लाघवनि हरि, गैंदनि रहे उछारि।
तिनहिं धरन लौं कर अधो, करि न सकहिं सब ग्वारि॥

यहाँ रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्ण महाराज का अत्यंत हस्त-लाघवता (फुर्ती) से बार-बार गेंदों को उछालने के छल से व्रजांगनाओं के उरस्थल निरीक्षण रूपी इष्ट-साधन वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सखियन ढिग हु रह्यौ न गो, कह्यौ पसारिय बाहु।
तनिक खिलावन लौं ललन !, लरिका घर लै जाहु॥

यहाँ भी नायिका ने सखियों के समक्ष श्रीकृष्णजी से परिरंभण रूप इष्ट इस छल से सिद्ध करना चाहा है कि आप भुजा पसारकर मेरी गोद से थोड़ी देर के लिये इस लड़के को घर ले जाइए।

३ पुनः यथा—दोहा।

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, भौंहनि हँसै, दैन कहै, नटि जाइ॥
—विहारी।

यहाँ भी मुरली छिपाकर श्रीराधिकाजी द्वारा अनेक चेष्टाओं के मिस से श्रीकृष्ण की बातों का रस लेने के इष्ट-साधन का वर्णन है।

सूचना—पूर्वोक्त 'कैतवापह्नुति' में उपमेय को छिपाने के लिये 'व्याज' आदि शब्दों द्वारा उपमान स्थापित किया जाता है; और 'द्वितीय पर्यायोक्ति' में किसी क्रिया रूपी छल से इष्ट-साधन किया जाता है तथा 'व्याज' आदि शब्दों का होना नियमित नहीं है। इनमें यही अंतर है।

---

(३१) व्याज-स्तुति

जहाँ निंदा के शब्दों में स्तुति या स्तुति के शब्दों में निंदा प्रकट हो, वहाँ 'व्याजस्तुति' अलंकार होता है।[१] इसके दो भेद हैं—

---

१ कई ग्रंथकारों ने इस अलंकार के 'व्याज-स्तुति एवं 'व्याज-निंदा' नामों से दो भिन्न-भिन्न अलंकार माने हैं।

१ प्रथम भेद (निंदा के शब्दों में स्तुति)।

१ उदाहरण यथा—कवित्त ।

मच्छ कच्छ कोल से मलीन जल-जंतु पसु,
पंचानन बामन की खीन मन भाई देह।
पाक-पात्र लागी साक-पत्ती नौंचि जूँठे फल,
खाए असँकोच छाल-कदली सने-सनेह ॥
दास भयौ छत्री तें बिलास ब्रज-बालन लौं,
रीझि रम्यौ जाइ वा कुजाति कुबजा के गेह।
चोरी बटपारी जारी छोरी छलकारी हू न,
औतख्यौ सगुन हौ, पै औगुन भख्यौ अछेह ॥

यहाँ श्रीकृष्ण के मच्छादि की मलीन देह धारण करने आदि निंदा के शब्दों में अवतार धारण करने आदि की स्तुति ही व्यंजित होती है।

२ पुनः यथा—दोहा ।

कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट, कहूँ मुकुट बनमाल ॥
—विहारी ।

यहाँ भी नायिका के नेत्रों की 'कहा लड़ैते दृग करे' आदि से निंदा करके वास्तव में उनसे नायक के मोहित हो जाने के रूप में उनकी प्रशंसा ही सूचित की गई है।

३ पुनः यथा—कवित्त ।

कबै आप गए थे बिसाहन बजार बीच,
कबै बौलि जुलहा बुनाए दरपट से।
नंदजी की कामरी न काहू बसुदेवजी की,
तीन हाथ पटुका लपेटे रहे कटि से ॥

'मोहन' भनत यामैं रावरी बड़ाई कहा,
राखि लीन्ही आनि-बानि ऐसे नटखट से।
गोपिन के लीन्हे तब चीर चोरि-चोरि अब,
जोरि-जोरि दैन लागे द्रौपदी के पट से॥
—मोहन।

यहाँ भी "कपड़े खरीदने आप कब गए थे?" आदि निंदा के वर्णन से वास्तव में द्रौपदी के चीर बढ़ाने के रूप में श्रीकृष्ण की प्रशंसा ही व्यक्त की गई है।

४ पुनः यथा—सवैया।

एक दिएँ जहँ कोटिक होत हैं सो कुरुखेत में जाइ अन्हाइय।
तीरथ-राज प्रयाग बड़े मन-वांछित के फल पाइ अघाइय॥
श्रीमथुरा बसि 'केसवदासजू' द्वै भुज तें भुज चार ह्वै जाइय।
कासीपुरी की कुरीति बुरी जहँ देह दिएँ पुनि देह न पाइय॥
—केशवदास (द्वितीय)।

यहाँ भी "कासीपुरी की कुरीति बुरी" आदि निंदा के शब्दों से मोक्ष प्रदान करने की बात कहकर उसकी स्तुति की गई है।

२ द्वितीय भेद (स्तुति के शब्दों में निंदा)

१ उदाहरण यथा—दोहा।

दृग-रंजन अंजन-अचल! सह-गज-गंजन-गाज।
धनि जहँ जल-जाचक जुरत, चातक-मोर-समाज॥

यहाँ शब्दार्थ से तो कज्जल-गिरि की श्लाघा प्रतीत होती है; किंतु वास्तव में बादल का आकार और लक्षण रखकर जल के लिये चातक-मयूरों को धोखा देने की बात से उसकी निंदा ही व्यंजित की गई है।

२ पुनः यथा—सवैया।

नाख्यौ न लक्खन की धनु-रेखैं, बिमान की बायु लौं बेग करी है।
गीध जटायु सौं जंग रच्यौ, फिरि जानि जरापन लाज धरी है॥
बालि के फंद सौं फाँदि बच्यौ,'लछिराम' कथा को कहै सिगरी है।
बीर को रावन! रावरे सो? बन मैं जिन राम की बाम हरी है॥
—लछिराम।

यहाँ भी रावण के प्रति अंगद की उक्ति में "नाख्यौ न लक्खन की धनु-रेखैं" आदि रावण की प्रशंसा के वाक्य हैं, किंतु वस्तुतः उनसे निंदा ही प्रकट होती है।

सूचना—कुछ ग्रंथों में इस 'व्याज-स्तुति' अलंकार के उक्त दो भेदों के अतिरिक्त "अन्य की निंदा से अन्य की निंदा", "अन्य की स्तुति से अन्य की स्तुति", "अन्य की निंदा से अन्य की स्तुति" और "अन्य की स्तुति से अन्य की निंदा" ये चार भेद और भी माने गए हैं; किंतु प्रायः अलंकार-ग्रंथों में ये भेद नहीं माने गए हैं; और हमें भी अनावश्यक प्रतीत होते हैं।

(३२) आक्षेप

जहाँ विवक्षित अर्थ का किसी प्रकार से निषेध सूचित हो, वहाँ 'आक्षेप' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ उक्ताक्षेप

जिसमें अपने कथितार्थ का उत्कर्ष-सूचक निषेध किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

तजिबे लौं खलता खलन, कह्यौ सुजन किहिँ खीज ।
पै पुनि कह्यौ कि फल कहा ?, ऊपर बोएँ बीज ॥

यहाँ किसी सज्जन ने दुष्टों के प्रति दुष्टता छोड़ने के लिये कहे हुए अर्थ का "फल कहा ? उपर बोएँ बीज" वाक्य द्वारा निषेध किया है, जिससे उनकी दुष्टता का उत्कर्ष सूचित होता है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

दै मृदु पाँयन जावक को रँग, नाह को चित्त रँगै रँग जातैं ।
अंजन दै करौ नैननि मैं सुखमा बढ़ि स्याम-सरोज-प्रभा तैं ॥
सोने के भूषन अंग रचौ, 'मतिराम' सबै बस कीबे की घातैं ।
यौं ही चलौ न ! सिंगार सुभावहिं मैं सखि ! भूलि कही सब बातैं ॥

—मतिराम ।

यहाँ भी पहले तीन चरणों में अनेक श्रृंगार करने का जो वर्णन है, उसका निषेध चतुर्थ चरण के द्वारा हुआ है, जिससे नायिका के सौंदर्य का उत्कर्ष सूचित किया गया है ।

३ पुनः यथा—मालिनी छंद ।

मधुकर ! मदिराक्षी[1] तू बता वो कहीं है ? ।
नयन-पथ उसे को ?; किंतु तूने नहीं है ॥
सुरभित उसका तू जो मुखोच्छ्वास पाता ।
फिर इस नलिनी में क्या कभी जी लगाता ? ॥

—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ।

यहाँ भी [illegible] राजा पुरूरवा ने किसी भ्रमर से पूछा

१ मतवाले नेत्रोंवाली ।

है—"तूने उर्वशी को देखा है?" जिसका निषेध "किंतु नहीं देखा" वाक्य से करके (उत्तरार्द्ध में) उत्कर्ष सूचित किया गया है।

४ पुनः यथा—दोहा।

'तुलसी' रेखा करम की, मेट न सकै राम।
मेटै तो अचरज नहीं, (पर) समुझि कियौ है काम॥
—तुलसीदास।

यहाँ भी "कर्म-रेखा को राम भी नहीं मिटा सकते" इस कथन का उत्तरार्द्ध-वाक्य से विशेषता-सूचक निषेध हुआ है।

२ निषेधाक्षेप

जिसमें विवक्षितार्थ का वास्तविक निषेध न हो, वरन् निषेध का आभास मात्र हो।[१]

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मधुर सुधा तिय-रूप तिहिँ, कत कवि कहत सलोन?।
पै इहिं निरखत ही लगत, विरह जरे उर लोन॥

यहाँ नायिका के "मधुर रूप का सलोना न होना" कथितार्थ है, जिसका उत्तरार्द्धगत वाक्य से निषेधाभास मात्र हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

संकट-जनम-बिनास कहि, सकै न समुचित कोइ।
पै रवि-ससि-उदयास्त-गति, लखि कछु अनुभव होइ॥

यहाँ भी "जन्म-मरण-समय के संकट का अनुभव अकथनीय है" कथितार्थ है, जिसका "उदयास्त-काल में सूर्य एवं

---

१ किसी-किसी ग्रंथ में इसका लक्षण यों भी लिखा है—"प्रथम निषेध की हुई बात को फिर स्थापित करे" किंतु दोनों का भाव एक ही ज्ञात होता है।

चंद्रमा की निष्प्रभता देखकर कुछ अनुभव हो सकता है" वाक्य से निषेध सा किया गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

हौं न कहत, तुम जानिहौ, लाल! बाल की बात।
अँसुवा-उड़गन परत हैं, होन चहै उतपात॥

—मतिराम।

यहाँ भी नायक के प्रति दूती का वचन है कि मैं नायिका की विरह-व्यथा नहीं कहती, पश्चात् इस कथितार्थ का वास्तविक निषेध न करके उत्तरार्द्धगत वाक्य द्वारा निषेध सा किया है।

३ व्यक्ताक्षेप

जिसमें अनिष्ट अर्थ की ऐसी विधि (आज्ञा) हो, जो निषेध के तात्पर्य से गर्भित हो। इसे 'अनुज्ञाक्षेप' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

पान-पीक की लीक दृग, डगमगात सब गात।
रमहु रमन! मन रमत जहँ, कत सकुचत बतरात?॥

यहाँ सपत्नी के स्थान पर अति-काल पर्यंत विलास करके आनेवाले पति के प्रति कहे हुए खंडिता नायिका के "रमहु रमन मन रमत जहँ" वाक्य में अनिष्ट अर्थ की जो आज्ञा (सम्मति) है, उसमें निषेध का तात्पर्य गर्भित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

कीबो काज सु कीजिए, कहा रहे बँधि लाज?।
जब मिलिहौं तब लैहुँगी, दरसन करि जल-नाज॥

—अलंकार-आशय।

यहाँ भी प्रथम चरण में प्रवत्स्यत्पतिका नायिका की पति के प्रति विदेश-गमन रूपी अनिष्टार्थ की विधि (आज्ञा) है; किंतु उत्तरार्द्ध उसके निषेध के तात्पर्य गर्भित है।

(३३) विरोध

जहाँ विरोधी पदार्थों का संसर्ग कहा जाय, वहाँ 'विरोध' अलंकार होता है। इसके जाति[१], गुण, क्रिया और द्रव्य[२] द्वारा दस भेद माने गए हैं—

---

१ जिस शब्द से एक ही प्रकार के बहुत से व्यक्तियों का बोध होता है, उसे जाति-वाचक-शब्द कहते हैं। जैसे—देव, मनुष्य, गाय, कोकिल, पहाड़, नदी, आम्र, पुस्तक इत्यादि।

२ जिस शब्द से किसी एक व्यक्ति का बोध होता है, उसे नाम कहते हैं; और जिस व्यक्ति का वह शब्द नाम होता है, उस व्यक्ति को द्रव्य कहते हैं। जैसे—'विष्णु' शब्द लीजिए, यह शब्द तो नाम है; परंतु जिस देवता का यह नाम है, वह देवता द्रव्य है। इसी प्रकार सूर्य, चंद्र, दिलीप, कामधेनु, हिमालय, भागीरथी आदि के संबंध में भी समझना चाहिए।

भाषा के कुछ अलंकार-ग्रंथों में ऐसे अवसर पर 'द्रव्य' शब्द से महर्षि कणाद कृत वैशेषिक-दर्शन में बतलाए हुए पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, मन और आत्मा इन नौ द्रव्यों का ग्रहण किया गया है; किंतु अलंकार-शास्त्र में वैशेषिक के ये द्रव्य गृहीत नहीं हो सकते। साधारणतः शब्दानुशासन (व्याकरण)-शास्त्र के अनुसार 'द्रव्य' का जो अर्थ होता है, वही साहित्य में ग्रहण किया जाना चाहिए; अतः हमने गुण और क्रिया के अतिरिक्त जाति और द्रव्य का भी वही अर्थ लिया है जो भगवान् पतंजलि के महाभाष्य में है।

१ जाति का जाति से विरोध

१ उदाहरण यथा—कवित्त ।

स्याम-घन-अंक में चमंक चपला की चारु,
पंकज-प्रतीक[1] रानी राधिका रही विराज ।
नाचत मयूर जल जाचत पपीहा पेखि,
गुंजन मलिंद कल कोकिल करै अवाज ॥
बरसत स्वेद-श्रम सीकर [illegible],
त्रिविध समीर असरीर को सज्यौ समाज ।
देख्यौ विसमय एक देस एक ही समय,
एक साथ पावस-वसंत-ऋतु आई आज ॥

यहाँ पावस-ऋतु और वसंत-ऋतु, इन दो विरोधी (भिन्न-भिन्न कालों में रहनेवाली) जातियों का एक साथ आना (संसर्ग) कहा गया है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

अपने दिन-रात हुए उनके, क्षण ही भर में छवि देख यहाँ ।
सुलगी अनुराग की आग वहाँ, जल से भरपूर तड़ाग जहाँ ॥
किससे कहिए अपनी सुधि को ?, मन है न यहाँ तन है न वहाँ ।
[illegible] पल भी, जब आँख लगी तब नींद कहाँ ॥
—कविवर पं० रामनरेश त्रिपाठी ।

यहाँ भी द्वितीय चरण में विरहिणी नायिका के जल (जाति)-पूरित-नेत्र-सरोवर में प्रेम की अग्नि (जाति) के अस्तित्व का वर्णन है, जिससे विरोधी जातियों का संसर्ग हुआ है ।

---

१ कमल के समान अंगोंवाली ।

माला १ उदाहरण यथा—छप्पय ।

सिंधु होइ जल-बिंदु, इंदु सम होइ दिवाकर ।
अनल कमल को फूल, तूल सम होइ धराधर[1] ॥
माहुर[2] मधुर समान, भूप भ्राता जिमि जानै ।
सत्रु होइ निज दास, लोक आज्ञा सब मानै ॥
अरु पाप होइ हरि-जाप सम, को दुराइ नहिं भू परै ।
आनंद-कंद, ब्रज-चंद जब, करुना-निधि किरपा करै ॥
—सेठ रामदयालु नेवटिया ।

यहाँ सिंधु और जल-बिंदु, अनल और कमल, तूल और धराधर तथा माहुर और मधुर-वस्तु, जातियाँ परस्पर विरोधी होने पर भी एकत्र बतलाई गई हैं । चार का वर्णन होने के कारण माला है ।

२ जाति का गुण से विरोध

१ उदाहरण यथा—सवैया ।

सीतल मंद समीर गुलाब को नीर उसीर[3] लगे तनु तावन ।
दाहक, चंदन चंपक हार चमेलिन के भए गारी से गावन[4] ॥
सोर डरावन मोरन के भए सावन के घन घोर भयावन ।
यौं सिगरे प्रतिकूल भए अनुकूल[5] गए जब तें मन-भावन ॥

यहाँ चंदन, चंपक एवं चमेली के हार जातियों का इनके विरोधी दाहक गुण से संसर्ग बतलाया गया है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

दरसावत थिर दामिनी, केलि-तरुन गति देत ।
तिल-प्रसून सुरभित करत, नूतन बिधि झखकेत[6] ॥
—भिखारीदास 'दास' ।

१ पहाड़ । २ विष । ३ खस । ४ गायन । ५ अनुकूल-नायक । ६ कामदेव ।

यहाँ भी दामिनी जाति का इसके विरोधी स्थिरता गुण के साथ संयोग कहा गया है।

३ जाति का क्रिया से विरोध

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अमर[1], अमर कीन्हे गरल, हर-गर पाइ अधार।
मिलि मधु सर्पिस[2] होत बिष, जोग-प्रभाव अपार॥

यहाँ गरल (विष) जाति का 'अमर करना' विरुद्ध क्रिया के साथ योग कहा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

किंतु संत-संगति तरनि[3], इतर सुकृत खद्योत।
होत हेम[4] पारस परसि, लोह तरत लगि पोत[5]॥

यहाँ भी लोह जाति का 'तरना' क्रिया से विरोध होने पर भी संयोग कहा गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

वह दो दिन की अवधि, यह, छिन सौ दिनन समान।
निसि दिन, ससि इन[6], कृष्ण बिन, सिसिर हु सोषत प्रान॥

यहाँ भी शिशिर-ऋतु जाति का 'शोषण' क्रिया से विरोध होने पर भी संसर्ग बतलाया गया है।

४ जाति का द्रव्य से विरोध।

१ उदाहरण यथा—सोरठा।

ब्रह्म-सदन समसान, भाग्यवान भिच्छुक जहाँ।
मरन महा कल्यान, बिनवौं तिहिँ वारानसिहिँ॥

---

१ देवताओं को। २ घृत। ३ सूर्य। ४ स्वर्ण। ५ नौका। ६ सूर्य।

यहाँ श्मशान जाति का ब्रह्म-लोक द्रव्य विरोधी पदार्थ से संसर्ग कहा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

अलि ! अद्भुत अरबिंद हरि,-बदन कदन-दुख-द्वंद।
चंद-मुखिनि-मधुपिनि पियौ, राका[1] जासु मरंद॥

यहाँ भी श्रीकृष्ण-मुख-अरबिंद जाति का (मकरंद पान करने में) गोपियों के मुख-चंद्र द्रव्य से विरोध होते हुए भी संयोग कहा गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

मेरु समूलहिँ तूल तृन, तृन तूलन गिरि थूल।
करमन ज्यौं करि देत ते, सुकवि रहौ अनुकूल॥

यहाँ भी तूल और तृण जातियों का मेरु द्रव्य से (हलके और भारी होने के कारण) विरोध है; तथापि इनका संसर्ग कहा गया है।

५ गुण का गुण से विरोध

१ उदाहरण यथा—वसंततिलका छंद।

श्रीराधिका-रमन-पाद-प्रसाद पायौ।
तो मैं मलीन-मति निर्मल-गीत गायौ॥
बर्नें जथा-मति तथापि ब्रजेस्वरी के।
सोपांग[2] अंग जन-रंजन श्रीहरी के॥

यहाँ मलिन और निर्मल विरोधी गुणों का संसर्ग कहा गया है।

---

१ पूर्णिमा की रात्रि। २ उपांगों-सहित।

२ पुनः यथा—दोहा।

प्रिया! फेरि कहि वैस ही, करि बिबि[1] लोचन लोल।
मोहिं निपट मीठी लगै, यह तेरी कटु बोल॥

—भिखारीदास 'दास'।

यहाँ भी मीठे और कटु विरोधी गुणों का संयोग कहा गया है।

३ पुनः यथा—सवैया।

प्यार-पगे पिय प्यारे सौं प्यारी! कहा इमि कीजत मान मरोर है।
है 'रतनाकर' पै निसि-बासर तो [illegible] कों तरसो रहै॥
है मन [illegible] पै तो पर, है घन स्याम पै तेरो तो मोर है।
है जग-नायक चेरो पै तेरो है, है ब्रज-चंद पै तेरो चकोर है॥

—बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर'।

यहाँ भी 'जग-नायक' और 'चेरो' (दास) गुण विरोधी होने पर भी इनका अस्तित्व एक ही व्यक्ति (श्रीकृष्ण) में कहा गया है।

६ गुण का क्रिया से विरोध

१ उदाहरण [illegible]।

मरन महा कल्यान, बिनवौं निहिं [illegible]। ❀

यहाँ कल्याण गुण का मरण क्रिया से विरोध होने पर भी इनका संयोग बतलाया गया है।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

[illegible] अकुसल अकारी। जड़ बिछिप्त मत्त व्यवहारी॥

---

१ दो। ❀ पूरा पद्य जाति और द्रव्य के 'विरोध' में देखिए।

यहाँ भी 'करत' क्रिया का उसके विरुद्ध 'अकारी' (न करने वाला) गुण से संसर्ग कहा गया है।

३ पुनः यथा—शेर। वर्ज़ (समस्या)।

"रंग लाया है दुपट्टा तेरा मैला होकर।"
गुरू गोरख का रहा जब से तू चेला होकर॥
ख़ाक[1] मल घूमा बियाबाँ[2] में अकेला होकर।
पालिया नूरेखुदा जिस्म घिनैला होकर॥
रंग लाया है दुपट्टा तेरा मैला होकर।❀

यहाँ भी 'घिनैला' गुण और 'नूरे खुदा (ब्रह्म-ज्योति) को प्राप्त कर लेना' क्रिया का विरोध होने पर भी संसर्ग है।

४ पुनः यथा—छप्पय।

मेरु मरुत-मति नहिंन, मेरु-मति मरुत न मानिय।
भानु हिमाकर भो न, हिमाकर भानु न जानिय॥
बारिध मरु[3] नहिं बनिय, मरु न बारिध-बिधि ठानिय।
गगन न भुव-सिर गनिय, भुव न सिर-गगन पिछानिय॥
इन बिच न इक्क इत की उतैं, कर न सक्यौ अकरन-करन।
कहि! करन-भरन नर-करन तें[4], मानै किहिं बिधि मोर मन?॥
—स्वामी गणेशपुरीजी (पद्मेश)।

यहाँ भी राजा धृतराष्ट्र के कथन में 'अकरन-करन' (न करने योग्य कार्य भी कर देनेवाला) गुण का 'कर न सक्यौ' क्रिया से विरोध होने पर भी संसर्ग हो गया है।

---

१ भस्म। २ निर्जन वन। ३ मारवाड़ देश। ४ अर्जुन के हाथों से।
❀ यहाँ विरक्त भर्तृहरि के प्रति कवि का कथन है।

७ गुण का द्रव्य से विरोध

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

श्रीपति श्री दैबो सुन्यौ, विप्र सुदामहिँ ढेर ।
जाचक भे लालच लगे, सुरतरु धनद सुमेर ॥

यहाँ 'याचक' गुण का सुरतरु, धनद और सुमेरु विरोधी द्रव्यों से संसर्ग वर्णित है ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

वेधा होत फूहर, कलपतरु थूहर,
परमहंस चूहर की होत परिपाटी को ।
भूपति अँधा होत, कामधेनु छैया होति,
होत हैं गयंद नित चेरो चित चाँटी को ॥
कहै कवि 'घासीराम' पुन्य किएँ पाप होत,
बैरी निज बाप होत, साँप होत साटी को ।
स्याल सम सेर होत निर्धन कुबेर होत,
दिनन के फेर तें सुमेर होत माटी को ॥

—घासीराम ।

यहाँ फूहड़ गुण और वेधा (ब्रह्मा) द्रव्य; तथा निर्धन गुण और कुबेर द्रव्य, परस्पर विरोधी पदार्थ हैं, जिनका संयोग कहा गया है । दो जगह यही चमत्कार है ।

८ क्रिया का क्रिया से विरोध

१ उदाहरण यथा—दोहा

बिनमत जे जन ते अवसि, उन्नत होत अपार ।
लहत मरुस्थल-कूप-जल, तारन की अनुहार ॥

यहाँ 'बिनमत' (नम्र होते हैं) और 'उन्नत होत' (ऊँचे होते हैं) विरोधी क्रियाएँ एक स्थल पर होने का वर्णन है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

अमल-चरित तुम बैरिन मलिन करौ,
साधु कहैं साधु पर-दार-प्रिय अति हौ।
एक थल थित पै बसत जग-जन-मध्य,
'केसौदास' द्विपद पै बहु-पद-गति हौ॥
भूषन सकल-जुत सीस धरे भूमि-भार,
भूतल फिरत यौं अभूत भुव-पति हौ॥
राखौ गाय ब्राह्मननि राज-सिंह साथ, चिरु
रामचंद्र! राज करौ अद्‌भुत गति हौ॥

—केशवदास।

यहाँ भी एक स्थल पर स्थित रहना और संसार-भर के मनुष्यों में वास करना, इन विरोधी क्रियाओं का संयोग हुआ है।

६ क्रिया का द्रव्य से विरोध

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सुनि नारायन-नाम को, निज दूतन तें हाल।
धूजि पर्‌यौ जम-लोक, डरि, कंपन लाग्यौ काल॥

यहाँ 'डरि कंपन लाग्यौ (भय से काँपने लगा)' क्रिया का 'काल' द्रव्य से विरोध होने पर भी संयोग कहा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

करहिँ भजन-पूजन सदा, करहिँ न फल की आस।
तिन हरि-जन-घर चंचला, करहिँ निरंतर बास॥

—शिवकुमार 'कुमार'।

यहाँ भी 'निरंतर वास करना' क्रिया और चंचला (लक्ष्मी) द्रव्य इन विरोधी पदार्थों का संसर्ग कहा गया है।

१० द्रव्य का द्रव्य से विरोध

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अति उदार नर-नारि जहँ, बहु जन धनिक धनेस।
मालव भा इहिँ काल तू, धन्य-धन्य मरु देस!॥

यहाँ मरुस्थल एवं मालव देश द्रव्या का (कृषि-उपज-संबंधी) विरोध होने पर भी इनका संयोग कहा गया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

दच्छिन-नायक[1] एक तुही भुव-भामिनि कौं अनुकूल[2] ह्वै भावै।
दीन-दयाल न तो सो दुनी अरु म्लेच्छ के दीनहिँ[3] मारि मिटावै॥
श्रीसिवराज! भनै कवि 'भूषन' तेरे सरूपहिँ कोउ न पावै।
सूर के बंस मैं सूर-सिरोमनि ह्वैकरि तू कुल-चंद कहावै॥

—भूषण।

यहाँ भी सूर्य और चंद्र विरोधी द्रव्यों का एक छत्रपति शिवाजी में एक साथ स्थित होने का वर्णन किया गया है।

सूचना—ऊपर 'विरोध' के जो उदाहरण दिए गए हैं, उनमेंसे कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जिनमें तत्संबंधी उल्लिखित एक 'विरोध' के अतिरिक्त अन्य प्रकार के 'विराध' भी पाए जाते हैं; किंतु हमने मिलान में उसी विरोध की व्याख्या की है जिस भेद में वह दिया गया है; विस्तार-भय से अन्यान्य विरोधों की चर्चा वहाँ नहीं की गई है।

---

१ दक्षिण-देश के राजा और नायक का एक भेद। २ नायक-विशेष। ३ मजहब को।

(३४) विभावना

जहाँ कारण और कार्य के संबंध का किसी विचित्रता से वर्णन हो, वहाँ 'विभावना' अलंकार होता है। इसके ६ भेद हैं—

१ प्रथम विभावना

जिसमें कारण के अभाव में भी कार्योत्पत्ति हो।

१ उदाहरण यथा—चौपाई।

मन हु न फुरे बचन हु न जाचे। तेउ सुख दीन्ह अकारन राचे॥
तुमतें उऋन होउँ किहिं करमन। ज्ञान न भक्ति न ध्यान न धरम न॥

यहाँ पूर्वार्द्ध में अपने इष्ट श्रीशंकरजी से ग्रंथकर्त्ता के मानसिक स्फुरणा होने एवं याचना रूप कारणों के अभाव में भी सुख-प्राप्ति रूप कार्य होने का वर्णन है।

२ पुनः यथा—दोहा।

साहि-तनै सिवराज की, सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै, अनखीझे अरि-सैन॥
—भूषण।

यहाँ भी छत्रपति शिवाजी के रीझने एवं खीझने कारणों के विना ही दारिद्र्य-हरण एवं शत्रु-सेना का संहार रूपी कार्य उत्पन्न हुए हैं।

२ द्वितीय विभावना

जिसमें कारण की अपूर्णता में भी कार्योत्पत्ति हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

स्वल्प हि पढ़ि पटु संस्कृत, भए देस-विख्यात[1] ।
हौं तिनको कछु पठित ह्व, भाषा विरचि सिहात ॥

यहाँ 'स्वल्प हि पढ़ि' अपूर्ण कारण से संस्कृत में निपुण होने की कार्योत्पत्ति हुई है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

चातक संवत मैं इक बूँद पिवै तिहिं आश्रित प्रान रहै ।
देखत चंद की ओर चकोर रहै मिलिबे हु की आस गहै ॥
प्रान-बिथा न बनै चकवान कों द्यौस सँयोग सदा ही लहै ।
है न निमित्त हु मित्त! इतो दुख चित्त कहाँ किहिं भाँति सहै ॥

यहाँ भी स्वाति की एक बूँद पान करने मात्र कारण से चातक का एक वर्ष पर्यंत प्राण धारण किए रहना कार्य हुआ है ।

३ पुनः यथा—छप्पै ।

समुद-सिखर गढ़ परनि राउ दिल्ली-दिस चल्लिव[2] ।
बादिस्साह[3] सुनि खबरि धाइ बीच हि रन झिल्लिव ॥
सकल सिमिटि सामंत 'चंद' कैमाँस[4] बुद्धिबर ।
लहेउ जुद्ध चौहान गह्यौ पृथिराज साह-कर ॥
रजपूत टूटि पच्चास रन लूटि जबर सैना घनिय ।
पट्ठान सात हज्जार पर जीति चल्यौ संभरि[5]-धनिय ॥

—चंद बरदाई ।

यहाँ भी केवल पचास राजपूतों रूपी अपूर्ण कारण से सात हजार पठानों को जीतने का कार्य हुआ है ।

१ ग्रंथकर्त्ता के ज्येष्ठ पितृव्य एवं पिता । २ 'समुद-शिखर' नामक राजधानी से पद्मावती को लेकर दिल्ली लौटते समय । ३ बादशाह शहाबुद्दीन गोरी । ४ सामंत-विशेष । ५ पृथ्वीराज की राजधानी ।

३ तृतीय विभावना

जिसमें प्रतिबंधक[1] के होते हुए भी कार्योत्पत्ति हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

माई मन माहिँ ना दुराई हू उझलि आई,
कीधौं प्रान-प्रीतम की प्रीति पटु प्यारी के।
बिजय-पताका कै बिचित्र रंग राची रुंग,
जंग जग-जीत लौं अनंग-असवारी के॥
लाज की कनात कीधौं काया छिति-जात[2] की है,
कीधौं कोउ माया मन-मोहिनी मुरारी के।
कंचन-किनारी मृगमद की महकवारी,
कीधौं इकतारी सीस सारी सुकुमारी के॥

यहाँ प्रथम चरण में 'नायिका द्वारा छिपाए जाने' का प्रतिबंध होते हुए भी 'पति-प्रेम प्रकट हो जाना' कार्य हुआ है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

पाँय परि सौंहैं खाइ क्यौं हूँ रुख पाइ जाइ,
लालहिँ लवाइ लाई सादर दरीची मैं।
गंधक औ लोह पाइ पारद औ चुंबक लौं,
भेटे बिरहाधि-ब्याधि-कादर दरीची मैं॥
राजत सनेह-सुख-साने दोउ ताने स्याम[3],
चौलर चहूँघाँ चारु चादर दरीची मैं।
तो भी चहुँ ओर ताके छहरैं छटा के छोर,
थिरकि रही है[4] बिज्जु बादर-दरीची मैं॥

---

१ रोकनेवाला। २ मंगल। ३ नीले रंग की। ४ चमक रही है।

यहाँ भी उतरार्द्ध में नायिका के चारों तरफ 'चौलर चादर' का प्रतिबंध होते हुए भी उनकी अंग-द्युति के प्रकाश फैलने का कार्य हुआ है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

वह तो कदापि कहीं आता ओर जाता नहीं,
किंतु चुपके से चित्त सबका चुराता है।
ज्यों रवि निशा में त्यों ही रहता छिपा है सदा,
तो भी निज ज्योति सब कहीं दिखलाता है॥
उसका अनूप रूप दृग देख पाते नहीं,
पर वह लोचनों में आप ही समाता है।
उसका विचित्र चित्र कोई खींच पाता नहीं,
किंतु वह उर में स्वयं ही खिंच जाता है॥
—ठाकुर गोपालशरणसिंह।

यहाँ भी द्वितीय चरण में परमात्मा के छिपे रहने रूपी प्रतिबंध के होते हुए भी उसकी ज्योति सर्वत्र प्रकाशित होने की कार्योत्पत्ति हुई है।

४ चतुर्थ विभावना

जिसमें कारणांतर से (जिस कार्य का जो कारण हो, उसके विना किसी अन्य कारण से) कार्योत्पत्ति हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

यह अचरज आँखिन लख्यौ, सखि! न साँच कौ आँच।
निकसी नीरज-नाल[1] तें, चंपक-कलिका[2] पाँच॥

१ भुजा। २ अँगुली।

यहाँ कमल-नाल (कारणांतर) से चंपक-कलियों (कार्य) का उत्पन्न होना कहा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

हँसत बाल के बदन मैं, यौं छबि कछू अतूल।
फूली चंपक-बेलि तें, झरत चमेली-फूल॥
—मतिराम।

यहाँ भी चंपक-बेलि कारणांतर से चमेली के फूल झड़ने का कार्य हुआ है

५ पंचम विभावना

जिसमें विलोम (विपरीत) कारण से कार्योत्पत्ति हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बदन-सुधाधर श्रवत तव, सबिष बिसिख से बैन।
कढ़त कमल-दल-जीह तें, बचन कठैठे ऐन॥

यहाँ नायिका के मुख-सुधाधर और जिह्वा-कमल-दल रूपी विरुद्ध कारणों से विषैले बाण एवं कठोर वचन कार्यों का उत्पन्न होना वर्णित है। दो होने से माला है।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

पान कीन्ह बिष बिषम असेषा। किंतु कंठ-श्री भई बिशेषा॥

यहाँ भी श्रीमहादेवजी के विष पान करने के विपरीत कारण से कंठ-श्री (शोभा) होना कार्य हुआ है।

३ पुनः यथा—सवैया।

सावन आवन हेरि सखी! मन-भावन आवन चोप बिसेखी।
छाए कहूँ 'घनआनँद' जान सँभार की ठौर लै भूलनि लेखी॥

बूँदें लगैं सब अंग उदै उलटी गति आपने पापनि पेखी।
पौन सौं जागत आगि सुनी हो पै पानी सौं लागत आजु मैं देखी॥
—घनआनंद।

यहाँ भी वर्षा के पानी रूपी विरुद्ध कारण द्वारा अग्नि सुलगने का कार्य हुआ है।

६ षष्ठ विभावना

जिसमें कार्य से कारण की उत्पत्ति हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अनि अद्भुत अंबुज[1]-वदनि! कंठ-कंबु को अंग[2]।
स्वर-अंबुधि[3] लहरात नभ,-मंडल राग-तरंग॥

यद्यपि शंख कार्य की उत्पत्ति समुद्र कारण से होना प्रसिद्ध है, तो भी यहाँ इसके विपरीत शंख कार्य से समुद्र कारण की उत्पत्ति कही गई है।

२ पुनः यथा—सवैया।

जाननि ही न बसंत को आगम बैठी ही ध्यान धरैं निज पी को।
एते मैं कानन-ओर सों आइकै कानन मैं पर्‍यौ बोल पिकी को॥
हे 'रघुनाथ' कहा कहिए कहि आयौ 'हा' आयौ गरो भरि ती को।
लोचन-वारिज सौं अँसुवा को अथाह बह्यौ परवाह नदी को॥
—रघुनाथ।

यहाँ भी प्रोषित-पतिका नायिका के नेत्र-कमल कार्य से अश्रु-जल-नदी-प्रवाह कारण का उत्पन्न होना वर्णित है।

---

१ कमल। २ कंठ रूपी शंख से उत्पन्न। ३ समुद्र।

३ पुनः यथा—दोहा।

चतुराई तेरी अरी!, मोपै कहत बनै न।
निकसत मुख-ससि सौं बचन, रस-सागर सुखदैन॥
—राजा रामसिंह (नरवलगढ़)।

यहाँ भी चंद्रमा कार्य से समुद्र कारण की उत्पत्ति कही गई है।

सूचना—इस 'विभावना' अलंकार से पूर्वोक्त 'विरोध' अलंकार मिलता-जुलता है; किंतु भेद यह है कि 'विरोध' में विरोधी पदार्थों का संसर्ग कहा जाता है एवं कारण-कार्य के संबंध का नियम नहीं होता; और यहाँ कारणकार्य नियमित होते हैं।

(३५) विशेषोक्ति

जहाँ पूर्ण कारण के होने पर भी कार्य का अभाव वर्णित हो, वहाँ 'विशेषोक्ति' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ उक्तनिमित्ता

जिसमें कार्य के अभाव का निमित्त कहा जाय।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

एक हि चक्र[1] अचक्र[2] किए सुर-सत्रुन चक्रत सक्र के चेरे।
तैं दुइ तैसे हि पाइ सुदर्सन न्याय किए बस मोहन मेरे॥
घेरे रहैं घघरा हु के घेरन नेरे रहे हु न पावत हेरे।
काम के तंबु कि तुंबुरु[3] ही के तँबूरे नितंब नितंबिनि! तेरे॥

यहाँ नायक का नायिका के नितंबो के निकट रहना कारण है; और इस कारण के होते हुए भी नितंबों के दिखाई पड़ने के

१ सुदर्शन। २ सैन्य-रहित। ३ गंधर्वराज तुंबुरू।

कार्य का अभाव है। इसका निमित्त "घेरे रहैं घघरा हु के घेरन" कहा गया है, इससे 'उक्तनिमित्ता' है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

सिखै हारी सखी डरपाइ हारी कादंबिनी,[1]
दामिनी दिखाइ हारी दिसि अधरात की।
झुकि-झुकि हारी रति मारि-मारि हार्‌यौ मार,
हारी झकझोरति त्रिविध गति बात की॥
दई! निरदई दई वाहि ऐसी काहे मति,
जारत जो रात-दिन दाह ऐसे गात की।
कैसे हू न मानै हो मनाइ हारे 'केसौराय',
बोलि हारी कोकिला बुलाइ हारी चातकी॥
—केशवदास।

यहाँ भी नायिका के मान मोचन के 'सिखै हारी सखी' आदि अनेक कारण होते हुए भी मान-मोचन कार्य न होने का निमित्त "दई! निरदई दई वाहि ऐसी काहे मति" कहा गया है।

३ पुनः यथा—सवैया।

बारिध तात हुतो विधि सो सुत आदित-सोम सहोदर दोऊ।
रंभ रमा भगिनी जिनके मघवा मधुसूदन से बहनोऊ॥
तुच्छ तुषार पै जल-भार हतो परिवार सहाय न सोऊ।
टूटि सरोज गिरे जल मैं सुख-संपति मैं सबके सब कोऊ॥
—अज्ञात कवि।

यहाँ भी कमल के समुद्र आदि अनेक संबंधी कारण हैं; इनके होते हुए भी उसकी तुषार-जन्य विपत्ति में सहाय रूपी कार्य न होने का निमित्त "सुख-संपति मैं सबके सब कोऊ" कहा गया है।

---

१ मेघमाला।

४ पुनः यथा—पद।

जो कोउ बृंदाबन-रस चाखै।
भुवन चतुरदस-तीनलोक-सुख सपने हु न अभिलाखै॥
जुगल-रूप बिन पलक न खोलै, लोभ दिखावौ लाखै।
'ललित किसोरी' परे कुंज मैं स्याम-राधिका भाखै॥
—साह कुंदनलालजी (ललित किशोरी)।

यहाँ भी लाखों लोभ दिखाना कारण है; उस कारण के होते हुए भी पलक खोलने के कार्य का अभाव है; और इसका निमित्त "युगल-रूप का दर्शन न होना" कहा गया है।

२ अनुक्तनिमित्ता

जिसमें कार्य के अभाव का निमित्त न कहा जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

तीन उपाय किए तदपि, छुट्यौ न छिनक कुसंग।
सखि! सुर-साधन मात्र तें, सब्द न देत मृदंग॥

यहाँ प्रौढ़ा-अधीरा नायिका की सखी से उक्ति है कि साम, दान एवं भेद तीन उपाय करने पर भी नायक ने कुसंग नहीं छोड़ा, इस प्रकार कारण के होते हुए भी कार्य का अभाव, विना किसी निमित्त के, बतलाया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

बसै न सर, बिकसै निरखि, मन-मोहन-मुख-चंद।
रवि लखि हँसै न कंज यह, राधा-मुख सुख-कंद॥

यहाँ भी सूर्य कारण के होते हुए कमल के विकसित होने के कार्य का न होना, किसी निमित्त के विना कहा गया है।

३ पुनः यथा—दोहा ।

नेम धरम आचार तप, ज्ञान जज्ञ जप दान ।
भेषज पुनि कोटिक, नहीं, रोग जाहिं हरि-जान ! ॥

—रामचरित-मानस ।

यहाँ भी नियम, धर्मादि अनेक औषधियों रूपी कारणों के होते हुए मानस-रोग-निवृत्ति कार्य का न होना, किसी निमित्त के विना कहा गया है ।

४ पुनः यथा—दोहा ।

सोवत जागत स्वप्न-वस, रस रिस चैन कुचैन ।
सुरत स्याम-घन की, सुरत, विसरे हू विसरै न ॥

—विहारी ।

यहाँ भी प्रोषित-पतिका नायिका के (वियोग-व्यथा से) स्मृति-शून्य (बेहोश) हो जाने पर भी श्रीघनश्याम की सूरत भूलने के कार्य का अभाव किसी निमित्त के विना वर्णित है ।

३ अचिंत्यनिमित्ता

जिसमें कार्य के अभाव का निमित्त अचिंत्य[1] हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

उर तन मन दाहन जदपि, मान निदाघ[2] मनोज ।
तउ तनकउ तिय तरुनि के, तपत न अहो ! उरोज ॥

यहाँ मानवती नायिका के उर, तन एवं मन तप्त होने के रूप में समुचित कारण विद्यमान है, तथापि कुच तप्त होने के कार्य का अभाव है; और 'अहो' शब्द आश्चर्य-वाची है; इससे यह 'अचिंत्यनिमित्ता' है ।

---

१ समझ में न आनेवाला । २ ग्रीष्म ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

कृस तन पर घन करत बिष,[1]-सीकर-सर-संपात ।
तउ तजि गात न जात जिय, अचरज उर न समात ॥

यहाँ भी विरहिणी नायिका के कृश शरीर पर बादल द्वारा विष-शीकर (जल-बूँद) रूपी बाणों का आघात कारण है, जिसके होते हुए भी प्राणांत कार्य के अभाव का निमित्त 'अचरज उर न समात' वाक्य से अचिंत्य रूप में वर्णित हुआ है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

प्यौ राख्यौ परदेस तें, अति अद्‌भुत दरसाइ ।
कनक-कलस पानिप[2] भरे, सगुन[3] उरोज दिखाइ ॥
—मतिराम ।

यहाँ भी भाव यह है—"प्रवत्स्यत्पतिका नायिका ने अपने (पानिप से परिपूर्ण) कनक-कलश रूपी उरोजों का शुभ शकुन दिखाकर पति को विदेश जाने से रोक लिया" यही अद्भुत (अचिंत्य) निमित्त है; और उक्त शुभ शकुन रूपी कारण के होते हुए भी विदेश-गमन का कार्य नहीं हुआ, यही 'विशेषोक्ति' है ।

सूचना—यह 'विशेषोक्ति' अलंकार पूर्वोक्त विभावना' अलंकार के प्रथम भेद का विरोधी है ।

(३६) असंभव

जहाँ किसी पदार्थ की असंभवता बतलाई जाय, वहाँ 'असंभव' अलंकार होता है । इसके वाचक प्रायः

1 जल । २ जल एवं सौंदर्य । ३ शकुन एवं गुणवाले ।

'कौन जानता था' वा इसीके दूसरे आश्चर्य-सूचक पर्याय होते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

लखि सँकेत सूनो कहति, कान्ह-कथन भो कूर।
को जानत रहि आजु अलि !, अथहिँ अपच्छिम सूर ॥

यहाँ विप्रलब्धा नायिका संकेत-स्थल में नायक को न पाने पर सखी से कहती है—"आज श्रीकृष्ण महाराज की बात भी अपश्चिम (पूर्व) में सूर्यास्त होने की भाँति मिथ्या हो गई !" और यह असंभवार्थ 'को जानत रहि' वाचक से सिद्ध है।

२ पुनः यथा—सवैया।

साज [illegible] राज लौं रीति जथा कुल बेद-पुरान की।
बाजै बधाई भरी धुनि धामनि कोकिल-कंठिन के कल गान की ॥
सो सपनो सो भयौ, सपने हु न जानी वही भई बात अठान की।
आजु अचानक [illegible] जानकी-जीवन के बन जान की ॥

यहाँ भी श्रीरामचंद्र के [illegible] की बात तो स्वप्न सम हो गई और उसी समय [illegible] वन-गमन की असंभव दुर्घटना होने का 'सपने हु न जानी वही भई' वाक्य द्वारा वर्णन है।

३ पुनः यथ—सवैया।

बात कहा दह-भीतर की गहि लेत हौ ऊपर आइकै हाली।
एक हू द्यौस कहैं 'रघुनाथ' पस्यौ पसु मानुस सौं नहिं खाली ॥
आजु की बात कहा कहिए ! कहि आवतु है कछु मो पै न आली ! ।
[illegible] काल सो काली

—रघुनाथ।

यहाँ भी श्रीबालकृष्ण का यमुना में प्रवेश करके काल के समान कालीय नाग को नाथकर निकाल देना असंभवार्थ "आजु की बात कहा कहिए" वाक्य द्वारा वर्णित हुआ है।
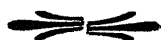
√(३७) असंगति

जहाँ कारण-कार्य का वा केवल कार्य का संगति के विना (स्वाभाविक संबंध के विपरीत) किसी रमणीय उलट-फेर से वर्णन हो, वहाँ 'असंगति' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ प्रथम असंगति

कारण-कार्य का एकाधिकरण्य[1] (एक स्थल में संगति) अग्नि-धूम की भाँति स्वभाव-सिद्ध होता है; परंतु जिसमें इसके विरुद्ध एक ही समय में अत्यंत वैयधिकरण्य[2] पूर्वक (कारण कहीं और कार्य कहीं) इनकी स्थिति कही जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मथुरा जायौ देवकी, जदु-कुल-कैरव-चंद।
गोकुल भो ताको तबहिं, नंद-सदन आनंद॥

यहाँ पुत्र-जन्म रूपी कारण तो माता देवकी के यहाँ मथुरा

---

१ एकदेशता को एकाधिकरण्य कहते हैं। २ भिन्नदेशता को वैयधिकरण्य कहते हैं।

में होना और पुत्रोत्सव मनाया जाना कार्य श्रीनंदराय के घर गोकुल में उसी समय होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरति चतुर-सँग प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हिये, दई! नई यह रीति॥

—विहारी।

यहाँ भी दृग के उलझने में कुटुंब का टूटना, चतुर से प्रीति लगना और दुर्जन के मन में गाँठ पड़ना। इस प्रकार कारण-कार्य में भिन्नदेशता वर्णित है।

३ पुनः यथा—दोहा।

[illegible] की उपज, कही रहीम न जाइ।
फूल स्याम के उर लगे, फल स्यामा-उर आइ॥

—रहीम।

यहाँ भी फूल (फूलना = आनंद) कारण का तो कृष्ण के उर में और फल (कुच) कार्य का नायिका के उरस्थल में (एक साथ) होना कहा गया है।

सूचना—(१) यहाँ लक्षण में 'अत्यंत' शब्द लिखने का तात्पर्य यह है कि साधारण भिन्नदेशता में चमत्कार नहीं होता। जैसे यदि कहा जाय—"मोतियों की माला तो कंठ धारण करता है; किंतु तृप्त होते हैं नेत्र" तो इस वाक्य में यह अलंकार नहीं होगा; क्योंकि अंगों के विभूषित होने से नेत्रों का तृप्त होना स्वभाव-सिद्ध है।

(२) पूर्वोक्त 'विरोध' अलंकार में भिन्न-भिन्न स्थलों में रहनेवाले विरोधी पदार्थों (जाति, गुण, क्रिया एवं द्रव्य) की एक स्थल में स्थिति (संसर्ग) बतलाई जाती है; और यहाँ एक जगह रहनेवाले कारण-कार्य की भिन्न-भिन्न देशों में स्थिति कही जाती है।

१ उदाहरण यथा—सोरठा ।

बनि बामन बलि-गेह, हरन गए सरबस्व हरि ।
दै आप निज देह, चार मास प्रतिहार ह्वै ॥

यहाँ दैत्यराज बलि का सर्वस्व लेने के लिये जानेवाले श्रीवामन भगवान् का चातुर्मास्य के लिये उसके द्वारपाल बनकर अपना शरीर दे आने का विपरीत कार्य वर्णित हुआ है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

[illegible] बिजै-बर-हेतु बड़ी बिधि सौं द्विज-देव निहोरयौ ।
औचक बानर को दल आइ हुतासन-कुंडहिं बारि सौं बोरयौ ॥
क्रोध भस्यौ 'लछिराम' तहाँ जिहिं सामुहें मंगल को घट फोरयौ ।
रावन श्रीमख-साधन छोड़ि बली लै गदा हनुमान पै दौरयौ ॥

—लछिराम ।

यहाँ भी रावण का यज्ञ (सत्कार्य) छोड़कर हनुमान आदि की हिंसा करने के लिये गदा लेकर दौड़ने का वर्णन हुआ है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

यह ऊलट कासौं कहौं, निकट सुनाइ सु बैन ।
आए जीवन दैन घन, लगे सु जीवन लैन ॥

—हिंदी-अलंकार-प्रबोध ।

यहाँ भी जीवन देने के लिये आए हुए मेघों द्वारा वियोगिनी के जीवन लेने का विपरीत कार्य किया जाना कहा गया है ।

(३८) विषम

जहाँ विषम घटनाओं का वर्णन हो, वहाँ 'विषम' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ प्रथम विषम

जिसमें कुछ संबंधियों के स्वाभाविक धर्म में विषमता होने से उनका अयोग्य संबंध वर्णित हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

कंटकित केतकी गुलाब करि डारे, कारे,
काकन से कोकिल, कलंकित कला-निधान।
दरसै दरिद्रिन के दस-पाँच पूत प्राय,
एकहिं लौं तरसै धनेस मनुजेस जान॥
ब्रज मैं करीर, नीर नीरधि के खारे किए,
दाता धन-हीन दीन, कृपन समृद्धिमान।
नाम अज ही तें परै जान, पै अठान चार-
आनन के कैसे एक आनन करै बखान॥

यहाँ केतकी एवं गुलाब का कंटकों से, कोकिल का श्याम वर्ण से एवं चंद्रादि का कलंकादि से विलोम धर्म होने पर उनका परस्पर अयोग्य संबंध वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सुख-सरूप रघुबंस-मनि, मंगल-मोद-निधान।
ते सोवत कुस डासि महि, बिधि-गति अति बलवान॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ भी सुख-स्वरूप, रघु-वंश-मणि और मंगल-निधान श्री-रामचंद्रजी का पृथ्वी पर बिछी हुई कुश-साँथरी से अयोग्य संबंध बतलाया गया है।

३ पुनः यथा—

जब जनमने का नहीं था नाम भी हमने लिया।
दो घड़ा तय्यार दूधों का नहीं उसने किया॥
आपदा टालीं अनेकों बुद्धि, बल, विद्या दिया।
की भलाई की न जाने और भी कितनी क्रिया॥
तोतलपन है बीतता तो भी तनिक चेते नहीं।
हम पतित ऐसे हैं उसका नाम तक लेते नहीं॥

—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय।

यहाँ भी मनुष्य के जन्म से पहले ही दुग्ध के दो बड़े तय्यार करने आदि अनेक उपकारों के कर्त्ता परमात्मा का और जिसने परमात्मा का स्मरण तक नहीं किया, ऐसे मनुष्य का विषम संबंध वर्णित हुआ है।

४ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा॥

—रामचरित-मानस।

यहाँ भी श्रीरघुनाथजी के मृदु गात का महा कठोर धनुष से अयोग्य संबंध बतलाया गया है।

सूचना—पूर्वोक्त 'विरोध' अलंकार में उन पदार्थों का संसर्ग कहा जाता है, जिनमें परस्पर विरोध होता है; और यहाँ जिन पदार्थों का पारस्परिक संबंध अयोग्य होता है, उनका वह संबंध कहा जाता है। यही भिन्नता है।

---

१ बढ़कर।

२ द्वितीय विषम

जिसमें कारण और कार्य की गुण-क्रियाओं की विषमता का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

कारन आदि तिहारो कह्यौ, कमलासनजू को कमंडलु कारो।
दूजो भयौ घन स्याम[1] जबैं, पद्मापति[2] को पद पूत पखारो॥
त्यौं ही तृतीय भयौ है त्रिलोचन-जूट-जटान को घोर अँधारो।
तीनहुँ[3] अंब! अचंभित हैं लखि कंबु-कदंबक-अंबु[4] तिहारो॥

यहाँ श्रीगंगाजी के उत्पादक कमंडलु आदि कारणों के श्याम और गंगाजल कार्य के श्वेत रंग (गुण) होने की विषमता का वर्णन हुआ है।

२ पुनः यथा—कवित्त-चरण।

सुकुमारी सुंदरी कृसोदरी सिवा[5] पै सृज्यौ[6],
थूल बिकराल लंब-उदर कुमार है।❀

यहाँ भी श्रीपार्वतीजी (कारण) के सुकुमारी, सुंदरी एवं कृशोदरी गुणों से विपरीत श्रीगणेशजी (कार्य) के क्रमशः स्थूल, विकराल एवं लंबोदर गुणों का वर्णन है।

३ पुनः यथा—दोहा।

सेत पीत हर-गौरि-तनु, रस[7] गंधक अनुरूप।
तिहिँ तिनकर सुमिरन-रगर, करत स्याम तनु रूप॥

---

१ अत्यंत श्याम। २ विष्णु। ३ ब्रह्मा, विष्णु, शिव और त्रिलोक। ४ शंख-समुदाय जैसा जल। ५ पार्वती। ६ उत्पन्न किया। ७ पारा।

❀ पूरा पद्य 'मंगलाचरण' में देखिए।

यहाँ भी श्रीशंकर-पार्वती (कारणों) के श्वेत एवं पीत वर्ण गुणों से विपरीत, श्याम (विष्णु) गुण उत्पन्न होने की विषमता का वर्णन है।

सूचना—पूर्वोक्त 'विरोध' अलंकार में विरोधी पदार्थों का संसर्ग कहा जाता है; 'पंचम विभावना' में स्वयं कारण-कार्य में विषमता होती है; और यहाँ कारण-कार्य की गुण-क्रियाओं में विषमता होती है। उन दोनों से इसमें यही अंतर है।

३ तृतीय विषम

जिसमें क्रिया के कर्त्ता को केवल अभीष्ट फल की अप्राप्ति ही न हो; प्रत्युत[1] अनिष्ट की प्राप्ति भी हो।[2]

१ उदाहरण यथा—दोहा।

छलन छैल छैली चली, गहि गुन-रूप-गुमान।
मोही उन नैनन निरखि, मैन भरी मुसकान॥

यहाँ श्रीकृष्ण को छलने का उपाय करनेवाली नायिका को इष्ट फल की अप्राप्ति और स्वयं मोहित हो जाने के अनिष्ट की प्राप्ति होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

मलयज लिए बुलाय, दै, सुरभि समीर-अहार[3]।
भइ हारन-ठाहर उलटि, बिष-झारन पतझार॥

यहाँ भी मलयज (चंदन)-वृक्ष के सर्पों को बुलाने से केवल अपने हार-शृंगारादि इष्ट फल की अप्राप्ति ही नहीं हुई; प्रत्युत पतझड़ के रूप में अनिष्ट भी प्राप्त हुआ है।

---

१ बल्कि। २ इस तृतीय विषम के किसी-किसी ने छः भेद माने हैं। ३ सर्प और वायु का आहार।

३ पुनः यथा—दोहा ।

बिथुर्‌यौ जावक सौति-पग, निरखि हँसी गहि गाँस ।
सलज हसौंहीं लखि, लियौ, आधी हँसी उसास ॥ ❀
—बिहारी ।

यहाँ भी सपत्नी के पैर का फैला हुआ जावक देखकर नायिका को केवल सौत के फूहड़ सिद्ध होने के इष्ट की अप्राप्ति ही नहीं हुई; प्रत्युत् अपने नायक से सपत्नी का प्रेम ज्ञात होने का अनिष्ट भी प्राप्त हुआ है ।

४ पुनः यथा—सवैया ।

छीन भई तन काममई जिनके हित बाट इते दिन हेरी ।
आगम[1] जोतिष बूझत ही नित देव मनावत साँझ-सबेरी ॥
आयउ प्रान-पिया परदेस तें देहु बधाई कहै सुन मेरी ।
'वृंद' कहै उन गारी दई औ निकार दई तस अंतर[2] चेरी ॥
—वृंद ।

यहाँ भी नायिका को उसके पति के विदेश से आने की सूचना देनेवाली दासी को बधाई न मिलने का अलाभ और गाली मिलने एवं घर से निकाले जाने का अनिष्ट भी प्राप्त हुआ है, जिसका स्पष्टीकरण वृंद कवि ने इस प्रकार किया है—

---

१ शास्त्र । २ अंतरंग ।

❀ सौत के पैरों में जावक फैला हुआ देखकर (उसे फूहड़ समझकर) नायिका हँसी; पर जब सौत को लज्जा-युक्त और मुसकुराते देखा तो नायिका ने (अपने मन में यह समझकर कि मेरा पति ही जब इसे जावक लगाने लगा था, तब सात्विक भाव हो जाने के कारण उसीसे यह फैल गया है।) अपनी हँसी के बीच में ही विषाद से उच्छ्वास लिया ।

पिय को आगम सुनत ही, फूली सब तन नारि।
बिरह-दसा देखी न पिय, यों खिजि दई निकारि ॥

सूचना—पूर्वोक्त 'तृतीय असंगति' अलंकार में स्वयं कर्त्ता द्वारा विपरीत कार्य किया जाना है; और यहाँ (तृतीय भेद में) दैवात् अनिष्ट-प्राप्ति होती है। यही इनमें पृथक्ता है।

(३९) सम

जहाँ सम (यथायोग्य) घटनाओं का वर्णन हो, वहाँ 'सम' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ प्रथम सम

जिसमें संबंधियों के योग्य संबंध का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

छैल छलिया है तो छबीली कर फूल-छरी,
जो है जमुनाजल तो भंग[1]-भ्रमरी[2] सी है।
स्याम घन है तो स्यामा-देह-दुति दामिनी है,
बिरही बिहारी जिय-जीवन-जरी सी है ॥
मोहन मलिंद है तो कुंद-कलिका सी यह,
चंद ब्रज-चंद है तो कृत्तिका[3]-लरी सी है।
जो है बनमाली तो बिराजै गल माल, लाल,
तरु है तमाल तो पै लतिका हरी सी है ॥

---

१ जल की तरंग। २ जल-भ्रमरी (चक्कर)। ३ नक्षत्र-विशेष।

यहाँ श्रीराधा-गोविंद का 'छैल छलिया है तो छबीली कर फूल-छरी' आदि वाक्यों द्वारा अनेक प्रकार से समुचित संबंध बतलाया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

नैन सलोने अधर मधु, कहु 'रहीम' घटि कौन।
मीठो भावै नोन पै, मीठे ऊपर नोन॥
—रहीम।

यहाँ भी सलोने नेत्र एवं मधुर ओठों के योग्य (सराहनीय) संबंध का वर्णन है।

३ पुनः यथा—सवैया।

भाग जगे ब्रज-मंडल के उमग्यौ दुहुँ ओर अनंग-अखारो।
साहिबी सील सिरोमनि रूप बनो रह्यौ भू पर ओज अपारो॥
डोलनि बोलनि काम-कलोलनि जोग-जथा 'लछिराम' सँवारो।
राधिका जैसी सुहाग भरी अनुराग भरो तिमि नंद को बारो॥
—लछिराम।

यहाँ भी श्रीराधिका महारानी और श्रीनंदकिशोर के यथा-योग्य संबंध का वर्णन किया गया है।

२ द्वितीय सम

जिसमें कारण के अनुकूल ही कार्य का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—सोरठा।

सिव सब सुरन प्रधान, जैसे हि जन-रंजन बरद।
तैसो हि तिन्हकर दान, -ज्ञान-मुक्ति बारानसिहिं॥

यहाँ सब देवताओं में प्रधान श्रीविश्वनाथ महाराज (कारण) के अनुरूप ही श्रीकाशी में उनका ज्ञान और मुक्ति प्रदान करना (कार्य) वर्णित हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

जो कानन तें उपजिकै, कानन देत जराय।
ता पावक सौं उपजि घन, हनै पावकहिँ न्याय॥

—भिखारीदास 'दास'।

यहाँ भी अपने उत्पादक कानन (वन) को जला देनेवाला पावक कारण है, जिससे उद्भूत घन (बादल) कार्य अग्नि को बुझा देनेवाला है; अतः उसके अनुकूल ही वर्णन हुआ है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

गोकुल जनम लीन्हौ, जल जमुना को पीन्हौ,
सुबल सुमित्र कीन्हौ, ऐसो जस-जाप है।
भनत 'मुरार' जाके जननी जसोदा जैसी,
उद्धव! निहार नंद तैसो तिँह बाप है॥
काम-बाम तें अनूप तज ब्रज-चंद-दुती,
रीझे वह कूबरी कुरूप सौं अमाप है।
पंचतीर-भय को न वीर नेह-नय को न,
वय को न, पूतना के पय को प्रताप है॥

—कविराजा मुरारिदान।

यहाँ भी श्रीकृष्ण का राक्षसी पूतना का पय पान कर (कारण) के अनुकूल ही कुरूप कुब्जा दासी से प्रेम करना (कार्य) वर्णित है।

३ तृतीय सम

जिसमें विना किसी विघ्न के उस कार्य की सिद्धि का वर्णन हो जिसके लिये उद्यम किया जाय।

१ उदाहरण यथा—भुजंगप्रयात।

उदै है उदै-अस्त लौं नाम जिन्का,
रहा आम लौं काम संग्राम जिन्का[1]।
जुरे जाइ जोधा जहाँ जीति पाई,
फिरी है सताईस सौ मैं दुहाई[2]॥

यहाँ श्रीबीकानेर-नरेश के पूर्वजों द्वारा अपने सैनिकों-सहित युद्ध (उद्यम) करके निर्विघ्न विजय प्राप्त करने का वर्णन है।

२ पुनः यथा—दोहा।

राधा! पूजी गौरजा, भर मोतीड़ाँ थाल।
मथुरा पायौ सासरो, बर पायौ गोपाल॥
—अज्ञात कवि।

यहाँ भी श्रीराधिकाजी के सुयोग्य वर-प्राप्ति के लिये गौरी-पूजन रूप उद्यम करने से मथुरा पुरी में ससुराल एवं नंदलाल वर की प्राप्ति विना विघ्न के हुई है।

सूचना—इस 'सम' अलंकार के तीनों भेद पूर्वोक्त 'विषम' अलंकार के तीनों भेदों के परस्पर विरोधी हैं।

---

१ राज्य-वृद्धि के अर्थ संग्राम करना ही जिनका कार्य था। २ अर्थात् सत्ताइस सौ ग्रामों का राज्य हो गया।

(४०) विचित्र

जहाँ किसी फल की प्राप्ति के लिये उचित यत्न के विपरीत कोई और यत्न किया जाय, वहाँ 'विचित्र' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

पार होन हित काव्य-सर, बूड़त रसिक हजार।
तिय बिरहिनि जरि मरन लौं, मलत मलय घनसार॥

यहाँ रसिक जनों का काव्य-सरोवर से पार होने के लिये डूबने का एवं वियोगिनी स्त्री का जलकर मरने के लिये मलय (चंदन) और घनसार (कपूर) मलने का प्रतिकूल प्रयत्न करना वर्णित है। दो वर्णन होने से माला है।

२ पुनः यथा—दोहा।

मरिबे को साहस कियौ, बढ़ी बिरह की पीर।
दौरति ह्वै समुहै ससी, सरसिज सुरभि समीर॥
—बिहारी।

यहाँ भी वियोगिनी नायिका द्वारा मरने रूपी फल-प्राप्ति के लिये चंद्रमा, कमल, सुगंध और वायु के सामने दौड़ने के विपरीत यत्न किए जाने का वर्णन है।

विचित्र-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

औरनि के तेज सीरे करिबे के हेत, आँच,
करै तेज तेरो दिसि-बिदिसि अपार मैं।
पर-सुख अधिक अँधेरी करिबे कों फैली,
जस की उजेरी तेरी जग के पसार मैं॥

राव भावसिंह ! सत्रुसाल के सपूत यह,
अद्भुत बात 'मतिराम' के बिचार मैं।
आइकै मरत अरि चाहत अमर भयौ,
महा बीर ! तेरी खंग-धार-गंग-धार मैं ॥
—मतिराम।

यहाँ शत्रुओं का तेज ठंढा करने के लिये राजा भाऊ-सिंह का अपने प्रताप का ताप करना एवं उनके मुख में अंधकार करने के लिये अपने यश का प्रकाश फैलाना और शत्रुओं का अमर होने के निमित्त राजा भाऊसिंह की खड्ग-धार रूप गंग-धार में मरना ये विपरीत प्रयत्न हुए हैं। तीन जगह यही अलंकार है; अतः माला है।

(४१) अधिक

जहाँ आधेय[1]-आधार[2] की अधिकता (उत्कर्ष) का वर्णन हो, वहाँ 'अधिक' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम अधिक

जिसमें आधार से छोटे आधेय को बड़ा बतलाया जाय।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

लोक-अभिराम राम राजा ! राज रावरे मैं,
देखे सचराचर पै दुखिया न पाइए।
एक जस आपके की सिगरी सुनाऊँ व्यथा,
करुना-निधान ! वाकी बिगरी बनाइए ॥

---

१ जो वस्तु किसीके आश्रय में हो। २ जिसके आश्रय में कोई वस्तु हो।

भौन चौदहूँन मैं न मावै सकुचावै अंग,
भूरि अकुलावै वाहि अब तो बचाइए।
वेसी बगराइए न बस मैं रहैगी बात,
बसिबे लौं वाके और भुवन बसाइए॥

यहाँ राजा रामचंद्र का यश (आधेय) चौदह लोकों (आधार) से छोटा होने पर भी बड़ा बतलाया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

अति बिसाल हरि-हृदय कौं, राधा पूरन कीन।
यातें सौतिन के लिये, यामैं ठौर रही न॥
—जसवंत-जसोभूषण।

यहाँ भी माया-मनुज श्रीकृष्ण के हृदय (आधार) से श्रीराधिका (आधेय) के स्वल्प होने पर भी उनका उत्कर्ष वर्णित हुआ है।

२ द्वितीय अधिक

जिसमें आधेय से छोटे आधार को बड़ा बतलाया जाय।

१ उदाहरण यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

उदर-उदधि[1] बलि-बलित अथाहा। जीव-जंतु जहँ कोटि कटाहा[2]॥

यहाँ कोटि ब्रह्मांड (आधेय) से श्रीशंकर का उदर (आधार) स्वल्प होने पर भी बड़ा बतलाया गया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

श्रीब्रजराजै बिराट सरूप कहैं जिन बेदनि को रस चाख्यौ।
देखि सक्यौ नहिं देखिबे कों चतुरानन आपु कितो अभिलाख्यौ॥

१ समुद्र। २ ब्रह्मांड।

मोपै कछू गुन रावरे को 'रघुनाथ' की सौंह न जातु है भाख्यौ।
तूँ धनि तूँ धनि है धन मैं धन जो अपने मन मैं इन्हैं राख्यौ॥
—रघुनाथ।

यहाँ भी विराट् स्वरूप श्रीव्रजराज (आधेय) से श्रीप्रियाजी का मन (आधार) अल्प होने पर भी बड़ा वर्णित हुआ है।

३ पुनः यथा—

इतना सुख! जो न समाता, अंतरिक्ष में जल-थल में।
मुट्ठी में तुम ले बैठे, आश्वासन देकर छल में॥
—बाबू जयशंकरप्रसाद।

यहाँ भी अंतरिक्षादि में न समानेवाले 'सुख' आधेय से छोटे आधार 'मुट्ठी' को बड़ा कहा गया है।

(४२) अल्प

जहाँ सूक्ष्म आधेय से बड़े आधार को भी अल्प या छोटा बतलाया जाय, वहाँ अल्प अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कर-गजरा अटकत न कटि, कुच अँचरा न समात।
तनु-सासक जोबन बदलि, किय घट-बढ़ तिय-गात॥

यहाँ 'कर-गजरा' सूक्ष्म आधेय की अपेक्षा अधिक या बड़ी 'कटि' (आधार) को अल्प बतलाया गया है।

२ पुनः यथा—पद।

नातो नाम को मोसौं तनक न तोड़्यौ जाइ।
पानाँ[1] ज्यौं पीली पड़ी रे, लोग कहैं पिंड-रोग।
छानैं[2] लाँघन मैं किया रे, राम-मिलन के जोग॥

[1] पत्ते। [2] छिपकर।

बाबल[1] बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हारी बाँहि[2]।
मूरख बैद भरम नहिं जानै, करक कलेजै माहिँ ॥
मांस गलि-गलि छीजिया रे, करक रह्या गल माहिँ।
आँगलियाँ की मूँदड़ी म्हारै, आवन लागी बाँहि ॥

म्हारै नातो नाम को रे, और न नातो कोय।
'मीराँ' व्याकुल बिरहिनी रे, (पिय) दरसन दीजौ मोय॥
—मीराँबाई।

यहाँ भी अँगुली की मुँदरी (सूक्ष्म आधेय) से बाँह (आधार) के अधिक या बड़ी होने पर भी उसे सूक्ष्म बतलाया गया है।

सूचना—यह अलंकार पूर्वोक्त 'अधिक' अलंकार के द्वितीय भेद के ठीक विपरीत है।

(४३) अन्योन्य

जहाँ दो पदार्थों का अन्योन्य (परस्पर) समान संबंध वर्णित हो, वहाँ 'अन्योन्य' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ प्रथम अन्योन्य

जिसमें पारस्परिक कारणता (एक दूसरे के कारण होने) का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

मोतिन को पितु पानी प्रसिद्ध है औ तिनमैं प्रगटै पुनि पानी।
बृच्छ तें बीजरु बीज तें बृच्छ हु, दान तें द्रव्य त्यौं द्रव्य तें दानी॥

---

१ पिता। २ नाड़ी।

पावक पौन धुआँ पय, मेघन तें उपजैं इनतें घन जानी।
राम-कृपा तें मिलै सत-संग सुसंग तें राम-कृपा सुख-सानी॥

यहाँ मोती और पानी, वृक्ष और बीज, दान और द्रव्य की आपस में कारणता वर्णन हुई है। इसी तरह अग्नि, पवन, धूम और जल का कारण मेघ और मेघ के ये चारों कारण हैं। सत्संग का कारण राम-कृपा और राम-कृपा का कारण सत्संग है। पाँच कारणता एक साथ हैं, इससे माला है।

२ पुनः यथा—दोहा।

पतनी पति बिनु दीन अति, पति पतनी बिनु मंद।
चंद बिना ज्यौं जामिनी[1], ज्यौं जामिनि बिनु चंद॥

—केशवदास।

यहाँ भी पत्नी की दीनता का कारण पति-वियोग एवं पति की दीनता का कारण पत्नि-वियोग (उत्तरार्द्ध के दृष्टांत के साथ) कहा गया है।

२ द्वितीय अन्योन्य

जिसमें परस्पर के उपकार का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

कहुँ बाग तड़ाग तरंगिनि[2]-तीर तमाल की छाँह बिलोकि भली।
घटिका इक बैठत हैं सुख पाइ, बिछाइ तहाँ कुस-काँस-थली॥
मग को श्रम श्रीपति दूरि करैं सिय को, सुभ बाकल[3]-अंचल सौं।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि 'केसव' चंचल चारु दृगंचल सौं॥

—केशवदास।

१ यामिनी=रात्रि। २ नदी। ३ वल्कल।

यहाँ वन-यात्रा में श्रीरामजी द्वारा वल्कल-वस्त्र से श्रीजनक-नंदिनी का एवं श्रीजानकीजी द्वारा दृगंचल से श्रीरामजी का श्रम-निवारण करने के रूप में उपकार करने का वर्णन है।

द्वितीय अन्योन्य-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

सोहै चतुरंग सेन नृप तें नृपाल यातें,
सोहै सूर सस्त्रन तें सूरन तें सस्त्र-जाल।
कंचन लसत मोती पन्ना मनि मानिक तें,
कंचन तें मोती मरकत औ रतन-लाल॥
राजत नदी है नीर नावन नदी तें ये हु,
प्रीतम तें प्यारी होत प्यारी तें पिया निहाल।
बृच्छन तें फूल-पात, बृच्छ फूल पातन तें,
सैल तें सबै ये, सैल इनतें सजैं बिसाल॥

यहाँ राजा से सेना के एवं सेना से राजा के शोभित होने आदि की पारस्परिक सात उपकारिताओं का वर्णन है; अतः माला है।

२ पुनः यथा—सवैया।

तो कर सौं छिति छाजत दान है, दान हु सौं अति तो कर छाजै।
तैं ही गुनी की बड़ाई सजै अरु तेरी बड़ाई गुनी सब साजै॥
'भूषन' तोहिसौं राज बिराजतु, राज सौं तूँ सिवराज! बिराजै।
तो बल सौं गढ़-कोट गजैं अरु, तू गढ़-कोटन के बल गाजै॥
—भूषण।

यहाँ भी छत्रपति शिवाजी के हाथों से दान और दान से उनके हाथ शोभित होने आदि की पारस्परिक चार उपकारिताओं का वर्णन है; अतः माला है।

३ तृतीय अन्योन्य

जिसमें परस्पर समान व्यवहार (जैसा कोई करै उसके साथ वैसा) करने का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

आजु प्रसून बिछाइ बिराजत राधिका-श्रीब्रजराज रसीले।
दोऊ दुहूँन पै रीझि रहे दुहुँ ओर के दौरि कटाछ कटीले॥
हौं अब ही लखि आवति बेनु बजावत गावत गीत सुरीले।
यौं बिलसैं बन माहिँ दिए गल बाँहि कदंब की छाँहि छबीले॥

यहाँ द्वितीय चरण में श्रीराधा-माधव का परस्पर रीझना एवं कटाक्ष-संपात करना वर्णित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

सकल सिँगार साजि साथ लै सहेलिन कौं,
सुंदरी मिलन चली आनँद के कंद कौं।
कवि 'मतिराम' मग करत मनोरथन,
पेख्यौ परजंक पै न प्यारे नँद-नंद कौं॥
नेह तें लगी है देह दाहन दहन गेह,
बाग के बिलोकें द्रुम बेलिन के बृंद कौं।
चंद कौं हँसत तब आयौ मुख-चंद, अब,
चंद लाग्यौ हँसन तिया के मुख-चंद कौं॥

—मतिराम।

यहाँ भी संकेत-स्थल को जाती हुई अभिसारिका नायिका के मुख-चंद्र द्वारा चंद्रमा का और वहाँ से निराश लौटते समय चंद्रमा द्वारा उसी (विप्रलब्धा) के मुख-चंद्र का उपहास किया जाना वर्णित है।

तृतीय अन्योन्य-माला १ उदाहरण यथा—सवैया।

मैं मुरलीधर की मुरली लई, मेरी लई मुरलीधर माला।
मैं मुरली अधरान धरी, उर माहिँ धरी मुरलीधर माला॥
मैं मुरलीधर को मुरली दई, माहिं दई मुरलीधर माला।
मैं मुरलीधर की मुरली भई, मेरे भए मुरलीधर माला॥

—अज्ञात-कवि।

यहाँ श्रीराधाजी का श्रीकृष्ण की मुरली लेने एवं श्रीकृष्ण का उनकी माला लेने आदि के पारस्परिक चार समान व्यवहार वर्णित हुए हैं; अतः माला है।

२ पुनः यथा—

मैं ढूँढ़ता तुझे था जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में॥
तू आह बन किसीकी मुझको पुकारता था।
मैं था तुझे बुलाता संगीत में, भजन में॥
मेरे लिये खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में॥

—कविवर पं० रामनरेश त्रिपाठी।

यहाँ भी भक्त और परमात्मा के एक दूसरे को ढूँढने आदि के तीन समान व्यवहारों का वर्णन होने के कारण माला है।

---

(४४) विशेष

जहाँ कोई विशेष (आश्चर्योत्पादक) अर्थ (घटना) का वर्णन हो, वहाँ 'विशेष' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ प्रथम विशेष

जिसमें विना आधार के ही रमणीयता पूर्वक आधेय की स्थिति कही जाय ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

अति अद्भुत अंबुज-बदनि ! कंठ-कंबु को अंग ।
स्वर-अंबुधि[1] लहरात नभ,-मंडल राग-तरंग ॥

यहाँ पृथ्वी आधार के विना ही आकाश में 'स्वर-अंबुधि' आधेय की शोभन स्थिति कही गई है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

सूर-ससी न मरीचि प्रकासित आठहुँ जाम रहै उजियारो ।
जोग न भोग अलोक कला सुख सोक नहीं तिहुँ लोक तें न्यारो ॥
बेद-पुरान प्रमान बखानत, जानहिगो कोउ जाननहारो ।
सागर ! अंबर है न धरा पर, प्रेमहु को अधबीच अखारो ॥

—प्रवीण सागर ।

यहाँ भी किसी आधार के विना प्रेम के अखाड़े आधेय की रमणीय स्थिति वर्णित हुई है ।

२ द्वितीय विशेष

जिसमें एक पदार्थ की एक ही समय में अनेक स्थलों पर स्थिति होने का वर्णन हो ।

१ उदाहरण यथा—कवित्त ।

कलह कुचाल लै कराल कलिकाल पैहैं,
यातें बिधि-लोक तें भो आवन तिहारो है ।
गाजै उत घोर अघ-ओघ चहुँ ओर लिएँ,
बाजै इत श्रेय-स्रोत[2]-बिजय-नगारो है ॥

---

१ संगीत के सप्त स्वर रूपी समुद्र । २ कल्याण का प्रवाह ।

आवै काल-किंकर कराल, पै न पावै जीव,
तेरी दया संकर-स्वरूप सब धारो है।
द्वारन दरीचिन दरीन[1] मैं मरीचिन[2] मैं,
बीचिन[3] मैं भागीरथी-कीरति-उजारो है॥

यहाँ चतुर्थ चरण में श्रीगंगाजी की कीर्त्ति के प्रकाश की एक ही काल में द्वारन आदि अनेक स्थलों पर शोभन स्थिति का वर्णन है।

२ पुनः यथा—

हे मेरे प्रभु! व्याप्त हो रही है तेरी छवि त्रिभुवन में।
तेरी ही छवि का विकास है कवि की बाणी में मन में॥
माता के निःस्वार्थ नेह में प्रेममयी की माया में।
बालक के कोमल अधरों पर मधुर हास्य की छाया में॥
पतिव्रता नारी के बल में वृद्धों के लोलुप मन में।
होनहार युवकों के निर्मल ब्रह्मचर्यमय, यौवन में॥
तृण की लघुता में पर्वत की गर्व भरी गौरवता में।
तेरी ही छवि का विकास है रजनी की नीरवता में॥
ऊषा की चंचल समीर में खेतों में खलियानों में।
गाते हुए गीत सुख दुख के सरल-स्वभाव-किसानों में॥

—कविवर पं० रामनरेश त्रिपाठी।

यहाँ भी परमेश्वर की छवि के विकास का कवि की बाणी आदि अनेक स्थलों पर एक ही काल में स्थित रहना वर्णित हुआ है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

द्वारे पर झूँठ पछवारे पर झूँठ झुक्यौ,
दोहुँन किनारे पर झूँठ उलहत है।
अंगन मैं झूँठ औ दलान माहिँ झूँठ बसै,
कोठे माँहि झूँठ छत ऊपर बहत है॥

१ गुफाओं। २ किरणों। ३ तरंगों।

'ग्वाल' कवि कहत सलाहन में झूँठे-झूँठ,
सैनन में बोलन में झूँठ ही कहत है।
हाथी-भर झूँठ जाके उर में बसत सदा,
ऊँट-भर झूँठ जाके मूठ में रहत है॥
—ग्वाल।

यहाँ भी झूठ का एक ही समय में द्वार आदि बहुत से स्थानों में रहना कहा गया है।

३ तृतीय विशेष

जिसमें कोई कार्य करने में किसी दूसरे दुर्लभ कार्य का लाभ हो।

१ उदाहरण यथा—दोहार्द्ध।

पूजे पितर भए सबै, सुकृत याग तप त्याग।*

यहाँ पितृ-पूजा करने में याग, तप एवं त्याग इन दूसरे दुर्लभ कार्यों का भी लाभ होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—सवैया।

जाहि बिलोकि डरै जमराजउ, दूत बिचारे बिचार अधीर मैं।
नाम न जानत हैं रघुबीर को, यौं 'लछिराम' गुमान गँभीर मैं॥
साधन थोरे कहाँ लौं कहौं, मतवारे न डारत हैं पग नीर मैं।
तीर मैं आवत ही सरजू के, फलैं फल चार्‌यौं सुरापिन-भीर मैं॥
—लछिराम।

यहाँ भी मद्यपान करनेवाले महा पापियों को श्रीसरयू-तीर में पाँव रखने मात्र से चतुर्वर्ग-फल प्राप्त होने का वर्णन है।

---

* पूरा पद्य 'लाटानुप्रास' में देखिए।

(४५) व्याघात

जहाँ किसी कर्ता की क्रिया का अन्य द्वारा किसी प्रकार से व्याघात[1] किया जाय (बाधा पहुँचाई जाय), वहाँ 'व्याघात' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम व्याघात

जिसमें एक व्यक्ति कोई कार्य जिस क्रिया से सिद्ध करे, अन्य व्यक्ति उससे विपरीत क्रिया द्वारा वही कार्य सिद्ध करे।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

प्रीतम पावति जग-जुवति, जिमि जागत सब कोइ।
तिमि पायौ अलि! आजु निसि, स्वामिनि साजन सोइ॥

यहाँ अन्य स्त्रियों का जाग्रत रहने की क्रिया से और श्रीराधाजी का इसके विपरीत निद्रित होने की क्रिया से पति-संयोग का कार्य सिद्ध करना वर्णित है।

२ पुनः यथा—सवैया।

जन्म लिया जब तें जग मैं, तब तें सुक ने सब आस कों त्यागी।
पुत्र कलत्र धरा धन धाम, जनक्क भयौ तिनमैं अनुरागी॥
क्रोधी महा दुरबासा भयौ, जड़भर्त रह्यौ नित सांति मैं पागी।
'जीवन' कर्म जुदे सबके पर पाइहैं मुक्ति वे चारौं सुभागी॥
—जीवा भक्त।

---

१ धक्का लगाना वा हनन करना।

यहाँ भी शुकदेव मुनि का वैराग्य तथा राजा जनक का अनुराग धारण करने की बिपरीत क्रियाओं से एवं मुनि दुर्वासा का क्रोध और राजा जड़भरत का शांति धारण करने की विलोम क्रियाओं से मोक्ष-प्राप्ति का समान कार्य सिद्ध करना वर्णित है।

२ द्वितीय व्याघात

जिसमें एक व्यक्ति जिस निमित्त (उद्देश्य) से किसी क्रिया का समर्थन करे, अन्य व्यक्ति उसी निमित्त से उसके विपरीत क्रिया का सुख पूर्वक समर्थन करे।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सुरन-सहित हित-जगत लौं, पियौ पियूष सुरेस।
तिहिं जग-हित लौं जगत-पति, गरल पियौ गिरिजेस॥

यहाँ जगत का कल्याण करने के एक ही उद्देश्य को लेकर देवताओं-सहित इंद्र ने अमृत पान करने की क्रिया का और शंकर ने उसके विपरीत विष पान करने की क्रिया का समर्थन किया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

दानी कहै सुन सूम जो तू धन देइ न खाइ कहा मत पायौ ?।
सूम कहै धन दैहौं न खैहौं सु दारिद के डर को डरपायौ॥
तू जु लुटावत रैन-दिनाँ बर दान कहौ किन है बहकायौ ?।
दानी कहै धन देत हौं याहि तें मोहि कौं दारिद को डर आयौ॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ भी दारिद्र्य-भय-निवृत्ति के उद्देश्य से कृपण दान न देने की क्रिया का और दातार दान देने की क्रिया का समर्थन करता है।

सूचना—(१) इस 'व्याघात' अलंकार के उक्त भेदों से पहले कई ग्रंथकारों ने एक और भेद इस लक्षण से माना है—"जो जिस कार्य का कर्त्ता हो, वह उससे विरुद्ध कार्य करे" किंतु हमें पूर्वोक्त 'विरोध' अलंकार से उसमें कुछ भिन्नता नहीं ज्ञात होती; अतः वह नहीं लिखा गया।

(२) कुछ ग्रंथकारों ने ऊपर के दो भेदों में भी कोई अंतर न मानकर उनको एक कर दिया है; परंतु अधिकांश ग्रंथकारों ने ये दोनों भेद माने हैं, और वास्तव में इन दोनों में इतना अंतर वर्तमान भी है जितना एक अलंकार के दो भेदों में होना चाहिए।

(४६) कारणमाला

जहाँ एक पदार्थ का दूसरा पदार्थ उत्तरोत्तर (शृंखला-बद्ध-विधान पूर्वक) कारण-भाव से वर्णित किया जाय, वहाँ 'कारणमाला' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम कारणमाला

जिसमें पूर्व-पूर्व कथित पदार्थ उत्तरोत्तर कथित पदार्थों के कारण हों।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम-कृपा बिनु सपने हुँ, जीव न लह बिश्राम॥

—रामचरित-मानस।

यहाँ पूर्व कथित विश्वास उत्तर कथित भक्ति का, भक्ति राम-कृपा का एवं राम-कृपा जीव की शांति का कारण कहा गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

बिद्या पढ़ि तातैं तेरो जग जस बास बढ़ै,
जस हू तैं बड़न मैं आदर लहतु हैं ।
आदर तैं मानत हैं बचन-प्रमान सब,
बचन तैं जग माँझ संपति कहतु हैं ॥
संपति के होत ही धरम सौं सनेह करै,
धरम के प्रताप पाप दूर ही रहतु हैं ।
पाप दूर रहे तैं सरूप सुद्ध ताको पावै,
पाए सुद्ध रूप होत सबतैं महतु हैं ॥

—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी पूर्व कथित विद्या उत्तर कथित यश का और यश आदर का कारण वर्णित हुआ है । इसी प्रकार अन्य सब हैं ।

३ पुनः यथा—

सच्चा जहाँ है अनुराग होता । वहाँ स्वयं ही बस त्याग होता ॥
होता जहाँ त्याग वहीं सुमुक्ति । है मुक्ति के सन्मुख तुच्छ भुक्ति ॥

—हिंदी-अलंकार-प्रबोध ।

यहाँ भी पूर्व कथित अनुराग उत्तर कथित त्याग का, त्याग मुक्ति का और मुक्ति भुक्ति की तुच्छता का कारण वर्णित है ।

२ द्वितीय कारणमाला

जिसमें उत्तरोत्तर कथित पदार्थ पूर्व-पूर्व कथित पदार्थों के कारण हों ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

सुजस दान अरु दान धन, धन उपजै किरवान ।
सो जग मैं जाहिर करी, सरजा सिवा खुमान ॥

—भूषण ।

यहाँ पहले कहे हुए यश का पीछे कहा हुआ दान, दान का धन, धन का तलवार और तलवार का कारण छत्रपति शिवाजी श्रृंखला-विधान से वर्णित है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

आनँद अतुल अछेह अति, सो बिरहा तें जोइ[१] ।
है बिरहा पिय-मिलन तें[२], मिलन भाग तें होइ ॥
—भाषाभरण ।

यहाँ भी पूर्वोक्त आनंद का कारण उत्तरोक्त विरह, विरह का पिय-मिलन एवं मिलन का भाग्य बतलाया गया है ।

उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

तोष बिन होत चित्त बित्त-बासना को दोप,
बासना तें होति व्यथा उद्यम की भारी है ।
उद्यम तें फल की अधिक आधि[३], फलिबे तें,
दुसह दुसाध्य व्याधि कीबो रखवारी है ॥
चोर बटपारन तें भीति होति साँचिबे मैं,
साँचिबो बनै जो देह सूखि जाइ सारी है ।
मोपै रख दाया मोह दारिद ही भाया, एरी,
माया ! महामाया तेरी लाख बलिहारी है ॥

---

१ यथा—"जो मज़ा इंतज़ार में देखा । वह नहीं वस्ले यार में देखा ॥" अर्थात् मिलने की आशा का आनंद वियोग-दशा में ही होता है; अतः आनंद का कारण वियोग कहा गया है । २ यथा—"संयोगा विप्रयोगान्ताः" (श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण) अर्थात् संयोग से वियोग होता है; अतः वियोग का कारण संयोग सिद्ध है । ३ मानसिक क्लेश ।

यहाँ पूर्वार्द्ध में पूर्व कथित 'तोष विन' (असंतोष) उत्तर कथित वित्त-वासना का, वासना उद्यम का, उद्यम फल-प्राप्ति का एवं फल-प्राप्ति रत्ता करने का कारण कहा गया है; अतः प्रथम कारणमाला है; तथा तृतीय चरण में पूर्व कथित भीति का उत्तर कथित धन-संग्रह एवं धन-संग्रह का शरीर सूख जाना कारण वर्णित हुआ है, इससे द्वितीय कारणमाला है।

(४७) एकावली

जहाँ पूर्व-पूर्व कथित विशेष्य अर्थों में उत्तरोत्तर कथित अर्थों का विशेषण-भाव से गृहीत-मुक्त-रीति[1] पूर्वक स्थापन या निषेध किया जाय, वहाँ 'एकावली' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम एकावली, स्थापन की

१ उदाहरण यथा—सवैया।

सोहत सर्बसहा[2] सिव-सैल तें, सैल हु कामलतान-उमंग तें।
कामलता बिलसैं जगदंब तें, अंब हु संकर के अरधंग तें॥
संकर-अंग हु उत्तमअंग तें, उत्तमअंग हु चंद-प्रसंग तें।
चंद जटान के जूटन राजत जूट जटान के गंग-तरंग तें॥

यहाँ पूर्व कथित सर्वसहा आदि विशेष्य-शब्दों में उत्तर कथित शैल आदि शब्दों का विशेषण-भाव से गृहीत-मुक्त-रीति पूर्वक स्थापन हुआ है।

---

१ शृंखला-बद्ध-विधान अर्थात् साँकल की कड़ियों की भाँति शब्दों का परस्पर संबद्ध होना। २ पृथ्वी।

२ पुनः यथा—सवैया ।

बिद्या वही जातें ज्ञान बढ़ै अरु ज्ञान वही करतव्य सुझावै ।
है करतव्य वही जग मैं दुख आपने बंधुन को बिनसावै ॥
बंधु वही जो बिपत्ति हरै औ बिपत्ति वही जो कि बीर बनावै ।
बीर वही अपने तन कौं धन कौं मन कौं पर हेत लगावै ॥

—हिंदी-अलंकार-प्रबोध ।

यहाँ भी पहले कहे हुए विद्या आदि विशेष्यों में उनके पश्चात् कहे हुए ज्ञान आदि विशेषण रूप से उत्तरोत्तर स्थापित होते चले गए हैं ।

२ द्वितीय एकावली निषेध की

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

गेह न कछु बिन तनय जो, तनय न बिनय बिहीन ।
बिनय न कछु बिद्या बिना, बिद्या बुधि बिन खीन ॥

यहाँ पूर्व-पूर्व कथित गेह आदि विशेष्य-शब्दों के उत्तरोत्तर कथित तनय आदि शब्द विशेषण रूप से वर्णित हुए हैं, और 'न कछु' पद से निषेध हुआ है ।

२ पुनः यथा—छप्पय ।

धिक मंगन बिन गुनहि, गुन हु धिक सुनत न रीझै ।
रीझ सु धिक बिन साँच साँच धिक देत जु खीझै ॥
देबो धिक बिन मौज, मौज धिक धरम न भावै ।
धरम सु धिक बिन दया, दया धिक अरि पहँ आवै ॥
अरि धिक चित्त न सालहीं, चित धिक जहँ न उदार मति ।
मति धिक 'केसव' ज्ञान बिन, ज्ञान हु धिक बिन हरि-भगति ॥

—केशवदास ।

यहाँ भी विशेष्य 'मंगन' का 'गुण' विशेषण है। इसी प्रकार शब्दों का उत्तरोत्तर (गृहीत-मुक्त-रीति से) विशेषण-भाव है; और 'धिक' शब्द से निषेध किया गया है।

उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—कवित्त।

सोहै प्रजा नृप तें नृपाल पटु मंत्रिन तें,
मंत्री पटु सोहै जौन पंडित प्रबर है।
पंडित हू सोहै जाहि सत्यासत्य ज्ञान होहिं,
ज्ञान सुचि सोहै सब ही को हितकर है॥
हित सो न सोहै निज स्वारथ-सहित जो है,
स्वारथ न सोहै जो धरम तें इतर है।
धरम न सोहै त्यागि धरम असेष अन्य,
जो लौं जन होत ना महेस-पद पर है॥

यहाँ उक्त रीति से पूर्वार्द्ध में स्थापन और उत्तरार्द्ध में निषेध किया गया है; अतः उभय पर्यवसायी है।

(४८) सार

जहाँ पूर्व-पूर्व कथित अर्थों से उत्तरोत्तर कथित अर्थों में सार (उत्कर्ष) वर्णित हो, वहाँ 'सार' अलंकार होता है। इसको 'उदार' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

लाख चौरासिन मैं नर उत्तम, त्यौं नरहूँन मैं बिप्र बड़ेरे।
बिप्रन मैं बर बिज्ञ सुबिज्ञन मैं जे सुकर्म करैं बिधि प्रेरे॥
कर्मन के करतारन मैं ज्ञन त्यौं जनहूँन मैं ज्ञानिन हेरे।
ज्ञानिन मैं जो धरै दृढ़ ध्यान सो जीवन-मुक्त न संसय मेरे॥

यहाँ पूर्व-पूर्व कथित चौरासी लाख योनियाँ आदि से उत्तरोत्तर कथित मनुष्यादि में उत्तमता का उत्कर्ष वर्णित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

पल्लव नवल हू तैं सुमन-सिरीष सुभ,
सुमन-सिरीष हू तैं दानी मन हर को[1]।
'लछिराम' दानी-मन-हर तैं हरखराज,
फेन फरकीलो छीर-सागर-लहर को॥
छीर-सर-फेन तैं [illegible], परि-
मल तैं सुभाव सूधो मखमल बर को।
बर मखमल हू तैं कोमल कमल मंजु,
कोमल कमल तैं सुभाव रघुबर को॥
—लछिराम।

यहाँ भी पल्लव आदि पूर्व-पूर्व कथित पदार्थों से सिरीष-सुमन आदि उत्तरोत्तर कथित पदार्थों में कोमलता का उत्कर्ष वर्णित हुआ है।

सूचना—(१) यह 'सार' अलंकार कहीं-कहीं उत्तरोत्तर अपकर्ष में भी माना गया है; किंतु 'सार' शब्द का स्वारस्य उत्कर्ष में ही है; अतः हमारे विचार से उत्कर्ष में ही 'सार' मानना चाहिए।

(२) पूर्वोक्त 'कारणमाला', 'एकावली' और इस 'सार' में शृंखला-विधान तो समान होता है; किंतु 'कारणमाला' में कारण-कार्य का, 'एकावली' में विशेष्य-विशेषण का और यहाँ उत्कर्ष का संबंध होता है। तीनों में यह स्पष्ट अंतर है।

---

१ प्रत्येक दानी का मन।

(४६) यथासंख्य

जहाँ प्रथम कथित अर्थों का उत्तर कथित अर्थों से यथा-क्रम संबंध वर्णित हो, वहाँ 'यथासंख्य' अलंकार होता है। इसको 'क्रम' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—चौपाई।

मुख - मुसकान - मनोहरताई । सीत प्रकास सुबास सुहाई ॥
समुझि स्वयंभु अप्राकृत सोभा। चतुर बिरंचिहि भा चित छोभा ॥
बिरचेउ रुचिर प्रचुर अनुहारा। चारु चंद्रिका मंजुल मारा ॥
चंद गुलाब सुगंधन पूरे। तदपि रहेउ अभिलाष अधूरे ॥
तब ते बिधि रिसाइ, करि डारे। अनित अनंग सरुज कटियारे ॥

यहाँ शंकर के मुखारविंद की मुसकान, मनोहरता, शीतल प्रकाश एवं सुवास प्रथम कथित अर्थों का क्रमशः उत्तर कथित चाँदनी, मार (काम), चंद एवं गुलाब अर्थों से और इन चारों का अनित, अनंग, सरुज एवं कटियारे से संबंध वर्णित हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सुरगन ह्वै के श्रवन सब, उरगन के दृग लाल।
अध ऊरध ह्वै जात जब, बाजति बेनु रसाल ॥

यहाँ भी 'श्रवन' और 'दृग' का 'अध' और 'ऊरध' शब्दों से अन्वय हुआ है।

३ पुनः यथा—श्लोक (अनुष्टुप्)।

या लोभाद्या परद्रोहाद्यः पात्रे यः परार्थके।
प्रीतिर्लक्ष्मीर्व्ययः क्लेशः सा किं सा किं स किं स किम् ॥ *
—अज्ञात कवि।

---

* लोभ से की हुई प्रीति; पर-द्रोह-जन्य लक्ष्मी, पात्र के प्रति किया हुआ व्यय और परार्थ के लिये किया हुआ क्लेश कुछ भी नहीं समझना चाहिए।

यहाँ भी लोभ, पर-द्रोह, पात्र और परार्थ शब्द प्रीति, लक्ष्मी व्यय और क्लेश से, और फिर ये सब सा किं, सा किं, स किं और स किं से क्रमशः संबद्ध हैं।

(५०) पर्याय

जहाँ पदार्थों की स्थिति पर्याय (अनुक्रम) से वर्णित हो, वहाँ 'पर्याय' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम पर्याय

जिसमें क्रमशः एक वस्तु के अनेक आश्रय वर्णित हों।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

आदि मैं जीव अनादि अनंत हु मात के गर्भ मैं बास कर्‌यौ है।
बाहिर होत ही रोदनकै चढ़ि गोद हिंडोरनि मोद भर्‌यौ है॥
प्रौढ़ ह्वै भामिनि-भोग भजे पुनि बृद्ध ह्वै रोगनि खाट पर्‌यौ है।
देह नवीन मैं गेह कियौ यह देह चितागि मैं जाइ जर्‌यौ है॥

यहाँ जीव का गर्भ-वास से लेकर दूसरी देह में वास करने तक का क्रमशः अनेक आश्रय लेना वर्णित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

केउन कें बान मन वीच ही प्रयान करैं,
केउन के तून मैं त्यौं कर मैं बसतु हैं।
केउन के गुन ही मैं, केउन के धनु ही मैं,
केउन के तनु ही मैं, लटके लसतु हैं॥

तेरे बान बाम पै है, राम पै है, तोपै अब,
आए रविजाए! कवि गाए सरसतु हैं।
मन मैं है तून मैं है कर मैं है गुन मैं है,
धनु मैं है तनु मैं है धर मैं धसतु हैं॥
—स्वामी गणेशपुरीजी (पद्मेश)।

यहाँ भी कर्ण के बाणों का क्रम पूर्वक श्रीमहादेव, परशुराम, कर्ण, उसका मन, तरकस, हाथ, प्रत्यंचा, धनुष, शत्रु का शरीर और पृथ्वी ये दस आधार लेना वर्णित हुआ है।

सूचना—पूर्वोक्त 'द्वितीय विशेष' अलंकार में एक ही काल में अनेक आश्रय वर्णित होते हैं; और यहाँ क्रमशः अर्थात् काल-भेद से होते हैं। इनमें यही स्पष्ट पृथक्ता है।

२ द्वितीय पर्याय

जिसमें क्रम पूर्वक अनेक वस्तुओं का एक आश्रय वर्णित हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सुनि गुन प्रथम भरी दृगनि, हरि-दरसन की चाह।
पुनि छाके उहिं छबिहि, अब, अँसुवा भरे अथाह॥

यहाँ नायिका के नेत्रों में पहले श्रीकृष्ण के दर्शनों की लालसा का फिर उनकी छवि का और पुनः अश्रुओं का अस्तित्व वर्णित है।

द्वितीय पर्याय-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

अगर के धूप-धूम उठत जहाँ ई तहाँ,
उठत बगूरे[1] अब अति ही अमाप हैं।
जहाँ ई कलावँत अलापैं मधुर स्वर,
तहाँ ई भूत-प्रेत अब करत बिलाप हैं॥

---

[1] वायुका चक्र बनकर आकाश में चढ़ना।

'भूषन' सिवाजी सरजा के बैर बैरिन के,
डेरन मैं परे मनो काहु के सराप हैं।
बाजत हे जिन महलन मैं मृदंग तहाँ,
गाजत मतंग सिंह बाघ दीह-दाप हैं॥
—भूषण।

यहाँ छत्रपति शिवाजी के शत्रुओं के स्थानों (आश्रयों) में पहले अगर की धूप के धूम्र की, फिर वायु के बगूले की स्थिति आदि तीन जगह 'पर्याय' कहे गए हैं; अतः माला है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

बीति गई अब तो बसंत की बहार सखी !
मल्लिका सुखानी मुरझानी उपवन मैं।
खिलते थे फूल जहाँ उड़ती है वहाँ धूल,
अब ना दिखाते मोद-युक्त भृंग बन मैं॥
सीतल-सुगंध-मंद बहती समीर जहाँ,
परम प्रफुल्ल चित्त होत छिन-छिन मैं।
चलती वहाँ है यह आज हाय! ग्रीषम की,
लगती समीर अग्नि-बान सी बदन मैं॥
—श्रीमती कौशल्या देवी वर्मा 'शांति'।

यहाँ भी पहले वन (आधार) में विकसित पुष्पों की, फिर धूली की, इसी प्रकार उत्तरार्द्ध में त्रिविध समीर की और फिर ग्रीष्म-जन्य-लूओं की स्थिति का वर्णन है, इस कारण माला है।

(५१) परिवृत्ति

जहाँ पदार्थों के विनिमय[1] (बदला) का वर्णन हो, वहाँ 'परिवृत्ति' अलंकार होता है। इसे 'विनिमय' भी कहते हैं। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम परिवृत्ति

जिसमें सम पदार्थों के विनिमय का वर्णन हो। इसके भी दो भेद होते हैं—

(क) उत्तम के साथ उत्तम का

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

लागि ललना कें रह्यौ पी को अनुराग कीधौं,
मान-रज[2]-राग[3] राच्यौ आनन अहीरी को।
राग-रागनीन की तरंगन को रंग कीधौं,
प्रगट्यौ प्रतच्छ है उमंग असरीरी[4] को॥
हेरि हिय हारी रूप-गौरव-गरूरवारी,
पीरी जो परी न सूझि ऐसी मति-धीरी को?।
अधर-सुधा दै लाल-ओठन की लाली लई,
कीधौं रमनी के राग राजै पानबीरी को॥

यहाँ चतुर्थ चरण में नायिका का अपना अधरामृत देकर नायक की अधर-लालिमा लेने का, अर्थात् उत्तम के साथ उत्तम पदार्थ के विनिमय का वर्णन है।

---

१ यह विनिमय कवि-कल्पित होता है। इसके वास्तविक होने में चमत्कार नहीं होता। २ रजोगुण। ३ रंग। ४ कामदेव।

२ पुनः यथा—दोहा ।

नृत्य-कला-सिख दै ललित, लतिकनि जमुना-तीर ।
सुमन-गंध उनको मधुर, लेवत धीर समीर ॥

—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ।

यहाँ भी वायु का लताओं को नृत्य-कला की शिक्षा देकर उनसे पुष्पों की सुवास लेना (उत्तम का विनिमय) वर्णित है ।

(ख) न्यून के साथ न्यून का

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

अघ लीजतु दीजतु नरक, कीजतु यह व्यवहार ।
याही तें जम ! राउरे, काम नाम इकसार ॥

यहाँ यमराज का जगज्जीवों के पाप लेने एवं उनका नरक देने के रूप में न्यून के साथ न्यून का विनिमय वर्णित है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

मृतक-अस्थि लै गंग ! तुम, देत प्रेत-गन-संग ।
मुंड-माल मृग-छाल अरु, भूषन भसम भुजंग ॥

यहाँ भी श्रीगंगाजी द्वारा जीवों की हड्डियाँ लेकर उनको प्रेत-गन-संग, मुंड-माल, मृग-छाल, भस्म एवं सर्पों के प्रदान करने के रूप में न्यून से न्यून का विनिमय वर्णित है ।

२ द्वितीय परिवृत्ति

जिसमें विषम पदार्थों के विनिमय का वर्णन हो । इसके भी दो भेद होते हैं—

२ पुनः यथा—उर्दू-शेर ।

उश्शाक़[1] कभी मरने की परवा नहीं करते ।
परवाने[2] कभी शमा[3] का शिकवा[4] नहीं करते ॥
वेदों में है करतार का ऐलान[5] मुक़द्दस[6] ।
'भूलूँ न उन्हें जो मुझे भूला नहीं करते' ॥
आईनए[7] दिल साफ़ करो ख़ाके[8] खुदी[9] से ।
रुख़[10] अपना बज़ुज़[11] इसके दिखाया नहीं करते ॥
देखा है जिन्होंने 'जो दिखाई नहीं देता' ।
फिर ज़ाहिरी दुनिया को वो देखा नहीं करते ॥
दिल देके लिया करते हैं सौदा यही उश्शाक़ ।
सौदाई[12] कभी दूसरा सौदा नहीं करते ॥

यहाँ भी अपना दिल (न्यून पदार्थ) देकर 'दिखाई नहीं पड़नेवाले' (निराकार) परमात्मा का आत्मज्ञान (सर्वोत्तम पदार्थ) लेना वर्णित है ।

(५२) परिसंख्या

जहाँ किसी वस्तु को उसके योग्य स्थान से हटाकर किसी अन्य स्थान पर नियुक्त (स्थापित) किया जाय, वहाँ 'परिसंख्या' अलंकार होता है ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

छल मध्या-मन नाह के, नेह छिपावन माहिं ।
अरु [illegible]-परिहास तजि, राम-राज्य मैं नाहिं ॥

---

१ आसक्त । २ पतंग । ३ दीपक । ४ शिकायत । ५ घोषणा । ६ प्रधान । ७ दर्पण । ८ मिट्टी । ९ ममता । १० स्वरूप । ११ विना । १२ पागल ।

यहाँ, द्यूत आदि जो छल के योग्य स्थान होते हैं, उनसे इसका निषेध करके केवल मध्या नायिका के पति-प्रेम छिपाने एवं दंपति के परिहास में स्थापित किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

कानन-चारिन[1] मैं कुटिल, केवल कामिनि-नैन।
रहे अनुज-सिय-सहित जब, राम किएँ बन ऐन[2]॥

यहाँ भी कुटिलता को उसके योग्य स्थान कानन-चारियों (व्याध, किरात, सिंह, सर्पादि) से हटाकर केवल स्त्रियों के नेत्रों में उसका स्थापन किया गया है।

परिसंख्या-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

छीन तनवारे हैं मतंग मद-मत्त जहाँ,
माँगत निहारी है पपीहन की पंत को।
कुटिल मयंक बार-अंगना मैं ब्याज बस्यौ,
दोष-अंगीकार काव्य-रसिक अतंत को॥
धूजन धुजा मैं, मुँह-मलिन तिया के कुच,
अंग-छेद अंगना दिखावै गज-दंत को।
चोरी मन की है, 'नाहीं' नवल-किसोरी-मुख,
आज अवनी मैं राज राजै जसवंत को॥

—कविराजा मुरारिदान।

यहाँ कृशता आदि को इनके योग्य स्थान वियोगी आदि से हटाकर केवल मतवाले हस्तियों आदि में स्थापित किया गया है। यहाँ दस परिसंख्याएँ होने के कारण माला है।

---

१ वनचर और कानों तक विचरनेवाले। २ स्थान।

(५३) विकल्प

जहाँ दो समान बलवाले विरोधी पदार्थों का एक काल में एक ही स्थान पर रहना असंभव होने के कारण सादृश्य-गर्भित विकल्प (यह वा वह) का वर्णन हो, वहाँ 'विकल्प' अलंकार होता है। इसके वाचक-शब्द कै, कि, अथवा, आदि देखे जाते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कहँ उरझे किहिं काज ? उर, लगी लगन की लाइ।
सखि ! देखिय किहिं बिधि मिलहिं, पिय आइ कि जिय जाइ॥

यहाँ उत्कंठिता नायिका के पति-मिलाप में पति का आना एवं प्राण-वियोग होना, दोनों समान बलवाले कारणों का एक नायिका (स्थान) में एक ही समय में स्थित रहना असंभव है; अतः "पिय आइ कि जिय जाइ" विकल्प-वाक्य सादृश्य-भाव से कहा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

की तजि मान अनुज इव, प्रभु-पद-पंकज-भृंग।
होहि कि राम-सरानल, खल ! कुल-सहित पतंग॥

—रामचरित-मानस।

यहाँ भी शुक दूत का रावण से कथन है कि या तो श्रीरघुनाथजी के चरण-कमलों के भ्रमर बनो; अथवा अपने परिवार-सहित उनके बाणाग्नि में पतंग हो जाओ। इन दोनों तुल्य बलवान् अर्थों की एक जगह स्थिति असंभव होने के कारण एक की स्थिति के लिये 'विकल्प' वर्णित हुआ है।

३ पुनः यथा—सवैया ।

एती सुबास कहाँ अनते वह को इहिं भाँतिन को बर ह्वैहैं ।
आवत है वह रोज समीर लिए री ! सुगंधन को जु दलैं हैं ॥
देखि अली! इन भाँतिन की अलि-भीरन और सु कौन न ह्वैहैं ।
कै उत फूलन को बन होइगो, कै उन कुंजन राधिका ह्वैहैं ॥

—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी सुगंधित वायु का स्पर्श होने पर श्रीकृष्ण का किसी सखी से कथन है कि यह वायु जिधर से आता है, उधर पुष्प-वाटिका वा श्रीराधिका महारानी होंगी । इन दो पदार्थों में से एक के होते हुए दूसरे की स्थिति अनावश्यक होने के कारण दोनों विरोधी और तुल्य बलवान हैं ।

(५४) समुच्चय

जहाँ अनेक पदार्थों का समुच्चय (समूह) एक समय में एक साथ होना वर्णित हो, वहाँ 'समुच्चय' अलंकार होता है । इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम समुच्चय

जिसमें अनेक गुण, क्रिया आदि भावों का गुंफन (गठन) हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

आजु अवसि इहिं ननद-मुँह, सुनत हि भरी उसास ।
सहमि सकुचि कंपति त्रसति, सपदि गई ढिग-सास ॥

यहाँ नवोढ़ा नायिका में (पति-सहवास की बात अपनी ननँद से सुनते ही) सहमने, सकुचने, कंपित होने एवं त्रस्त होने के रूप में अनेक भावों का एक ही समय में गुंफन हुआ है ।

२ पुनः यथा—

चित्र-कला-कौशल्य सिखे बिन हस्त लेखनी धारी ।
बैठहिं [illegible]-निरूप उतारन करि अभिलाषा भारी ॥
चित्र-दुर्दसा देखि उड़े सब मेरे होस-हवास ।
उमँगे एक बार ही तीनों क्रोध सोक उपहास ॥
—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

यहाँ भी निकृष्ट कवि की कविता देखकर उक्त कवि के हृदय में क्रोध, शोक और उपहास इन तीनों भावों का एक साथ उदित होना वर्णित है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

सहित सनेह सकोच सुख, स्वेद कंप मुसुकानि ।
प्रान पानि करि आपने, पान दए मो पानि ॥
—बिहारी ।

यहाँ भी पूर्वार्द्ध में नायिका के स्नेहादि भावों का एक ही समय में होना कहा गया है ।

सूचना—यहाँ गुण, क्रिया आदि भावों का एक साथ होना वर्णित होता है, पूर्वोक्त 'कारक-दीपक' अलंकार में केवल क्रियाओं का पूर्वापर क्रम से वर्णन होता है; और पूर्वोक्त 'पर्याय' अलंकार के द्वितीय भेद में अनेक वस्तुओं का क्रम पूर्वक एक आश्रय होता है । यही इनमें भेद है ।

२ द्वितीय समुच्चय

जिसमें, किसी कार्य के करने को एक साधक पर्याप्त होने पर भी ईर्ष्या-भाव से साधकांतर उपस्थित हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अघ-अनेक-मय एक ही, नगर-नारि को नेह।
पुनि मदिरादि प्रमाद जहँ, धरम रहै किमि गेह?॥

यहाँ धर्म को ध्वंस करने में वेश्या से प्रेम करना ही बहुत है; पर मद्यपान आदि प्रमादों का होना भी कहा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

बार बराबर बारि है, तापर बहत बयारि।
रघुपति पार उतारिहैं, अपनी ओर निहारि॥

—अज्ञात कवि।

यहाँ भी समाहृत नौका के डुबाने में उसकी बाड़ (ऊपर का हिस्सा) के बराबर जल हो जाना ही साधक पर्याप्त था; किंतु ऊपर से हवा का आ जाना भी वर्णित किया गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

मुनि-गन मिलनु बिसेषि बन, सब हि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु-आयसु, बहुरि, संमत जननी! तोर॥

—रामचरित-मानस।

यहाँ भी श्रीरघुनाथजी के वन-गमन में केवल मुनियों का समागम ही कल्याण करने के लिये पर्याप्त था; किंतु पिता की आज्ञा एवं माता के मत रूपी अन्य साधकों का उपस्थित होना भी कहा गया है।

सूचना—पूर्वोक्त 'सहोक्ति' अलंकार में भी एक क्रिया में दो अर्थों का अन्वय होता है; पर वहाँ एक का प्रधानता से और दूसरे का गौणता से होता है; तथा यहाँ सबका प्रधानता से ही अन्वय होता है और 'सह' आदि वाचक-शब्द भी नहीं होते। यही इनमें अंतर है।

(५५) समाधि

जहाँ किसी कार्य के कर्त्ता को अकस्मात् प्राप्त होने-वाले किसी दूसरे कारण की सहायता से कार्य करने में सुगमता हो, वहाँ 'समाधि' अलंकार होता है। इसका दूसरा नाम 'समाहित' भी है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

असुरन हनि पुनि जदुन लौं, जतन रहे हरि हेर।
मुनि दुरवासादिकन तें, तब हि करी तिन छेर॥

यहाँ माया-मनुष्य श्रीकृष्ण असुर-संहार करके यदुकुल-विनाश का विचार कर ही रहे थे कि दैवात् यादवों ने श्रीकृष्ण के पुत्र सांब को गर्भवती स्त्री बनाकर दुर्वासादि मुनियों से परिहास किया। इस आकस्मिक कारणांतर की प्राप्ति से उक्त कार्य का सुगमता से सिद्ध होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

हँसत खेलत खेल मंद भई चंद-दुति,
कहत कहानी अरु बूझत पहेली-जाल।
'केसौदास' नींद-मिस आपुने-आपुने घर,
हरें-हरें उठि गईं गोपिका सकल बाल॥
घोर उठे गगन सघन घन चहुँ दिसि,
उठि चले कान्ह धाय बोलि उठी तिहिँ काल।
आधी रात अधिक अँधेरी माँझ जैहौ कहाँ,
राधिका की आधी सेज सोइ रहौ नंदलाल!॥
—केशवदास।

यहाँ भी धाय को श्रीराधा-माधव का संयोग कराने में बादलों का घटा-टोप हो जाने रूप अकस्मात् कारणांतर की प्राप्ति होने के कारण सुगमता होना वर्णित है।

सूचना—पूर्वोक्त 'समुच्चय' अलंकार के द्वितीय भेद में अन्य कर्त्ता स्पर्द्धा-भाव से वही कार्य सिद्ध करने में सम्मिलित होते हैं; पर यहाँ वास्तविक कर्त्ता एक ही होता है अन्य कर्त्ता तो अकस्मात् आ जाते हैं, यही इनमें अंतर है।

(५६) प्रत्यनीक

जहाँ स्वयं शत्रु के अजेय होने के कारण उसके किसी संबंधी को बाधा पहुँचाने का वर्णन हो, वहाँ 'प्रत्यनीक' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

वरन स्याम-तम नाम तम, उभय राहु सम जान।
तिमिरहिँ ससि-सूरज ग्रसत, निसि-दिन निस्चय मान॥

यहाँ चंद्र और सूर्य के द्वारा अपने अजेय शत्रु राहु के संबंधी तम (अंधकार) को ग्रसना वर्णित है। उसका श्याम वर्ण और तम नाम होने के कारण वह राहु का संबंधी समझा गया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

एक मनोभव कीन्हौं हुतो हर, पाँच नराच[1] अमोघ दिए कर।
त्यौं इक और मनोज[2] कियौ हरि हू सर सोरह तासु किए कर॥
वे दोउ प्रान हरैं अबलान के या हित राधिका रोष हिए कर।
नाह तें त्रास तिन्हैं, भुज-पास मैं फाँसि इन्हैं निज दास लिए कर॥

---

१ बाण। २ वेद में कहा है—'चंद्रमा मनसो जातः'।

यहाँ भी वियोगिनी स्त्रियों को सतानेवाले काम एवं चंद्रमा को श्रीराधिकाजी अजेय समझकर इनको उत्पन्न करनेवाले शिव एवं कृष्ण को दंड देती हैं जो चतुर्थ चरण में कहा गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

सोवत सीतानाथ के, भृगु मुनि दीन्ही लात।
भृगु-कुल-पति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात॥

—केशवदास।

यहाँ भी [illegible] के हृदय में लात मारनेवाले भृगुजी की जगह उनके वंशज [illegible] की विष्णु के अवतार श्रीरामजी द्वारा सत्ता हरना वर्णित है।

सूचना—(१) यद्यपि यह 'प्रत्यनीक' अलंकार 'हेतूत्प्रेक्षा' (चाहे उसमें 'मनु' आदि वाचक हों या न हो) का ही एक विशेष रूप है, तथापि किसी शत्रु के संबंधी के प्रति पराक्रम करने के चमत्कार-विशेष के कारण यह स्वतंत्र अलंकार माना गया है।

(२) कुछ ग्रंथों में साक्षात् शत्रु के प्रति पराक्रम करने में भी 'प्रत्यनीक' माना है; परंतु यह तो निश्चित रूप से 'अन्योन्य' अलंकार' के तृतीय भेद का विषय है।

---

(५७) काव्यार्थापत्ति

जहाँ दंडापूपिका-न्याय[1] से एक अर्थ के वर्णन में दूसरा अकथित अर्थ भी सिद्ध हो जाय, वहाँ 'काव्यार्थापत्ति' अलंकार होता है।

---

१ जैसे—दंड (दस्ता) खींचने से उसपर स्थित पूप (मालपुए) भी खिँच आते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

पुन्य-पुंज जन जे तजैं, बिस्वनाथ-पुर प्रान।
मुक्ति हु मिलै, रहे कहाँ ? करम भक्ति अरु ज्ञान ॥

यहाँ श्रीकाशीजी में शरीर त्यागनेवालों को मुक्ति की प्राप्ति के वर्णन में कर्म, भक्ति एवं ज्ञान का मिलना (अकथितार्थ) भी "कहाँ रहे' काकूक्ति से सिद्ध हुआ है ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

जिन-जिन सीपन के मोती हुते अंगन मैं,
तरे ते-ते सीप-जीव करि चित चाव कों।
जिन-जिन बृच्छुन की लाख हुती भूषन मैं,
'सूरति' सु तरे तेऊ छाँड़ि दुख-दाव कों ॥
भीजत पटंबर दिगंबर भए हैं कीट,
चूरन तें गैंड़ा गज तरे निज भाव कों ।
सुंदरिन के अन्हात एऊ तरे ऐसे अरु,
तिनकी कहा है ? जानैं गंगा के प्रभाव कों ॥

—सूरति मिश्र ।

यहाँ भी श्रीगंगाजी में स्नान करते हुए स्त्रियों के आभूषणों में जिन सीपों के मोती लगे हुए थे, उन सीपों आदि के तर जाने के वर्णन में गंगा के प्रभाव को जाननेवालों का तर जाना अकथितार्थ भी सिद्ध हुआ है ।

३ पुनः यथा—

अभी हमें ज्ञात यही नहीं हुआ। रहो किमाकारक तू रसात्मिके ! ॥
स्वरूप ही का जब ज्ञान है नहीं। विभूषणों की तब क्या कहें कथा? ॥

—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

यहाँ भी कविता के स्वरूप का ज्ञान न होने के वचन में "विभूषणों (अलंकारों) का ज्ञान न होना" अकथितार्थ भी "क्या कहैं कथा ?" द्वारा सिद्ध हुआ है ।

(५८) काव्यलिंग

जहाँ समर्थन के योग्य कथितार्थ का ज्ञापक कारण[१] के द्वारा समर्थन किया जाय, वहाँ 'काव्यलिंग' अलंकार होता है ।

१ उदाहरण यथा—शार्दूलविक्रीडित ।

आवासो धवलो धराधरगुरुर्गौरी गृहाधीश्वरी ।
शुक्लोक्षा वहनः कपर्दविलसद्गङ्गाऽवलक्षप्रभा ॥
वर्णाः श्वेतसितोज्वलास्तु विशदा माला कपालात्मिका ।
स त्वं मे न मनोऽमलं न कुरुषे शुभ्रप्रियश्शङ्कर ! ॥ *

यहाँ भक्त की शंकर से अंतःकरण निर्मल करने की जो प्रार्थना है, वह कथितार्थ है जिसका उनके कैलाश आदि अनेक शुभ्र वस्तु प्रिय होने के सूचक हेतु से समर्थन किया गया है ।

---

१ कारण दो प्रकार के होते हैं—(१) उत्पादक या कारक जैसे—धूम का अग्नि और (२) सूचक या ज्ञापक जैसे—अग्नि का धूम ।

* हे शंकर ! आपके, वासस्थान कैलाश, गृहिणी गौरी, वाहन नंदिकेश्वर, जटास्थित गंगा, शरीर का वर्ण, भस्म विलेपन, यश, कपाल-माला सभी उज्ज्वल हैं । ऐसे शुभ्र-प्रिय होकर आप मेरा अंतःकरण निर्मल न करेंगे, ऐसा नहीं; अर्थात् अवश्य करेंगे ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

श्री पुर मैं मग मध्य मैं, तैं बन करी अनीति ।
री मुँदरी ! अब तियन की, को करिहै परतीति ॥
—केशवदास ।

यहाँ भी माता जानकी का मुद्रिका के प्रति यह कहना—"अब स्त्रियों का विश्वास कौन करेगा ?" विवक्षितार्थ है, जिसका "अयोध्या में राज-लक्ष्मी ने, मार्ग में स्वयं मैंने एवं वन में तूने श्रीराम-जी को त्याग दिया" इस ज्ञापक कारण से समर्थन किया गया है ।

३ पुनः यथा—सवैया ।

जाइ मिले उड़िकै अप तें, तब ही जब तें नँदलाल निहारे ।
मैं कियौ मान सखी ! मन मैं, छिन ये न भए तन दुःखित भारे ॥
कासौं कहैं हलके पल चंचल, हैं इनके अति कातर तारे ।
लाज कहा इन नैनन कों ? जिनके नित कीजत हैं मुख कारे ॥
—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी नायिका के नेत्रों की निर्लज्जता कथितार्थ है, जो "जिनके नित कीजत हैं मुख कारे" कारण से सिद्ध किया गया है ।

४ पुनः यथा—सवैया ।

वैद्य की औषध खाऔं कछू न करौं व्रत-संयम री ! सुन मोसे ।
तेरो ही पानी पिऔं 'रसखानि' सँजीवन-लाभ लहौं सुख तोसे ॥
एरी सुधामई भागीरथी ! कोउ पथ्य-कुपथ्य करै तोउ पोसे ।
आक धतूरे चबात फिरैं विष खात फिरैं सिव तेरे भरोसे ॥
—रसखान ।

यहाँ भी "गंगाजी द्वारा किसी कुपथ्य करनेवाले तक का भी पोषण किया जाना" कथितार्थ है, जिसका इन्हीं के भरोसे पर श्रीशंकर के आक धतूरा चबाने के कारण द्वारा समर्थन किया गया है ।

सूचना—(१) इस 'काव्यलिंग' को कई ग्रंथकारों ने स्वतंत्र अलंकार न मानकर 'हेतु' अलंकार का प्रकार मात्र माना है; किंतु इसमें कथितार्थ का ज्ञापक कारण द्वारा समर्थन होता है; और 'हेतु' के प्रथम भेद में कारण-कार्य का वर्णन मात्र तथा द्वितीय भेद में उनकी एकात्मता होने के कारण इन दोनों अलंकारों में भिन्नता की स्फूर्ति स्पष्ट होती है।

(२) इस 'काव्यलिंग' के लक्षण में मतभेद है। यथा—(क) "जो समर्थन के योग्य हो, उसका समर्थन किया जाय" (ख) "युक्ति से अर्थ का समर्थन किया जाय" (ग) "स्वभाव, हेतु अथवा प्रमाण-जन्य युक्ति से समर्थन किया जाय" किंतु तात्पर्य सबका समर्थन से है।

(५९) अर्थांतरन्यास

जहाँ प्रस्तुत अर्थ का अप्रस्तुत अर्थांतर (अन्यार्थ) के न्यास (स्थापन) से समर्थन किया जाय, वहाँ 'अर्थांतरन्यास' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम अर्थांतरन्यास

जिसमें प्रस्तुत विशेष[1] का सामान्य[2] अर्थांतर से समर्थन किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

दियो अभय अमरन, कियो, हर हालाहल पान।
पर-उपकारन लौं सहैं, कष्ट कहा न महान ? ॥

---

१ जिसका किसी एक (विशेष) से संबंध हो। २ जिसका अनेक (सर्व-साधारण) से संबंध हो।

यहाँ देवताओं को अभय-दान देने के लिये शंकर के विष पान करने के प्रस्तुत विशेष का महात्मा लोगों के परोपकारार्थ अनेक कष्ट सहन करने के सामान्य अप्रस्तुत अर्थांतर से समर्थन किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

तुव दत माला मलिन हू, धरति हरष-जुत बाल।
बसत सदा गुन प्रेम मैं, नहीं बस्तु मैं लाल!॥

—जसवंत-जसोभूषण।

यहाँ भी नायक की दी हुई कुम्हलाई हुई माला भी नायिका के प्रेम पूर्वक धारण करने के विशेष प्रस्तुतार्थ का "गुण सदा प्रेम में रहता है न कि वस्तु में" इस सामान्य अन्यार्थ से समर्थन हुआ है।

३ पुनः यथा—सवैया।

ज्यौं करुना परिपूरित नेह सौं कोऊ सुभासुभ कर्म निहार न।
भागीरथी! नहिँ छोड़ सकौ तुम पापी हजारन को नित तारन॥
त्यौं अघ-ओघन सौं मोहिँ प्रेम है ताहि न हौं हुँ सकौं करि वारन।
काहू सौं है न सकै जननी! जग मैं अपनो ये स्वभाव निवारन॥

—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार।

यहाँ भी श्रीगंगाजी को पतितपावनता से एवं भक्त को पापों से प्रेम होने के प्रस्तुत विशेषार्थ का किसी से अपना स्वभाव न बदल सकने के सामान्य अर्थांतर से समर्थन किया गया है।

२ द्वितीय अर्थांतरन्यास

जिसमें प्रस्तुत सामान्य का विशेष अर्थांतर से समर्थन किया जाय।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

पलटत ही प्रारब्ध के, सुखद दुखद ह्वै जात ।
रवि पोषत, सोषत वही, जल जात हि जल-जात ॥

यहाँ "भाग्य का उलट-फेर होते ही अनुकूल पदार्थ भी प्रतिकूल हो जाता है" इस प्रस्तुतार्थ सामान्य का "कमलों को पोषण करनेवाला सूर्य उनका जल सूखते ही उनको भी सुखा देता है" इस विशेष अर्थांतर से समर्थन किया गया है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

साहन को तो भै घना, 'सहजो' निरभै रंक ।
कुंजर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसंक ॥
—सहजो बाई ।

यहाँ भी साह और रंक के सामान्य प्रस्तुतार्थ का कुंजर और चींटी के विशेष अन्यार्थ से समर्थन हुआ है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥
—कबीर साहब ।

यहाँ भी पूर्वार्द्ध के सामान्य प्रस्तुतार्थ का उत्तरार्द्ध के विशेष अर्थांतर से समर्थन किया गया है ।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'दृष्टांत' अलंकार में भी दो समान वाक्य होते हैं; किंतु वहाँ समता सूचक उपमेय-उपमान-वाक्य और उनके साधारण धर्मों का बिंब-प्रतिबिंब-भाव होता है; और यहाँ सामान्य-विशेष-वाक्यों का एक दूसरे से समर्थन होता है ।

(२) पूर्वोक्त 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' में अप्रस्तुत के वर्णन में प्रस्तुत सूचित किया जाता है; और यहाँ प्रस्तुत-अप्रस्तुत दोनों का स्पष्ट वर्णन, सामान्य-विशेष का संबंध तथा एक से दूसरे का समर्थन होता है।

(३) पूर्वोक्त 'काव्यलिंग' में समर्थन के योग्य कथितार्थ का सूचक-कारण द्वारा समर्थन होता है; और यहाँ सामान्य-विशेष का परस्पर समर्थन उदाहरण के रूप में होता है।

(९०) विकस्वर

जहाँ किसी विशेषार्थ का सामान्यार्थ से समर्थन किया जाने पर भी संतोष न होने पर पुनः किसी विशेषार्थ द्वारा समर्थन किया जाय, वहाँ 'विकस्वर' अलंकार होता है इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम विकस्वर

जिसमें उपमान-रीति से समर्थन किया जाय।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

विमल बिरागी त्यागी यागी बड़भागी भक्त,
　　बिषयानुरागी त्यौं कुसंगति-करैया है।
कोऊ पंचकोसी माहिँ पंचपन पावै, मुक्ति,
　　सबको समान देत कासी पुरी मैया है॥
कारक-परोपकार आसय-उदार जेते,
　　होत सब याही रीति आरति-हरैया है।
तारै करि छोह औ निहारै कनकै न लोह,
　　ऊँच-नीच-भेद ना बिचारै जिमि नैया है॥

यहाँ श्रीकाशीजी के विशेषार्थ का परोपकारी पुरुषों के सामान्यार्थ से समर्थन करने पर भी संतोष न होने पर पुनः उपमान-रीति से नौका के विशेषार्थ द्वारा समर्थन किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

विघन बिदारत प्रजन के, रिपु दारत नृप गंग।
ऐसे हि करत महान, जिमि, पदमन तमन पतंग ॥[1]

भी श्रीबीकानेर-नरेश महाराज गंगासिंह के विशेषार्थ का के सामान्यार्थ से समर्थन किया जाने पर भी 'जिमि' वाचक द्वारा पतंग (सूर्य) के विशेषार्थ से पुनः समर्थन किया गया है।

२ द्वितीय विकस्वर

जिसमें अर्थांतरन्यास-रीति से समर्थन किया जाय।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

गहन गुहा तें भालु-दुहिता बिवाहि लायौ,
ताको अरुझायौ मन रोम की लतान मैं।
सिंधु मैं सिधारि मारि संखासुर लीन्हौं संख,
नाग जमुना मैं नाथि आयौ निज थान मैं ॥
त्रिबली-तरंग नाभी-भौंर भ्रम्यौ ताको मन,
काहू के न आई प्रेम-प्रभुता प्रमान मैं।
चंचरीक चतुर उदार दारु दारिबे मैं,
कुंठित कुढार होत कंज-कलिकान मैं ॥

यहाँ आरंभ के ढाई चरणों में श्रीकृष्ण का वृत्तांत विशेष-वाक्य है, जिसका "काहू के न आई प्रेम-प्रभुता प्रमान मैं" इस

---

१ महा पुरुष ऐसा ही किया करते हैं। जैसे—भगवान् भास्कर कमलों का पोषण और अंधकारों का नाश किया करते हैं।

सामान्य-वाक्य से समर्थन हुआ है; फिर उसका चतुर्थ चरणागत अर्थांतरन्यास-रीति के विशेष-वाक्य द्वारा समर्थन किया गया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

सरजू-सरिता-तट बाटिका मैं, रट लागि रही बरटा[1] बिन संकहि।
तिहिंठाँ समुझै नहिं कोकिलकों चढ़ि बैठ्यौ जु काक रसालके अंकहि
सब ही की महानता होवति है, जब थान को आन परै जु अतंकहि।
कसतूरिका जानहिंगे जग मैं, नयपाल-भुवाल के भाल के पंकहि॥

—जसवंत-जसोभूषण।

यहाँ भी "कोकिल के स्थान पर जा बैठने से काक को महत्त्व प्राप्त होना" विशेषार्थ है, जिसका तृतीय चरणागत सामान्यार्थ से समर्थन होने पर भी चतुर्थ चरणागत अर्थांतरन्यास-रीति के विशेषार्थ से पुनः समर्थन किया गया है।

३ पुनः यथा—सवैया।

पैहौ मृगेंद्र[2] के अंगन[3] मस्त-मतंगन-मस्तक-मोती-बिसाला[4]।
गीदर-गेह परे खर-अस्थि किरातन के तन गुंज की माला॥
पैहौ सुपूत के पुस्तक पूत कपूत-निकेत[5] कुनीति कराला।
जैहौ जहाँ फल पैहौ जथा-थल ग्वाल के दूध कलाल के हाला[6]॥

—शिवकुमार 'कुमार'।

यहाँ भी पूर्व के तीन चरणागत विशेषार्थों का "जैहो जहाँ फल पैहो जथा-थल" सामान्यार्थ से और फिर "ग्वाल के दूध कलाल के हाला" विशेषार्थ से समर्थन हुआ है।

---

१ हंसिनी। २ सिंह। ३ अङ्गण = आँगन। ४ मतवाले हाथियों के मस्तकों के बड़े-बड़े मोती। ५ स्थान। ६ मदिरा।

(६१) प्रौढ़ोक्ति

जहाँ किसी कार्य के उत्कर्ष का ऐसा कारण कल्पित किया जाय जो वास्तव में न हो, वहाँ 'प्रौढ़ोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

आसुरी सुरी के हैं न किन्नरी परी के ऐसे,
हैं न हर-ती[1] के हू रती के अति फीके हैं।
मेनका घृताची[2] तें सची तें इन ही के गुन,
गौरव गोपाल-हिय हेतु अरुची के हैं॥
पाए कर[3] नीके पै लजाए करनी[4] के बाल,
मोरि मुख लाएँ लेत आएँ सुधी ही के हैं।
देखि दुलही के जंघ जात खुलि ही के दृग,
उलहे[5] अमा के मनु खंभ कदली के हैं॥

यहाँ, कदली-खंभ (काय) के उत्कर्ष का हेतु अमृत से उत्पन्न होना नहीं है, क्योंकि अमृत द्वारा उत्पन्न होने से कदली-खंभों में विशेष रमणीयता नहीं होती, तथापि चतुर्थ चरण में इसको उत्कर्ष का हेतु स्थापित किया गया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

सुर-धुनि-धार घनसार पारवती-पति,
या बिधि अपार उपमा कौं थौभियतु है।
भनत 'मुरार' ते विचार सौं बिहीन कवि,
आपने गँवारपन सौं न छोभियतु है॥

---

१ पार्वती। २ अप्सरा-विशेष। ३ शुंड। ४ हस्तिनी। ५ सरसे हुए।

भूप-अवतंस जसवंत ! जस रावरो तो,
अमल अतंत तीनों लोक लौभियतु है।
सरद की पून्यौं-निसि-जाए हंस को है बंधु,
छीर-सिंधु-मुकता समान सौभियतु है॥
—कविराजा मुरारिदान।

यहाँ भी हंसों का शरद-पूर्णिमा का जन्म और मोतियों का क्षीर-सागर से उत्पन्न होना उत्कर्ष का कारण न होने पर भी कारण ठहराया गया है।

३ पुनः यथा—दोहा।

अरुन सरस्वति-कूल के, बंधुजीव के फूल।
वैसे ही तेरे अधर, लाल लाल-अनुकूल॥
—राजा रामसिंह (नरवलगढ़)।

यहाँ भी नायिका के ओष्ठ के उपमान बंधुजीव-पुष्प का सरस्वती नदी के तट पर उत्पन्न होना उत्कर्ष का कारण न होते हुए भी वही कारण कल्पित किया गया है।

(६२) संभावना

जहाँ 'यदि ऐसा हो' इस प्रकार किसी अर्थ की कल्पना करके 'तो ऐसा हो' इस प्रकार से किसी संभावितार्थ (संभव अर्थ) की सिद्धि की जाय, वहाँ 'संभावना' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

अंग अलौकिक श्रीमति के, उपमाहु अपूरब यौं मन भावै।
बुद्धि-विधानन ज्ञानन तें, अलि ! जो चतुरानन तें बनि आवै॥

ह्वै उलटे कद्लीन के पेड़न, पै पचि एक हि पात बनावै।
तो कद्ली-तरु पीठरु जंघन को पद नीठि निहोरत पावै॥

यहाँ "यदि तृतीय चरणोक्त रीति से विधाता कदली-वृक्ष बना सके" इस अर्थ की कल्पना से कदली-वृक्षों एवं पत्र को श्रीराधिकाजी की जंघाओं एवं पीठ की समता प्राप्त होने का संभावितार्थ सिद्ध होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

विद्या-भूमि मैं न अर्थ-बीज होते अंकुरित,
छत्र-धर्म-दादुर दुराकृति दरसतौ।
मेधावी-मयूरन को मोद मिट जातो सूर-
बीरन को मान-मीन पंकहि परसतौ॥
अतुल उदार बलवंत! रतलाम-राज!
चातक-चतुर-मन तापन तरसतौ।
बाड़व-दरिद्र कवि-सागर सुकावतो, जो,
मालवेंद्र! तू न मास बारह बरसतौ॥
—बारहट महाकवि सूर्य्यमल्ल।

यहाँ भी "जो मालवेंद्र (महाराजा बलवंतसिंह रतलाम) बारहों मास न बरसते" इस अर्थ द्वारा "बिधा-भूमि मैं न अर्थ-बीज होते अंकुरित" आदि संभावितार्थ सिद्ध किए गए हैं।

३ पुनः यथा—छप्पय।

तो असार संसार जानि संतोष न तजते।
भीर-भार के भरे भूप कों भूलि न भजते॥
बुद्धि-बिवेक-निधान मान अपनो नहिं देते।
हुकुम बिरानो राखि लाख संपति नहिं लेते॥

जो यह नहिं होती ससि-मुखी, मृग-नयनी केहरि-कटी।
छबि-जटी छटा कैसी छुटी रस-लपटी छूटी लटी॥

—महाराजा सवाई प्रतापसिंह (भाषा-भर्तृहरि)।

यहाँ भी "जो शशि-मुखी आदि विशेषणोंवाली स्त्री न होती" इस कल्पितार्थ मे "संतोष नहीं छोड़ते" आदि संभावितार्थों का सिद्ध होना वर्णित है।

४ पुनः यथा—छप्पय।

सद्गुन सील सतीत्व सुमति सब नारि हु पावहिँ।
तैसि हि आपु समान सभ्य संतान बनावहिँ॥
नर स्वदेस-हित सदुपदेस-बरसा बरसावहिँ।
सदन-सदन सुंदर सनेह-सर सा सरसावहिँ॥
सत्वर सुलभ्य सुरलोक सम, सारे सुख के साज हों।
जदि अग्रसेन-महाराज-कुल "शिक्षित सकल समाज हो"॥

—शिवकुमार 'कुमार'।

यहाँ भी "जो महाराज अग्रसेन-वंशियों का सब समाज शिक्षित हो जाय" इस अर्थ द्वारा स्त्रियों में सद्गुण हो जाने आदि के संभावितार्थों की सिद्धि की गई है।

सूचना—(१) यहाँ 'तो' शब्द (वा इसके समाहार) के साथ तो संभावितार्थ आता ही है; तथा 'यदि ऐसा हो' इस प्रकार से एक अर्थ कल्पित किया जाता है। यह यद्यपि प्रायः भाषा-ग्रंथों के उदाहरणों में संभावित (होने योग्य) और असंभावित (न होने योग्य) दोनों प्रकार का देखा जाता है; तथापि यह अर्थ 'असंभावित' होने पर ही विशेष चमत्कार-पूर्ण होता है। जैसे—ऊपर के उदाहरणों में "दो उलटे कदली के पेड़ों पर एक पत्ते का बनाया जाना" इत्यादि।

(२) यद्यपि इस 'संभावना' अलंकार को काव्य-प्रकाशकार ने स्वतंत्र न लिखकर 'अतिशयोक्ति' का एक भेद ही माना है; और इसमें 'अतिशयोक्ति' का चमत्कार भी है; तथापि 'चंद्रालोक' एवं प्रायः भाषा-ग्रंथों में यह भिन्न माना गया है; और इसमें अन्य अर्थ की सिद्धि के लिये किसी अर्थ की कल्पना की जाती है तथा 'जो' 'तो' शब्दों की विशेषता है।

(३) पूर्वोक्त 'उत्प्रेक्षा' अलंकार में उपमेय में उपमान की तादात्म्य कल्पना की जाती है। जैसे—'मुख मानो चंद्र है'; और यहाँ किसी अन्य संभावितार्थ को सिद्ध करने के लिये 'यदि ऐसा हो' इस प्रकार से किसी अर्थ की कल्पना की जाती है। यही इनमें विभिन्नता है।

(६३) मिथ्याध्यवसिति

जहाँ किसी अर्थ का मिथ्यात्व[1] सिद्ध करने के लिये किसी अन्य मिथ्यार्थ का वर्णन किया जाय, वहाँ 'मिथ्याध्यवसिति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मूक, भेक[2] ज्यों गंग के, गावत अवगुन-व्रात।
त्यों रज-कन नभ-खगन के, अंध गनत अधरात॥

यहाँ श्रीगंगाजी में अवगुण होने (अर्थ) का मिथ्यात्व सिद्ध करने के लिये मूक एवं मेंडक द्वारा उनके अवगुणों का गान किया जाना और अंधे का अर्द्धरात्रि में गगन-पक्षियों के रज-कणों की गणना करना ये अन्य मिथ्यार्थ वर्णित हुए हैं। इस

---

१ यह मिथ्यात्व किसी अभिप्राय से गर्भित होता है। केवल मिथ्यार्थ की सिद्धि में अलंकारता नहीं होती। २ मेंडक को जिह्वा नहीं होती।

वर्णन में "श्रीगंगाजी में गुण हैं और अवगुणों का सर्वथा अभाव है" यह तात्पर्य गर्भित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

महाराज ! तेरी सब कीरति बखानैं, कवि,
'चंद' यह केवल अकीरति बखाने हैं।
आँधरेन देखि-देखि हमकों बताइ दई,
बहिरेन सुनी जैसी हम हू पिछाने हैं॥
कच्छपी के दूध[1] ही के सागर पै ताकी गीत,
बाँझ-सुत गूँगे मिलि गावत यौं जाने हैं॥
तामैं केते बड़े सस-सृंग के धनुषधारे,
रीझि-रीझि तिन्हैं मौज दैकै सनमाने हैं॥
—चंद बरदाई।

यहाँ भी भारत-सम्राट् पृथ्वीराज की अपकीर्ति का मिथ्यात्व सिद्ध करने के लिये अंधे का देखना आदि अनेक अन्य मिथ्यार्थ वर्णित किए गए हैं।

३ पुनः यथा—दोहा।

खल-बचनन की मधुरता, चाखि साँप निज श्रौन।
रोम-रोम पुलकित भए[2], कहत मोद गहि मौन॥
—मतिराम।

यहाँ भी दुष्टों के वचनों की मधुरता को मिथ्या सिद्ध करने के लिये "सर्प का उसको कानों से चखकर रोमांचित होकर मौन धारण किए हुए कहना" अन्य मिथ्यार्थ की कल्पना की गई है।

---

१ कच्छपी के दूध नहीं होता। २ सर्प को कान और रोम नहीं होते।

(६४) ललित

जहाँ किसी प्रस्तुत धर्मी के प्रति प्रस्तुत वृत्तांत का वर्णन न करके उसके प्रतिबिंब रूप किसी अप्रस्तुत घटना का वर्णन किया जाय, वहाँ 'ललित' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कौरव कपट-कुमंत्र करि, कुंती-सुतन सँताइ।
होनहार-बस ह्वै, लियौ, कालकूट-फल खाइ॥

यहाँ किसी अत्याचारी प्रस्तुत धर्मी के प्रति किसी का कथन है—"दुर्योधनादि कौरवों ने पांडवों को सताकर अपना सर्वनाश कर लिया" किंतु इस प्रस्तुत घटना का वर्णन न करके इसके प्रतिबिंब रूप कालकूट-फल भक्षण करने का अप्रस्तुत वृत्तांत कहा गया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

बात सुनै नहिं तू जन की, मन की करतूतिन मैं मन लावै।
लाभ-अलाभ नहीं समुझै, उरझी-सुरझी न 'गुलाब' लखावै॥
काज-अकाज समान गनै, अपकीरति-कीरति सी भल भावै।
तू कसि है! घर आवति संपति हाथन द्वार किँवार लगावै॥
—गुलाबसिंह।

यहाँ भी प्रस्तुत धर्मी कलहांतरिता नायिका को सखी द्वारा पति के मनाने पर भी न मानने का उपालंभ देने के रूप में प्रस्तुतार्थ का वर्णन नहीं किया; किंतु उसके प्रतिबिंब रूप आती हुई लक्ष्मी को देखकर घर का दरवाजा बंद करने का अप्रस्तुतार्थ वर्णन किया गया है।

सूचना—पूर्वोक्त 'समासोक्ति' में प्रस्तुत के वर्णन में अप्रस्तुत की प्रतीति होती है, 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' में अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा प्रस्तुतार्थ सूचित किया जाता है, 'निदर्शना' में प्रस्तुत-अप्रस्तुत-वाक्यों में एकता का वर्णन होता है, 'रूपकातिशयोक्ति' में उपमेय का उपमान में लोप हो जाता है तथा केवल उपमान का वर्णन होता है; और यहाँ किसी प्रस्तुत धर्मी के प्रति प्रस्तुतार्थ का वर्णन न करके उसके प्रतिबिंब रूप घटना का वर्णन होता है; अतः उक्त चारों अलंकारों से यह विभिन्न है।

(६५) प्रहर्षण

जहाँ हर्ष वर्द्धक अर्थ की सिद्धि का वर्णन हो, वहाँ 'प्रहर्षण' अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१ प्रथम प्रहर्षण

जिसमें उपाय के विना ही उत्कंठितार्थ की सिद्धि हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

फागन गमन-बिदेस-पिय, सुनत लगी उर लाइ।
भागन कछु बरषा भई, सके न साजन जाइ॥

यहाँ नायिका के पति का विदेश-गमन न होने के वांछितार्थ का अकाल-वर्षा होने के कारण, विना उपाय के ही सिद्ध होना वर्णित किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

कर-मुँदरी की आरसी, प्रतिबिंब्यौ प्यौ आइ।
पीठि दिए निधरक लखै, इकटक दीठि लगाइ॥
—विहारी।

यहाँ भी नायिका के नायक को दृष्टि भर कर देखने के अभीष्टार्थ का, विना किसी उपाय के, आरसी में प्रतिबिंब द्वारा सिद्ध होना वर्णित है।

सूचना—पूर्वोक्त 'समाधि' अलंकार में कर्त्ता के कुछ उपाय करते हुए अकस्मात् कारणांतर की प्राप्ति से सुगमता पूर्वक कार्य हो जाता है; और यहाँ विना उपाय किए ही वांछितार्थ की सिद्धि होती है। यही इनमें पृथक्ता है।

२ द्वितीय प्रहर्षण

जिसमें वांछितार्थ से भी अधिक लाभ हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कछु धन लौं गे द्वारका, जदपि न कह्यौ लजाइ।
तदपि लखी त्रय-लोक-निधि, सदन सुदामा आइ॥

यहाँ कुछ द्रव्य की इच्छा से द्वारका जानेवाले सुदामाजी को वांछित से अधिक त्रैलोक्य-संपत्ति प्राप्त होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

साहि-तनै सरजा की कीरति सौं चारौं ओर,
चाँदनी-बितान छिति-छोर छाइयतु है।
'भूषन' भनत ऐसो [illegible] है, जाको,
द्वार भिच्छुकन सौं सदाई भाइयतु है॥
महादानी सिवाजी खुमान या जहान पर,
दान के प्रमान जाके यों गनाइयतु है।
रजत की हौंस किए हेम पाइयतु जासौं,
हयन की हौंस किए हाथी पाइयतु है॥

—भूषण।

यहाँ भी छत्रपति शिवाजी द्वारा याचकों को चाँदी की इच्छा करने पर सुवर्ण एवं घोड़ों की इच्छा करने पर हाथी प्राप्त होने का वर्णन है।

३ तृतीय प्रहर्षण

जिसमें वांछितार्थ की प्राप्ति के साधन का उपाय करने में ही साक्षात् फल प्राप्त हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सूखत प्रान समान निज, धानन देखि किसान।
पूछन गो जोसिहिं जतन, मग हि मिले मघवान॥

यहाँ किसी किसान के वृष्टि का उपाय पूछने के लिये ज्योतिषी के घर जाते समय मार्ग में ही सक्षात् वृष्टि-फल प्राप्त होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

ताके मुख-चंद करो मंद दुति चंद हू की,
ऐसी ना निहारी कोऊ भूतल मैं आइकै।
सुरन की कन्या हू न होइहैं समान जाके,
देखे ही बनत कह्यौ जात न बनाइकै॥
वाको तन भेटिबे की तालाबेली[1] लागी अति,
मिलिबो सु वाको कहूँ होत सुख दाइकै।
कीन्हौं है उपाय तातें दूती के बुलाइबे को,
त्यौं ही वह आइ आप मिली मन भाइकै॥

—अलंकार-आशय।

---

१ घबराहट, बेचैनी।

यहाँ भी नायिका से मिलने के लिये नायक द्वारा केवल दूती को बुलाने का यत्न करने में स्वयं नायिका के आकर मिल जाने के रूप में साक्षात् फल-प्राप्ति होने का वर्णन है।

सूचना—पूर्वोक्त 'सम' अलंकार के तृतीय भेद में उस कार्य की सिद्धि होती है जिसके लिये उद्यम किया जाय; और यहाँ (तृतीय भेद में) उसका साधन खोजने में ही साक्षात् अर्थ की सिद्धि हो जाती है।

(६६) विषादन

जहाँ इच्छा के विपरीतार्थ की प्राप्ति हो, वहाँ 'विषादन' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

स्याम-सखा! घनस्याम की, हम हेरति रहिं राह।
उन अनन्य - चित - चातकिन, अजिन पठाई वाह!॥

यहाँ गोपिकाओं की श्रीश्यामसुंदर के आगमन की इच्छा के विपरीत उनको उद्धव द्वारा (ब्रह्मचर्य एवं वैराग्य के साधनभूत) अजिन (मृग-चर्म) का प्राप्त होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—सवैया।

जाइगी बीत ये रात सोहाइगो वो अरुनोदय की अरुनाई।
भानु-प्रभा बिकसाइगी वो, खुलि जाइगी कंज-कली हू मुचाई॥
यों जिय सोंचति ही अलिनी, नलिनीगत कोस प्रदोष रुकाई।
हाय! इतेक में आ गजनी रजनी ही में पंकजनी धरि खाई॥

—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार।

यहाँ भी सायंकाल से कमल-कोश में रुकी हुई भ्रमरी की सूर्योदय होते ही बंधन से विमुक्त हो जाने की अभिलाषा के विरुद्ध उसका प्राण-नाश होना वर्णित है।

३ पुनः यथा—दोहा।

मन-चींती ह्वैहै नहीं, हरि-चींती ततकाल।
बलि चाह्यौ अकास कों, हरि पठयौ पाताल॥

—अज्ञात कवि।

यहाँ भी दैत्यराज-बलि को स्वर्ग-राज्य-प्राप्ति की इच्छा के विरुद्ध पाताल प्राप्त होने का वर्णन है।

सूचना—स्मरण रहे कि कुछ आचार्यों ने इस 'विषादन' अलंकार को 'विषम' के अंतर्गत ही माना है; किंतु 'विषम' के तीसरे भेद में अभीष्ट के लिये उद्योग करने पर उसके विपरीत अनिष्ट होना है: और यहाँ केवल संभावित (सोचे हुए) इष्ट के स्थान पर अनिष्ट-प्राप्ति का वर्णन होता है।

(६७ उल्लास

जहाँ एक के गुण-दोष से दूसरे का संबंध कहा जाय, वहाँ 'उल्लास' अलंकार होता है। इसके चार भेद हैं—

१ प्रथम उल्लास

जिसमें एक के गुण से दूसरे को गुण प्राप्त हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

किंतु संत-संगति तरनि, इतर सुकृत खद्योत।
होत हेम पारस परसि, लोह तरत लगि पोत॥

यहाँ लोहे को पारस एवं पोत (नौका) के संसर्ग से हेम (सुवर्ण) हो जाने एवं तर जाने के गुणों की प्राप्ति का वर्णन है।

२ पुनः यथा—सवैया।

गुच्छनि के अवतंस लसैं सिखि-पच्छनि अच्छ किरीट बनायौ।
पल्लव लाल समेत-छरी कर पल्लव से 'मतिराम' सुहायौ॥
गुंजन के उर मंजुल हार, निकुंजन तें कढ़ि बाहर आयौ।
आज को रूप लखें ब्रजराज को आज हि आँखिन को फल पायौ॥
—मतिराम।

यहाँ भी श्रीकृष्ण के रूप गुण से दर्शन करनेवालों को आँखों का फल पाने की गुण-प्राप्ति का वर्णन है।

२ द्वितीय उल्लास

जिसमें एक के दोष से दूसरे को दोष प्राप्त हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सजन! सँदेसे बिपति के, कहौ कहै किमि कोइ?।
पानि परसि कागद, कलम, मसि हु बिरह बस होइ॥

यहाँ प्रोषित-पतिका नायिका का अपने पति के प्रति प्रलाप है कि आपको पत्र लिखते समय कागज, कलम एवं स्याही भी मेरे वियोगाग्नि-विदग्ध-कर-स्पर्श (दोष) से संताप (दोष)-युक्त हो जाती है।

२ पुनः यथा—दोहा।

संगति-दोष लगै सबनि, कहे ते साँचे बैन।
कुटिल-बंक भ्रू-संग भे, कुटिल-बंक-गति नैन॥
—विहारी।

यहाँ भी भ्रकुटियों के बंकता-दोष से नेत्रों में भी टेढ़ेपन का दोष प्राप्त होना वर्णित है।

प्रथम और द्वितीय का उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—दोहा।

मम उर मूरति राम की, मम मूरति उर-राम।
यहाँ गाढ़ता नरन की, उत तलफत है बाम॥
—अज्ञात कवि।

यहाँ श्रीहनुमानजी से जगदंबा जानकी का कथन है कि मेरे मन में श्रीरामजी की मूर्ति रहने के कारण पुरुष की तरह धैर्य है एवं उनके चित्त में मेरी मूर्ति होने से स्त्रियों की सी व्याकुलता है; अतः एक के गुण से दूसरे को गुण और एक के दोष से दूसरे को दोष प्राप्त होने के कारण यह उभय पर्यवसायी है।

३ तृतीय उल्लास

जिसमें एक के गुण से दूसरे को दोष प्राप्त हो।

१ उदाहरण यथा—छप्पय।

पढ़ि कवित्त कवि पार लहैं संसार-धार को।
कविता सौं अति सुगम पंथ कैलास-द्वार को॥
कविता-बल बनिता रिझाइ रस-बस करि लीजिय।
कविता सौं बस नृपति बिदित जस चहुँ दिसि कीजिय॥
कविबर-मुखेंदु तें श्रवत है सरस काव्य-रस अमिय सम।
समुझत चकोर सज्जन मरम अबुधन-उर उपजत भरम॥

यहाँ छठे चरण में कवि के काव्य-रस गुण से मूर्खों को भ्रम-दोष होने का वर्णन है।

२ पुनः यथा—चौपाई (अर्द्ध)।

चलति महा धुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर-नारी॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ भी श्रीहनुमानजी के गर्जन गुण से निशाचरियों को गर्भपात रूपी दोष होना कहा गया है।

४ चतुर्थ उल्लास

जिसमें एक के दोष से दूसरे को गुण प्राप्त हो।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

देवन देवऋषी ऋषिराजन राजऋषीन रचे रस सारे।
बिप्र बिनिंद्यन[1] बंदिन औ बर बारठ-बृंदन हू बिसतारे॥
ते कविराज! निवाजि, करौ जनि रोष, हरौ मति-दोष हमारे।
नैंक दया करि देखहुगे तो बिसेष लिखे गुन-लेख तिहारे॥

यहाँ ग्रंथकार की कविता की निकृष्टता के दोष द्वारा देवताओं आदि महाकवियों को उनके काव्यों की उत्कृष्टता का गुण प्राप्त होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

गुन सौं सु गुन दोष दोष सौं प्रगट होत,
परम प्रसिद्ध यह बात है नरन मैं।
'रघुनाथ' की दोहाई यह अद्भुत रीति,
प्रगट्यौ सु गुन, दोष प्रगट करन मैं॥
जैसो मोसौं कीन्हौं उन तैसोई मरीच हू सौं,
पायौ वै मुकुत-पद आपने मरन मैं।
लाग्यौ मेरे उर मैं दसानन-चरन सो तो,
मो हू गुन भयौ, आयौ राम को सरन मैं॥
—रघुनाथ।

यहाँ भी रावण के दोष से मारीच को मुक्ति एवं विभीषण को श्रीरघुनाथजी की शरण (गुण) प्राप्त होना वर्णित है।

---

१ अनिंदित (प्रशंसनीय)।

तृतीय और चतुर्थ का उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—दोहा।

अनचोरे चोरी लगै, कारे कच-अँधियार।
सेत चिहुर[1] की चाँदनी, चोरौ साहूकार॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ युवा नायिका के काले केशों (गुण) से समीपस्थ साधु पुरुष को भी लांछन (दोष) लगने एवं गत-यौवना स्त्री के श्वेत केशों (दोष) से समीपस्थ दुराचारी पुरुष को भी साधुता (गुण) प्राप्त होने का वर्णन है।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'पंचम विभावना' में विलोम कारण से कार्योत्पत्ति होती है; और यहाँ के तृतीय और चतुर्थ भेद में भी उससे मिलते-जुलते उदाहरण होते हैं; किंतु यहाँ एक के गुण से दूसरे को दोष और एक के दोष से दूसरे को गुण प्राप्त होता है।

(२) पूर्वोक्त 'असंगति' अलंकार के प्रथम भेद से इस 'उल्लास' अलंकार के प्रथम और द्वितीय भेद मिलते-जुलते हैं; किंतु भिन्नता यह है कि वहाँ कार्य-कारण का, और यहाँ प्राकृतिक गुण-दोष का संबंध होता है।

(६८) अवज्ञा

जहाँ एक का गुण या दोष दूसरे को प्राप्त न हो, वहाँ 'अवज्ञा' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम अवज्ञा, गुण से गुण की अप्राप्ति की

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मेरे दृग-बारिद बृथा, बरसत बारि-प्रबाह।
उठत न अंकुर नेह को, तो उर-ऊषर माँह॥
—मतिराम।

---

1 केश।

यहाँ नायिका के नेत्र रूपी बादलों के बरसने (गुण) से नायक के ऊषर-भूमिवत् हृदय में प्रेमांकुर (गुण) का उत्पन्न न होना वर्णित हुआ है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

हाथ गहे हरि ने हित सौं, सुत-सागर लच्छि के आदि ददाई[1] ।
अंबुज चक्र हु तें अधिके गुन रावरे कों पहुँचै न गदाई ॥
लायक है मुख लागत हो तिनके हित मौन गहौ न कदाई ।
जुद्ध असंख्यन जीति बजे, पै रहे तुम संख-के-संख[2] सदाई ॥

—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी विष्णु-भगवान् के कर एवं मुख से संपर्क होने पर भी शंख को उनका गुण प्राप्त न होना वर्णित है ।

२ द्वितीय अवज्ञा, दोष से दोष की अप्राप्ति की

१ उदाहरण यथा—सवैया ।

कोरी कबीर चमार रैदास हौ जाट धना सधना हौ कसाई ।
गीध गुनाह भख्यौ ई हुत्यो, भरि जन्म अजामिल कीन्हीँ ठगाई ॥
'दास' दई इनको गति जैसी, न तैसी जपीन्ह तपीन्ह हू पाई ।
साहेब साँचो न दोष गनै, गुन एक लहै जु समेत-सचाई ॥

—भिखारीदास ।

यहाँ महात्मा कबीरादि के कोरी (छोटी जाति) आदि दोषों का परमात्मा द्वारा ग्रहण न होना कहा गया है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

जाति नहीं प्रभुता 'रघुनाथ' जो सेवरै मान्यौ न देव-धुनी कों ।
मौल घटै नहिं पामर पाइकै, जो कहुँ देत है फेंकि चुनी कों ॥

---

१ बड़ा भाई । २ मूर्ख-के मूर्ख ।

मैली परै महिमा न कछू, जो हूँ स्यौ कोउ पातकी देखि मुनी कों।
ठाकुर कूर कियौ जो न आदर लागत है नहिं दोष गुनी कों॥
—रघुनाथ।

यहाँ भी सेवड़े (जैन-साधु) के देव-धुनी (गंगा) को न मानने के दोष का प्रभाव श्रीगंगाजी की प्रभुता पर न पड़ने आदि के चार अलंकार हैं; इस कारण यह माला है।

उभय पर्यवसायी १ उदाहरण यथा—दोहा।

यदपि रही उर-स्याम तउ, गहे न रँग दुहुँ गात।
गंगोदक गहि तुंबिका, मधुर न वह करुवात॥

यहाँ श्रीप्रियाजी का निरंतर श्रीकृष्ण के हृदय में वास करने पर भी उनके गौर वर्ण गुण का श्रीकृष्ण को और श्रीकृष्ण के श्याम वर्ण दोष का श्रीप्रियाजी को प्राप्त न होना वर्णित है; तथा दृष्टांत रूप से तुंबिका के श्रीगंगाजल का मधुर गुण एवं श्रीगंगा-जल के तुंबिका का कटुत्व दोष ग्रहण न करने का वर्णन है।

सूचना—इस 'अवज्ञा' अलंकार के दोनों भेद क्रमशः पूर्वोक्त 'उल्लास' अलंकार के प्रथम और द्वितीय भेद के विरोधी हैं।

(६६) अनुज्ञा

जहाँ कोई उत्कृष्ट गुण देखकर किसी दोष-युक्त पदार्थ की भी इच्छा की जाय, वहाँ 'अनुज्ञा' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कहति सुरी असुरी, करी, नरी न क्यों करतार?।
इहिं ग्वालिनि लौं गुहत लखि, निज हाथन हरि हार॥

यहाँ देवासुर-जाति से मनुष्य-जाति में निकृष्टता दोष होते हुए भी श्रीकृष्ण महाराज के संयोग रूप उत्कृष्ट गुण को देखकर देवासुर-स्त्रियों की व्रज-गोपिकाएँ होने की इच्छा का वर्णन है।

२ पुनः यथा—दोहा।

गुरु समाज भाइन्ह-सहित, राम राजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिय माँग सब कोउ॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ भी श्रीरामजी के रहते हुए उनके राज्य में मरने से उत्तम लोकों की प्राप्ति रूपी उत्कट गुण के लिये अयोध्या की प्रजा द्वारा मरण रूपी दोष की इच्छा करने का वर्णन है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

द्वारपाल-लकुटी सौं मुकुट महीपन के,
देखिए अनेक गैंद जैसे नाचियतु है।
संचरत संकित सो सिन्धु-देस-बादसाह[१],
ऐसो मरुनाथ राज-द्वार राचियतु है॥
सादर प्रवेस ह्वै 'मुरार' कविराज जहाँ,
संमुख समीप बैठि, कीत[२] बाँच्यियतु है।
सार मान श्रेष्ठ सनमान जसवंत! तेरो,
जुग-जुग जाचक को जन्म जाचियतु है॥
—कविराजा मुरारिदान।

---

१ हैदराबाद (सिंध) के नवाब का राज्य नष्ट होने से जोधपुर-नरेश महाराजा विजयसिंहजी के समय से उनको जोधपुर में जागीर मिली हुई है। २ कीर्त्ति।

ताहू को इक अंग अंग प्रति अंग हि पावत।
राखत हैं करि कष्ट दिवस-निसि चहुँ दिसि धावत ॥
आपुनी और की होति यह यातें पचि-पचि रचि रहे।
दृढ़ ज्ञानी गोपीचंद से बुरी जानिकै बचि रहे ॥

—महाराजा सवाई प्रतापसिंह (भाषा भर्तृहरि)।

यहाँ भी उत्कट गुणवती पृथ्वी को कुलटा एवं कष्ट-साध्य (दोष-युक्त) मानकर राजा गोपीचंद का उससे बच रहना (उसको त्यागना) वर्णित हुआ है।

सूचना— यद्यपि यह 'तिरस्कार' अलंकार प्रायः ग्रंथकारों ने नहीं लिखा है; तथापि रसगंगाधरकार के इसको स्वतंत्र अलंकार स्वीकार करने एवं उक्त 'अनुज्ञा' अलंकार का विरोधी होने के कारण हमने इसको स्वतंत्र अलंकार मानना उचित समझा है।

(७१) लेश

जहाँ दोष का गुण रूप से या गुण का दोष रूप से वर्णन किया जाय, वहाँ 'लेश' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम लेश, दोष को गुण कहने का

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अनहित हू संतन कियौ, अंत हरत संताप।
नलकूबर-मनिग्रीव लौं, हित भो नारद-साप ॥

यहाँ नारद के शाप रूपी दोष का (कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव के लिये) गुण रूप में वर्णन किया गया है।

२ पुनः यथा—दोहा ।

चित पितु-घातक-जोग लखि, भयौ भए सुत सोग ।
फिर हुलस्यौ जिय जोयसी, समझ्यौ जारज-जोग ॥
—विहारी ।

यहाँ भी किसी ज्योतिषी द्वारा पुत्र-जन्म में जारज-योग रूपी दोष को (पितु-घातक-योग देखकर) गुण मानना वर्णित हुआ है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

कोटि बिघन दुख मैं सुजन, तजै न हरि को नाम ।
जैसे सती हुतास कौं, गनै आपनो धाम ॥
—दीनदयालगिरि ।

यहाँ भी सती का अग्नि दोष को धाम (सती-लोक) गुण समझना कहा गया है ।

२ द्वितीय लेश, गुण को दोष कहने का

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

आ-नखसिख सखि ! स्याम की, सुखमा गई समाइ ।
दीह दृगन को दोष यह, राधा रही लुभाइ ॥

यहाँ श्रीराधिकाजी के नेत्रों की दीर्घता गुण को श्रीकृष्ण में आसक्त हो जाने से दोषमय बतलाया गया है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

प्रतिबिंबित तो बिंब मैं, भू-तम भयौ कलंक ।
निज-निरमलता दोष यह, मन मैं मान मयंक ! ॥
—मतिराम ।

यहाँ भी चंद्र-बिंब के प्रकाश गुण को उसमें पृथ्वी के अंधकार का प्रतिबिंब पड़ने से कलंक का कारण मानकर दोष बतलाया गया है।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'व्याजस्तुति' अलंकार में स्तुति के शब्दों से निंदा का या निंदा के शब्दों से स्तुति का तात्पर्य होता है; और यहाँ ('लेश' में) किसी दोष को गुण रूप में या किसी गुण को दोष रूप में किसी अंश में मान लिया जाता है। यथा—'अनहित हू' में शाप को गुण एवं 'आ-नखसिख' में बड़े नत्रों को दोष ही मान लिया गया है। उससे इसमें यही अंतर है।

(२) पूर्वोक्त 'उल्लास' अलंकार में एक का गुण या दोष दूसरे को प्राप्त होता है; और यहाँ किसी के दोष को गुण या गुण को दोष रूप से कल्पित किया जाता है। यही भिन्नता है।

(७२) मुद्रा

जहाँ प्रस्तुतार्थ-प्रतिपादक शब्दों से किसी अन्य सूचनीय अर्थ का भी बोध कराया जाय, वहाँ 'मुद्रा' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—मोतीदाम छंद।

लहौ सुर-भोग सरीर निराग। रहौ वय वृद्ध सछेमक योग।
न जाँचहु आन बिना इक राम। जचौ कवि-काव्यन मोतियदाम॥

यहाँ किसी राजा के प्रति किसी विद्वान् का आशीर्वाद प्रस्तुतार्थ है, इसी के 'जचौ' एवं 'मोतियदाम' शब्दों से "चार जगण (ISI) का मोतीदाम छंद होता है" यह किसी छात्र को सूचित किया गया है।

२ पुन: यथा—कवित्त।

मेघ देस-देस नटखट आसा पूरि आए,
कान्हर लै गूजरी हिँडार छबि-छाकी है।
दीप-दीप भैरव भए हैं नारि-बृंदन सौं,
ललित सुहाई लीला सारँग-छटा की है॥
स्यामल तमाल कोस-कोस लौं कुमोद कीन्हौं,
'अंबादत्त' सोहनी त्यौं छाया बदरा की है।
कोऊ सुघरई सौं श्रीकृष्ण कौं जु पाऔं तब,
आली! या कल्यान की बहार बरषा की है॥

—पं० अंबिकादत्त व्यास।

यहाँ भी वर्षा-ऋतु-प्रतिपादक शब्दों से मेघ, देश, नट, खट, आशा, पूरिया, कान्हरा, गूजरी, हिंडोल, दीपक, भैरव, ललित, सूहा, लीलावती, सारंग, श्याम, मालकोश, कौसिया, कामोद, सोहनी, छाया, सुघरई, श्री, अलैया, कल्याण और बहार राग-रागनियों के नाम भी सूचित किए गए हैं।

३ पुन: यथा—कवित्त।

सूर-सुखमा की सोई सुंदर चमतकार,
देव सतकार को सनेह सोई सनो है।
गलिन-गलिन रसलीन तैसे देखि परें,
बिमल बिहारी को बिभव सोई घनो है॥
रसखानि चाव भरे लूटत रसिक अजौं,
नागरी किसोरी को तनाव सोई तनो है।
सुजस कहानी ब्रजराज की सुखद सोई,
सोई बृंदाबन है बनाव सोई बनो है॥

—पं० कृष्णबिहारी मिश्र।

यहाँ भी वृंदावन-वर्णन प्रस्तुतार्थ से सूरदास, देव, रसलीन बिहारी, रसखान, नागरीकिशोरी और व्रजराज इन महाकवियों के नाम भी व्यक्त होते हैं।

यह अलंकार नाटकों और कथाओं के प्रारंभ में (किसी निपुण कवि-निर्मित) एक ही पद्य में आगे कहे जानेवाले समस्त वृत्तांत के सूचित करने में भी देखा जाता है—

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

गरल तें भीम के, सु ज्वाला हू तें पाँचहू के,
द्रौपदी के सभा औ बिराट बन तीन बार।
किरीटी[1] के अच्छर[2] के साप तें जुधिष्ठिर कौं,
मारिबे कौं, मरिबे कौं उदै भए असी-धार॥
दुरबासा सापिबे कौं आदि ताकौं आदि दैके,
'सरूपदास' केते कहे एक छंद मैं प्रकार।
तेई मेरे ग्रंथ-आदि मंगल उदय करौ,
एते ठाँ अमंगल कौं मंगल करनहार॥

—बारहठ स्वरूपदास साधु।

यह कवित्त स्वामी स्वरूपदास-कृत 'पांडव-यशेंदु-चंद्रिका' के आदि का है। इस 'मंगलाचरण' में उक्त ग्रंथ का समस्त वृत्तांत भी संक्षेप में बतला दिया गया है।

१ अर्जुन। २ अप्सरा।

(७३) रत्नावली

जहाँ प्रस्तुतार्थ के वर्णन में कुछ अन्य क्रमिक पदार्थों के नाम भी यथाक्रम रखे जायँ, वहाँ 'रत्नावली' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

स्याम के सनेह सौं सिँगार, मुसुकान हास,
सोक-करुनारे परे प्यारे दह[१] भोरी के।
रौद्र रतनारे मान-रोष तें निहारे नैंक,
बीर सौति-मान-भंग को उमंग जोरी के॥
द्रुमन-दवागि देखि भय भो भयानक सो,
त्यौं बिभत्स दीखें अन्य होति घृना गोरी के।
अद्भुत अहेरी एन[२], सांत सुनि ऊधो बैन,
नव रस-ऐन[३] नैन नवल-किसोरी के॥

यहाँ श्रीराधिकाजी के नेत्र-वर्णन प्रस्तुतार्थ में शृंगारादि नव रसों के नाम भी क्रमानुसार रखे गए हैं।

२ पुनः यथा—कवित्त।

आन नँदरानी सौं कह्यौ है काहू टेरि आज,
माटी खात देख्यौ सुत तेरो या सदन मैं।
सुनिकै रिसाइ सुत बोलि मुख खोलि देख्यौ,
एक ब्रह्म दोऊ भेद तीनों देव तन मैं॥
चारों बेद पाँचों भूत छहों ऋतु सातों ऋषि,
आठों बसु नवों ग्रह दसहूँ दिसन मैं।
ग्यारहों महेस औ दिनेस बारहों बिलोकि,
तेरहों रतन लोक चौदहों बदन मैं॥

—अलंकार-आशय।

---

१ कालीदह। २ शिकारी मृग। ३ स्थान।

यहाँ भी श्रीकृष्ण के मृत्तिका-भक्षण प्रस्तुतार्थ के वर्णन में एक से चौदह तक की संख्या का भी क्रमानुसार वर्णन हुआ है।

(७४) तद्गुण

जहाँ अपना गुण त्यागकर अन्य समीपस्थ वस्तु का गुण ग्रहण किया जाय, वहाँ 'तद्गुण' अलंकार होता है।[1]

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

चंदन चढ़ाएँ अंग केसर सुरंग होत,
हार पहिराएँ चारु चंपक चमेली तें।
सुखमा सिंगार क्यों सरीर सुकुमार सहै,
पिय-मन-भार हू उठै न अलबेली तें॥
लाज ब्रजराज हू तें आज लौं न जाति जाकी,
रात को कहै न बात साथिन-सहेली तें।
बरसै पियूष जाके दरसें दृगनि क्यों न,
सरसै सनेह ऐसी नायिका नवेली तें॥

यहाँ प्रथम चरण में चंदन एवं चमेली के हारों का अपना श्वेत गुण त्यागकर नायिका की देह-द्युति का पीत गुण ग्रहण करना वर्णित हुआ है।

२ पुनः यथा—सवैया।

कौहर[2] कौल[3] जपा-दल विद्रुम का इतनी जो बँधूकमैं कोति है।
रोचन रोरी रची मेहँदी 'नृपसंभु' कहै मुकता सम पोति है॥

---

१ इस अलंकार के संबंध की सूचना वक्ष्यमाण 'अतद्गुण' अलंकार में देखिए। २ इंद्रायण का फल। ३ लाल कमल।

पाँय धरै ढरै इंगुर सो तिनमैं मनी पायल की घनी जोति है।
हाथ द्वै-तीन लौं चारिहूँ ओर तें चाँदनी चूनरी के रँग होति है॥

—राजा शंभुनाथसिंह सोलंकी 'नृपशंभु'।

यहाँ भी चाँदनी का अपना श्वेत गुण त्यागकर नायिका के चरणों की लालिमा ग्रहण करना वर्णित हुआ है।

तद्गुण-माला १ उदाहरण यथा—दोहा।

अहि-मुख पर्यौ सु बिष भयौ, कदली भयौ कपूर।
सीप पर्यौ मोती भयौ, संगति के फल 'सूर'॥

—महात्मा सूरदास।

यहाँ स्वाति-जल-बिंदु का सर्प के मुख, कदली एवं सीप के संसर्ग से क्रमशः विष, कपूर एवं मोती हो जाना वर्णित है; अतः माला है। इसमें रस, गंध और रूप तीनों गुणों का ग्रहण किया जाना कहा गया है।

(७५) पूर्वरूप

जहाँ किसी के गए हुए गुण[1] की पूर्ववत् पुनः प्राप्ति का वर्णन हो, वहाँ 'पूर्वरूप' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम पूर्वरूप

जिसमें वस्तु के अस्तित्व में गत गुण की पुनः प्राप्ति हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

कुदिननि बिन संपति भए, नगन[2] नगन-समुदाइ[3]।
सुदिननि लहे पलास[4] पुनि, रहे फूल-फल छाइ॥

१ रूप, रंग, स्वभावादि। २ पत्रादि से रहित। ३ वृक्षों के झुंड। ४ पत्ते।

यहाँ वृक्षों के पत्र-पुष्पादि (शिशिरांत में) गए हुए गुणों का (वसंत में) फिर प्राप्त होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सेत कमल कर लेत ही, अरुन कमल-छबि देत।
नील कमल निरखत भयौ, हँसत सेत को सेत॥

—बैरीसाल।

यहाँ भी श्रीराधिकाजी के हाथों में लेते ही श्वेत कमल का रंग लाल होना, पुनः उनके नेत्रों द्वारा देखे जाने से नीला होना और फिर हँसने से ज्यों का त्यों श्वेत होना वर्णित है।

२ द्वितीय पूर्वरूप

जिसमें वस्तु का विनाश हो जाने पर भी पूर्वावस्था की पुनः प्राप्ति हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मरि सुबरन भस्मी भयौ, गयौ रूप गुन रंग।
बैद-क्रिया तें पुनि नयो, भयौ सहित-सब-अंग॥

यहाँ सुवर्ण का भस्मी होकर नष्ट हो जाने पर भी वैद्य-क्रिया द्वारा पुनः पूर्वावस्था को प्राप्त होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

नृप-अरि-निस्वासानलहिं, सूखे सर-सरितासु।
पुनि नैनन के नीर तें, भे परिपूरन आसु॥

—जसवंत-जसोभूषण।

यहाँ भी किसी राजा द्वारा पराजित शत्रुओं के निःश्वासों से सरोवर एवं नदियों के सूखकर नष्ट हो जाने पर भी उनके अश्रुओं से पुनः पूर्ववत् परिपूर्ण हो जाने का वर्णन है।

(७९) अतद्गुण

जहाँ अन्य समीपस्थ वस्तु का गुण ग्रहण न किया जाय, वहाँ 'अतद्गुण' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अरुन-कंज-हिय हरि-मधुप, गोपिन राखे गोइ।
पै न चढ़ै रँग स्याम पै, साँच कहैं सब कोइ॥

यहाँ गोपिकाओं के अनुराग-रंजित-रक्त-कमल रूपी हृदय में श्रीकृष्ण रूपी श्याम भ्रमर के छिपे रहते हुए भी उनके अनुराग-रक्त गुण का श्रीकृष्ण द्वारा ग्रहण न होना कहा गया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

एरी! यह तेरी दई, क्यौं हूँ प्रकृति न जाइ।
नेह भरे हिय राखिए, तू रूखिए लखाइ॥

—विहारी।

यहाँ भी नायक के स्नेह (तैल)-पूरित हृदय में रहते हुए भी नायिका द्वारा स्नेह गुण ग्रहण न करना बतलाया गया है।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'तद्गुण' एवं इस 'अतद्गुण' अलंकारों की परिभाषाओं में दिए हुए 'गुण' शब्द से यद्यपि किसी-किसी भाषा-अलंकार-ग्रंथ में रंग मात्र ग्रहण किया गया है तथा संस्कृत एवं भाषा के उदाहरण भी प्रायः रंग-विषयिक ही मिलते हैं, तथापि 'कुवलयानंद' आदि प्रायः ग्रंथों में 'गुण' शब्द को रूप-रस-गंधादि-वाचक लिखा है एवं इनके उदाहरण भी मिलते हैं। यथा—

तद्गुण—

पिय के ध्यान गही-गही, रही वही ह्वै नारि।
आप-आप ही आरसी, लखि, रीझति रिझवारि॥

—विहारी-सतसई।

अतद्गुण—

> बिरह-व्यथा-जल-परस-बिन, बसियत मो हिय-ताल।
> कछु जानत जल-थंभ-विधि, दुर्योधन लौं लाल॥
>
> —बिहारी-सतसई।
>
> क्यारी करै कपूर की, मृगमद-बिरवा बंध।
> सर्व सुधा सींचै तऊ, हींग न होइ सुगंध॥
>
> —अलंकार-आशय।

इन तीनों उदाहरणों में क्रमशः रूप, रस (जल) और गंध गुणों का वर्णन है; अतः रंग के अतिरिक्त इनका होना भी उचित है।

(२) पूर्वोक्त 'उल्लास' में एक के गुण से दूसरे का गुणी होना और 'अवज्ञा' में एक के गुण से दूसरे का गुणी न होना बतलाया जाता है; किंतु उन दोनों अलंकारों में 'गुण' शब्द दोष का विरोधी होता है और एक में जो गुण है, वही साक्षात् अन्य में होने या न होने का तात्पर्य नहीं है; प्रत्युत् एक के गुण से अन्य का किसी प्रकार गुणी होने या न होने का तात्पर्य होता है; तथा 'तद्गुण' एवं 'अतद्गुण' में 'गुण' शब्द रूप-रस-गंधादि-वाची होता है और एक का साक्षात् गुण अन्य द्वारा ग्रहण होने या न होने का तात्पर्य होता है। यही उन दोनों से इन दोनों अलंकारों में विभिन्नता है।

(३) यह 'अतद्गुण' अलंकार पूर्वोक्त 'तद्गुण' अलंकार का ठीक विरोधी है।

(४) यद्यपि यह 'अतद्गुण' एवं पूर्वोक्त 'अवज्ञा' अलंकार दोनों पूर्वोक्त 'विशेषोक्ति' अलंकार रूप ही हैं, क्योंकि वहाँ कारण के अस्तित्व में कार्य का अभाव होता है, और वही बात इन दोनों में भी है; तथापि 'उल्लास' और 'तद्गुण' के विरोधी होने के कारण इनमें केवल गुण का संबंध है; अतः ये स्वतंत्र अलंकार माने गए हैं।

(७७) अनुगुण

जहाँ किसी अन्य के संसर्ग से किसी पदार्थ के पूर्व प्रसिद्ध गुण में उत्कर्ष होने का वर्णन हो, वहाँ 'अनुगुण' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

चोप[1] भरे 'रघुनाथ' बिलोकत दंपति जोन्ह की जोति रसीली।
एहो सखी! तेहिं औसर लै गई मैं रचि फूल की माल छबीली॥
आनन की दुति देखी दुहूँन की फैलि रही इतनी नभ-मीली।
चैत की पून्यो के चंद की चाँदनी चौगुनी चारु भई चटकीली॥
—रघुनाथ।

यहाँ श्रीराधा-माधव के मुख-प्रकाश के संपर्क से चैत्र-पूर्णिमा की चाँदनी में प्रकाश गुण का अधिक होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

गई चाँदनी बनक बनि, प्यारी प्रीतम-पास।
ससि-दुति मिलि सौगुन भयौ, भूषन-बसन-प्रकास॥
—राजा रामसिंह (नरवलगढ़)।

यहाँ भी चंद्रमा की चाँदनी के संसर्ग से शुक्लाभिसारिका नायिका के वस्त्राभूषणों के प्रकाश गुण में उत्कर्ष होना वर्णित है।

अनुगुण-माला १ उदाहरण यथा—सवैया।

प्यारी के पाँयन पायल की धुनि चौगुनी होति अनौटनियान तें।
राग बजै अनुराग सुहाग भरी बड़भागिन पैंजनियान तें॥

---

१ आनंद।

कंचन की चमकैं दमकै दुति दूनी यौं हीरन की कनियान तें।
गंधन-लोभ लसैं लपटे फनि चंदन-मूल मनो मनियान तें॥

यहाँ प्रथम चरण में अनवटों के शब्द से श्रीप्रियाजी की पायजेब में शब्द गुण का एवं तृतीय चरण में हीरों की कणियों के संसर्ग से सुवर्णमय आभूषणों के प्रकाश गुण का अधिक होना कहा गया है; अतः माला है।

(७८) मीलित

जहाँ दो पदार्थों के गुण (धर्म) समान होने पर एक पदार्थ दूसरे में मिलकर ऐसा विलीन हो जाय कि भिन्नता ज्ञात न हो, वहाँ 'मीलित' अलंकार होता है।[1]

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

इंद्र निज हेरत फिरत गज-इंद्र अरु,
इंद्र को अनुज[2] हेरै दुगध-नदीस[3] कौं।
'भूषन' भनत सुर-सरिता कौं हंस हेरैं,
बिधि हेरैं हंस कौं चकोर रजनीस कौं॥
साहि-तनै सिवराज! करनी करी है तैं जु,
होत है अचंभो देव कोटियो तैंतीस कौं।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने, निज,
गिरि कौं गिरीस हेरैं गिरिजा गिरीस कौं॥

—भूषण।

---

१ यहाँ 'मीलित' का अर्थ छिपा हुआ है, अर्थात् एक चीज में दूसरी का छिप जाना विवक्षित है। २ विष्णु। ३ क्षीर सागर।

यहाँ छत्रपति शिवराज की यश-धवलिमा में विलीन हो जाने से ऐरावत गजेंद्रादि का न मिलना कहा गया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

जोहैं जहाँ मगु नंदकुमार तहाँ चली चंद-मुखी सुकुमार है।
मोतिन ही को कियौ गहनो सब फूलि रही जनु कुंद की डार है॥
भीतर हो जु लखी सुलखी अब बाहर जाहिर होत न दार है।
जोन्ह सी जोन्है गई मिलि यौं मिलि जात ज्यौं दूध मैं दूध की धार है॥

—सुखदेव मिश्र।

यहाँ भी चाँदनी में मिलकर शुक्लाभिसारिका नायिका की देह-द्युति का पृथक् प्रतीत न होना वर्णित है।

मीलित-माला १ उदाहरण यथा—दोहा।

अधर पान, मेहँदी करन, चरन महावर-रंग।
लखि न परत सखि! सुमुखि के, अहो! अलौकिक अंग॥

यहाँ श्रीराधारानी की अधर-लालिमा में पान का, हाथों की ललाई में मेहँदी का और चरणों की अरुणता में यावक का रंग विलीन हो जाने के कारण भिन्नता का ज्ञान न होना वर्णित है; और ये तीन वर्णन होने के कारण माला है।

सूचना—पूर्वोक्त 'तद्गुण' अलंकार में 'गुण' शब्द रूप-रस-गंधादि-वाची होता है और अन्य वस्तु के गुण का ग्रहण मात्र होता है न कि वह विलीन हो जाती है; तथा यहाँ 'गुण' शब्द से सब प्रकार के धर्मों का तात्पर्य है एवं एक का गुण दूसरे में दूध-पानी के समान मिल जाता है और उनमें भिन्नता ज्ञात नहीं होती। यही इनमें अंतर है।

(७९) सामान्य

जहाँ गुण-समानता होने के कारण प्रस्तुत-अप्रस्तुत में विशेषता का अभाव वर्णित हो अर्थात् व्यावर्तक (भिन्नता-बोधक) धर्म न रहे, वहाँ 'सामान्य' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

चढ़ी अटा राका-रजनि, राधा रूप-निधान।
सब लखि हारे होति नहिं, मुख ससि की पहिचान॥

यहाँ श्रीराधिकाजी के मुख और चंद्रमा का गुण-सादृश्य होने के कारण देखनेवालों को निश्चय न होने से विशेषता का अभाव है।

२ पुनः यथा—क्रीड़ाचरण छंद।

अहो! कंज के पुंज मैं नारि के नैन मैं ना पिछानूँ।

—हरिराम (छंद-रत्नावली)।

यहाँ भी नायिका के नेत्रों का कमलों से सादृश्य होने के कारण भिन्न प्रतीत न होना वर्णित है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

द्यौस गनगौरन के गौर के उछाहन मैं,
छाई उदैपुर मैं बधाई ठौर-ठौर है।
देखौ भीम राना! ये तमासो ताकिबे के लिये,
माची आसमान मैं बिमानन की भौर है॥
कहै 'पद्माकर' त्यौं धौके मा उमा के गज-
गौननि की गोद मैं गजानन की दौर है।
पार-पार हेला महा मेला मैं महेस पूछै,
गौरन मैं कौनसी हमारी गनगौर है?॥

—पद्माकर।

यहाँ भी उदैपुर के गनगोरोत्सव में देखने को आई हुई जगदंबा पार्वती के धोखे से गणेश के गज-गामिनी स्त्रियों की गोद में जा बैठने एवं श्रीमहादेवजी के बारंबार पुकारने से कि इनमें से हमारी गौरी कौनसी है ? उनमें सौंदर्य-गुण-सादृश्य द्वारा अभेद हो जाना वर्णित है ।

सूचना—पूर्वोक्त 'मीलित' अलंकार में एक वस्तु का गुण (धर्म) दूसरी वस्तु में दूध-पानी की भाँति मिल जाता है; अतः मिलनेवाली वस्तु का आकार ही लुप्त हो जाता है; और यहाँ केवल गुण सादृश्य से भेद मात्र का तिरोधान (लोप) होता है; किंतु दोनों पदार्थ भिन्न-भिन्न प्रतीत होते रहते हैं । यही इनमें भिन्नता है ।

(८०) उन्मीलित

जहाँ दो पदार्थों के गुण (धर्म) समान हों और एक का गुण दूसरे में विलीन होने पर भी किसी कारण से भेद की स्फुरणा हो जाय, वहाँ 'उन्मीलित' अलंकार होता है ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

तिय-अंगन लगि मिलि रहे, केसर-सुरभि-सुरंग ।
लखियतु परिरंभन पिघरि, जब लगियतु पिय-अंग ॥

यहाँ नायिका के अंगों में लगकर केसर की सुगंध एवं रंग में यद्यपि अभेद हो रहा था तथापि नायक के परिरंभण-जन्य सात्विक-भाव से पिघलकर उनका भिन्न-भिन्न बोध होना वर्णित है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंकु न होति लखाइ ।
सौंधे के डारे लगी, अली चली सँग जाइ ॥
—विहारी ।

यहाँ भी शुक्लाभिसारिका नायिका के जोन्ह (चाँदनी) में मिलकर अभेद हो जाने पर भी सुगंध के कारण सखी को भिन्नता की स्फुरणा होने का वर्णन है ।

३ पुनः यथा—चौपाई ।

प्रनवउँ परिजन-सहित बिदेहू । जाहि राम-पद गूढ़ सनेहू ॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ॥
—रामचरित-मानस ।

यहाँ भी राजा जनक ने श्रीरामजी के चरणानुराग को योग-भोग में ऐसा छिपा रखा था कि भिन्नता प्रतीत नहीं होती थी; पर उस भिन्नता का श्रीरामजी के दर्शन द्वारा प्रकट होना कहा गया है ।

(८१) विशेषक

जहाँ प्रस्तुत-अप्रस्तुत में गुण-सादृश्य होने पर भी किसी कारण से विशेषता की स्फुरणा हो, वहाँ 'विशेषक' अलंकार होता है ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

सब बिधि सम, कहि सक न कोउ, को बराह को राहु ।
पुनि मुख मैं लखि सकल ससि, राहु कह्यौ सब काहु ॥

यहाँ वराह एवं राहु में सब प्रकार से सादृश्य होते हुए भी राहु के मुख में पूर्ण चंद्र देखकर[1] विशेषता का बोध होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

आई फूलनि लैन कौं, चलौ बाग मैं लाल!।
मृदु बोलन सौं जानिए, मृदु बेलिन मैं बाल॥
—मतिराम।

यहाँ भी प्रस्तुत नायिका के वर्ण एवं सुवास गुण-साम्य द्वारा अप्रस्तुत पुष्पों से अभेद हो जाने पर भी उसके कोमल वचनों के कारण भिन्नता का बोध होने का वर्णन है।

सूचना—पूर्वोक्त 'उन्मीलित' के एवं इसके लक्षण में समानता की प्रतीति होती है; किंतु वहाँ एक का गुण दूसरे में 'मीलित' की भाँति विलीन होकर, किसी कारण से पृथक्ता जानी जाती है; और यहाँ दोनों वस्तुओं की स्थिति 'सामान्य' की भाँति भिन्न-भिन्न रहकर किसी कारण से पृथक्ता जानी जाती है। यही इन दोनों अलंकारों में भेद है।

(८२) उत्तर

जहाँ उत्तर (जवाब) में किसी प्रकार का चमत्कार व्यक्त किया जाय, वहाँ 'उत्तर' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ गूढ़ोत्तर

जिसमें किसी गूढ़ अभिप्राय-युक्त उत्तर हो। इसके भी दो भेद होते हैं—

---

[1] क्योंकि वराह का दाँत द्वितीया के चंद्रमा के जैसा होता है।

(क) उन्नीत-प्रश्न

जिसमें विना प्रश्न के ही किसी व्यंग्य (अभिप्राय)-युक्त उत्तर के श्रवण मात्र से प्रश्न कल्पित किया जाय। इसे 'कल्पित-प्रश्न' भी कहते हैं।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सघन सरन में यह जरी, गिरि - गोवर्धन - राह।
जइयौ पै दुपहर, परै, साँझ - सबेर बराह॥

यहाँ किसी पथिक के प्रति कहे हुए स्वयं-दूती नायिका के केवल इस उत्तर-वाक्य से कि यह जड़ी (बूटी) गोवर्धन-गिरि-मार्ग के सघन सरों में है, पथिक का "अमुक बूटी कहाँ मिलेगी" प्रश्न कल्पित किया गया है; और नायिका ने व्यंग्य से संकेत-स्थल सूचित किया है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

सहजै ह्व जाम द्वैक लगि जैहैं मग बीच,
बसती के छेहरे सराय है उतारे की।
कहत 'कविंद' मग माँझ ही परैगी साँझ,
खबर उड़ानी है बटोही द्वैक मारे की॥
घर के हमारे परदेस कों सिधारे यातें,
दया करि बूझत खबरि राहचारे की।
करखै[1] नदी के बर बर[2] के तरै तू बस,
चौंकै मत चौकी इत पाहरू हमारे की॥
—उदयनाथ 'कविंद'।

---

१ किनारे। २ बट-वृक्ष।

यहाँ भी किसी पथिक के प्रति स्वयं-दूती नायिका के चतुर्थ चरणागत उत्तर के द्वारा पथिक के ठहरने का स्थान पूछने की कल्पना हुई है; और व्यंग्य से संकेत-स्थल सूचित किया गया है ।

(ख) निबद्ध-प्रश्न

जिसमें कई प्रश्न होने पर बारंबार किसी गूढ़ अभिप्राय से युक्त उत्तर दिए जायँ ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

कौन लाभ ? जस जगत मैं, को बल ? जन-संजोग ।
को सुभ धन ? संतोष मन, को सुख ? देह निरोग ॥

यहाँ 'कौन लाभ ?' आदि चार प्रश्नों के 'जस जगत मैं' आदि चार उत्तर उपदेश के अभिप्राय से गर्भित दिए गए हैं ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

को इत आवत ? कान्ह हौं, काम कहा ? हित-मान ।
किन बोल्यौ ? तेरे दृगनि, साखी ? मृदु मुसुकान ॥
—भिखारीदास 'दास' ।

यहाँ भी श्रीराधिकाजी के चार प्रश्नों के श्रीकृष्ण द्वारा प्रेमोत्कर्ष के अभिप्रायांतर-गर्भित चार उत्तर दिए गए हैं ।

२ चित्रोत्तर

जिसमें किसी विचित्रता से युक्त उत्तर हो । इसके भी दो भेद होते हैं—

(क) प्रश्नों के शब्दों में ही उत्तर

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

अंगन लग्यौ परांगना ? मैन जग्यौ कहुँ रैन ? ।
दूषन-दूषित है बने, बीरबहू-रँग नैन ? ॥

यहाँ पर-संभोग-दुःखिता नायिका के नायक से प्रश्न हैं—आपने पर-स्त्री के अंगों से आलिंगन किया ?, काम से रात्रि भर जागते रहे ? तथा उक्त दूषणों से ही आपकी आँखें लाल हैं ? इन तीनों प्रश्नों के क्रमशः तीन उत्तर—मैं किसी पर-स्त्री के अंग से नहीं लगा, किसी जगह रात्रि में जागता नहीं रहा और मेरी आँखें दुखने के कारण लाल हैं—प्रश्नों के शब्दों में ही दिए गए हैं।

२ पुनः यथा—दोहा।

अलि लोभी-रस को महा ? कोसमान नृप होइ ?।
दिन - संजोगी कोकहै ? रैनि - बियोगी सोइ ॥
—राजा रामसिंह (नरवलगढ़)।

यहाँ भी तीन प्रश्न हैं—हे सखी ! रस का लोभी कौन है ? नृप के समान कौन है ? और दिन-संयोगी कौन कहलाता है ? । इनके उत्तर इन्हीं शब्दों में यों दिए गए हैं—रस का लोभी भ्रमर है, धन के कोशवाला राजा है और दिन-संयोगी चक्रवाक हैं।

(ख) बहुत से प्रश्नों का एक ही उत्तर

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

एक कह्यौ नीकी सी प्रहेलिका सुनाइ दीजै,
एक कह्यौ कीजै साथ रथ की सवारी जू।
एक कह्यौ कीजिए कपाट बंद, एक कह्यौ,
कुसती दिखैए आजु आए हैं खिलारी जू॥
एक कह्यौ लूट्यौ रस गोरस गरीबिनी को,
एक कह्यौ प्यारे आस पूजिए मुरारीजू।।
'जोरी नाहिं' भोरी ! एक उत्तर बिहँसि देत,
ब्रज के बिहारी हरौ जातना हमारी जू॥

यहाँ श्रीकृष्णजी के प्रति गोपियों के "नीकी सी प्रहेलिका सुनाइ दीजै" आदि छः प्रश्नों के 'जोरी नाहिं' इस एक ही पद द्वारा उत्तर दिए गए हैं—पहेली जोड़ी (रची) नहीं गई है, बैलों की जोड़ी नहीं है, कपाटों की जोड़ी नहीं है, इनकी बराबर की जोड़ी नहीं है, जबरदस्ती से नहीं लूटा गया है और हमारी-तुम्हारी समानावस्था नहीं है।

२ पुनः यथा—दोहा।

गुरु—पान सड़ै घोड़ो अड़ै, बिद्या बीसर जाइ।
रोटो जलै अँगार मैं, कहु चेला कैंदाइ ? ॥
शिष्य—गुरूजी ! फेर्यौ नाहीं।

—अज्ञात कवि।

यहाँ भी शिष्य के प्रति गुरूजी के—पान क्यों गलता है ?, घोड़ा क्यों अड़ता है ?, विद्या विस्मृत क्यों होती है ? एवं टिक्कड़ अग्नि में क्यों जलता है ?—चार प्रश्न हैं। इन सबका "फेरा नहीं गया" एक ही उत्तर दिया गया है।
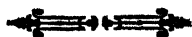
(८३) सूक्ष्म

जहाँ किसी की चेष्टा से कोई सूक्ष्म (गूढ़) वृत्तांत जानकर जाननेवाला किसी प्रकार की चेष्टा ही से कोई अभिप्राय-गर्भित उस वृत्तांत का केवल ज्ञात होना प्रकट करे अथवा उसका समाधान भी सूचित करे, वहाँ 'सूक्ष्म' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

स्याम-बुलावन समुझि तिय, चित समुचित सखि-सैन।
ताकि तनक पिय-तन, करन, कर धरि मूँदे नैन ॥

यहाँ नायिका ने नायक की दूतिका की सैन (चेष्टा) से यह सूक्ष्म रहस्य जान लिया है कि नायक ने मुझे बुलाया है; और समीपस्थ पति की ओर किंचित् देखकर अपने कान पर हाथ रखकर नेत्र मूँदने की चेष्टाओं से ही उस रहस्य को समझ लेना प्रकट किया है; एवं समाधान (उत्तर) किया है कि पति के शयन करने पर आऊँगी ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

बैठी हुती सखियान के बीच पगी-रस-चोपर-राग के भारी ।
आइ गए तित ही मन-मोहन संग सखान लिए सुखकारी ॥
दीठि सौं दीठि जुरी दुहुँघाँ करि चातुरी प्रीति-छटा बिसतारी ।
मुद्रित कंज सो स्याम कियौ अलकैं मुख पै बिथुराइ जु प्यारी ॥

—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी सखियों में बैठी हुई श्रीराधिका को कृष्ण महाराज ने कमल-कलिका दिखाने की चेष्टा से रात्रि में मिलने को कहा है । इसपर श्रीराधिकाजी ने भी अपने मुख पर अलकों के फैलाने रूपी चेष्टा से ही उनका अभिप्राय समझ लेना एवं चंद्रास्त होने पर मिलना सूचित किया है ।

(८४ पिहित

जहाँ किसी का पिहित (छिपा हुआ) वृत्तांत उसके किसी आकार द्वारा जानकर कोई किसी प्रकार की चेष्टा (क्रिया) से उसका अभिप्राय समझ लेना प्रकट करे, वहाँ 'पिहित' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अति अनीठ पति-पीठ-छत, लखि छत्रिनि रिसियानि।
जल अन्हान लौं दै, धरे, लहँगा-ओढ़नि आनि॥

यहाँ किसी क्षत्रिय-स्त्री ने अपने पति की पीठ में घाव (आकार) देखकर उनके स्नान करते समय लहँगा एवं ओढ़नी समीप रख देने (क्रिया) के द्वारा उनके रण से विमुख होकर भाग आने का गूढ़ वृत्तांत ज्ञात होना प्रकट किया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

रात कहूँ रमिकै अनठाँ अरु आवन प्रात कियौ गिरिधारी।
पीक-पगी पलकैं झलकैं छलकै दुति अंग अनंग की भारी॥
आवत दूरि तें देखि उठी अपराध जताइबे की उर धारी।
सेज बिछाइ झलावति बीजनो, पाँय पलोटन कों भइ प्यारी॥

—अलंकार-आशय।

यहाँ भी नायिका ने अतिकाल करके आनेवाले नायक की पीक-लगी पलकैं आदि (आकार) देखकर उनके शयन करने के लिये शय्या बिछाने आदि क्रियाओं से नायक का अपराध ज्ञात होना सूचित किया है।

सूचना—इस 'पिहित' अलंकार को कई प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों में 'सूक्ष्म' अलंकार का भेदांतर माना है; किंतु प्रायः आधुनिक आचार्यों ने इसे स्वतंत्र रूप दिया है और हम भी उन्हीं से सहमत हैं।

(८५) व्याजोक्ति

जहाँ छिपे हुए वृत्तांत का किसी आकार द्वारा भेद खुल जाने पर उसको व्याज (बहाना)-युक्त कथन से छिपाया जाय, वहाँ 'व्याजोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—होरी।

नायिका—लखि हमकों मुसुकानी, कहा तैं मन मैं जानी ?।
सखी—अँखियाँ-खंजन-गुन-गंजन की, अंजन-ओप उड़ानी।
पान-पीक की लीक पलक पर, झलकि रही रस सानी॥
अलक अलि ! कत अरुझानी ?॥
नायिका—अंजन गयौ रुदन तें पलकन, कर मेहँदी लपटानी।
ललकि मयूर परे अलकन पै, चरन चोंच गहि तानी॥
व्याल-बनिता उन जानी॥

यहाँ लक्षिता नायिका की आँखों का अंजन चला जाने, पलकों पर पान-पीक लगने एवं अलक बिथुरने रूपी आकारों से (सखी द्वारा) जाने हुए गुप्त रहस्य का गुप्ता नायिका (लक्षिता जब चिह्नों को छिपाती है तो गुप्ता कहलाती है) इन बहानों से गोपन करती है कि अंजन रुदन से बह गया, पलकों पर हाथ की मेहँदी का रंग है और अलकों को सर्पिणी समझकर मयूरों ने उलझा दिया है।

२ पुनः यथा—दोहा ।

केसर केसर-कुसुम के, रहे अंग लपटाइ ।
लगे जानि नख अनखली !, कत बोलति अनखाइ ? ॥
—विहारी ।

यहाँ भी सपत्नी की नख-रेखा का आकार नायक के अंग में देखकर क्रोध करनेवाली नायिका से नायक की सखी छिपाती है कि ये तो केसर-पुष्प के तंतु लगे हुए हैं, तू क्यों वृथा कोप करती है ? ।

सूचना—पूर्वोक्त 'छेकापह्नुति' में श्लिष्ट शब्द होते हैं और सत्य का गोपन निषेध पूर्वक होता है; पर यहाँ विना निषेध के गोपन होता है। तथा पूर्वोक्त 'सूक्ष्म' एवं 'पिहित' में क्रिया (चेष्टा) का और यहाँ वचन का संबंध होता है। इसमें उक्त तीनों अलंकारों से यही विलक्षणता है।

(८६) गूढ़ोक्ति

जहाँ जिससे कहना है, उसके प्रति न कहकर (समीपस्थ व्यक्ति न समझे इस आशय से) किसी अन्य के प्रति श्लेष द्वारा कोई वर्णन किया जाय, वहाँ 'गूढ़ोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

सखि ! सूकर संध्या समय, खात ऊख के खेत ।
हौं रखवारहुँ भर-निसा, तुम घर जाहु सहेत ॥

यहाँ नायक का तात्पर्य नायिका को संकेत-स्थल सूचित करने का है कि मैं रात्रि भर ऊख के खेतों में रहूँगा; किंतु यह बात उससे न कहकर निकटवर्ती सखियों से कहता है कि सायंकाल में

शूकर ऊख के खेत खाते हैं, मैं उनकी रखवाली करूँगा, तुम निश्चिंत होकर अपने-अपने घर जाओ। यहाँ 'भर-निशा' पद के 'रात भर' और 'निश्चिंत होकर' ये दो अर्थ होते हैं; अतः श्लिष्ट है।

२ पुनः यथा—बरवै।

बिहँसि कह्यौ रघुनंदन पावन बाग।
ऐहैं फेरि सुमन-हित गुरु-अनुराग॥
—लछिराम।

यहाँ भी श्रीरघुनाथजी का लक्ष्मण के प्रति कथन है—"इस बाग में गुरु के निमित्त पुष्प लेने के लिये फिर आवेंगे" इसी श्लिष्ट वाक्य द्वारा जानकीजी को यह सूचित किया गया है—"हम गुरु (विशेष) अनुराग से आपके सुमन (सुष्ठु मन) के लिये यहाँ फिर आवेंगे"।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' के भेद 'सारूप्य-निबंधना' (अन्योक्ति) और इस 'गूढ़ोक्ति' के लक्षण समान प्रतीत होते हैं; तथा कई भाषा-ग्रंथों के उदाहरणों में भी पृथक्ता प्रतीत नहीं होती; किंतु वहाँ प्रस्तुत का बोध कराने के लिये 'अप्रस्तुत' का वर्णन होता है तथा प्रस्तुत के प्रति किसी प्रकार का उपदेश करने का तात्पर्य होता है; और यहाँ जिससे कुछ गूढ़ रहस्य कहना है, वह उसे न कहकर दूसरे के प्रति कहकर उसे जतलाया जाता है और श्लिष्ट शब्दों का नियम है।

(२) यहाँ 'श्लेष' होते हुए भी दूसरों को छलने के रूप में विशेष चमत्कार होता है; अतः पूर्वोक्त 'श्लेष' अलंकार से भी इसकी अलंकारांतरता है।

(८७) विवृतोक्ति

जहाँ छिपा हुआ रहस्य कवि द्वारा खोला जाय, वहाँ 'विवृतोक्ति'[1] अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम विवृतोक्ति, श्लिष्ट शब्दों का

१ उदाहरण यथा—दोहा।

स्याम सघन बरसत जलद, तम सरसत चहुँ पास।
रजनि हु तें रमनीय दिन, सुनि पिय पूरी आस॥

यहाँ 'सुंदर' एवं 'रमण करने योग्य' ये दो अर्थ हैं; इससे 'रमणीय' शब्द श्लिष्ट है जिसमें छिपी हुई नायिका की अभिलाषा का गुप्त रहस्य कवि ने चतुर्थ चरण में प्रकट किया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

अब तजु स्याम बराह! बर, बारी-बिहरन-आन।
सुनि सयानि सखि-बचन, चित, समुझे स्याम सुजान॥

यहाँ भी 'स्याम बराह' एवं 'बारी-बिहरन' श्लिष्ट शब्दों में छिपे हुए श्रीकृष्ण और नायिका के प्रेम-रहस्य का "चित समुझे स्याम-सुजान" वाक्य द्वारा कवि ने उद्घाटन कर दिया है।

२ द्वितीय विवृतोक्ति, साधारण शब्दों की

१ उदाहरण यथा—दोहा।

अलि! केवल देखें सुनें, लगति बिरह की लाय।
तब तिहिं लाइ मिलाइ दी, छाती छैल सिराय॥

---

१ 'विवृत' शब्द का अर्थ 'उद्घाटन किया हुआ' है।

यहाँ सखी से नायक के पूर्वार्द्धगत कथन के अर्थ में नायिका से एकांत-संयोग के उत्कंठा रूपी छिपाए हुए गूढ़ रहस्य का उत्तरार्द्ध में कवि ने उद्घाटन किया है।

२ पुनः यथा—सोरठा।

बातन जात न नाह !, जा तन जाकी चाह हौ।
राखिय राउरि 'वाह', तब नृप सकुचि दियौ कछुक॥

यहाँ भी किसी याचक द्वारा कहे हुए अर्थ में छिपा हुआ (राजा से) धन-याचना का अभिप्राय चतुर्थ चरण में कवि ने प्रकट किया है।

सूचना—इस 'विवृतोक्ति' में पूर्वोक्त 'गूढ़ोक्ति' से, छिपे हुए अर्थ के (कवि द्वारा) प्रकट किए जाने मात्र की भिन्नता को भिन्न अलंकारता के लिये पर्याप्त कारण न मानकर किसी-किसी ग्रंथकार ने इसका 'गूढ़ोक्ति' में अंतर्भाव किया है; किंतु हमारे विचार में उक्त भिन्नता के कारण इसकी भिन्न गणना होना अनुचित नहीं; और प्रायः ग्रंथों में ऐसा ही हुआ भी है।

(८८) युक्ति

जहाँ कोई अपना रहस्य छिपाने के लिये किसी क्रिया द्वारा अन्य को वंचन करे (ठगे), वहाँ 'युक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बतियन बिरमावति इतै, उत मुसुकति गति गोइ।
पिय सखियन लखिय न परति, जाति कनखियनि जोइ॥

यहाँ क्रिया-विदग्धा नायिका ने अपने नायक की तरफ मुस्कराने का रहस्य छिपाने के लिये बातों में बहलाने की क्रिया द्वारा अपने समीपस्थ पति एवं सखियों को वंचन किया है।

२ पुनः यथा—सवैया।

खेलत हैं हरि बागे बने जहाँ बैठी तिया रति तें अति लोनी।
'केसव' कैसे हू पीठ मैं दीठ परी कुच-कुंकुम की रुचि रोनी॥
मातु-समीप दुराइ भली विधि सात्विक-भावन की गति होनी।
धूरि कपूर की पूरि बिलोचन सूँघि सरोरुह ओढ़ि उढ़ोनी॥

—केशवदास।

यहाँ भी श्रीकृष्ण महाराज पर दृष्टि पड़ने से श्रीराधिकाजी ने सात्विक-भाव हो जाने रूपी रहस्य को नेत्रों में कपूर डालने आदि की क्रियाओं से छिपाकर माता को वंचन किया है।

३ पुनः यथा—सवैया।

तब तो दुरि दूर हि तें मुसुकाइ बचाइकै और की दीठि हँसे।
दरसाइ मनोज की मूरति ऐसी रचाइकै नैनन मैं सरसे॥
अब तो उर माहिं बसाइकै मारत ए जू बिसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह-निबाहन जानत हे तो सनेह की धार मैं काहे धँसे?॥

—घनआनंद।

यहाँ भी नायिका के वचन में प्रथम चरण में नायक द्वारा नायिका की ओर हँसने का रहस्य छिपाने के लिये अपनी छिपने की क्रिया से अन्यों को वंचन किया गया है।

सूचना—पूर्वोक्त 'व्याजोक्ति' अलंकार में आकार द्वारा खुली हुई बात का वचन से गोपन होता है; और यहाँ किसी गूढ़ रहस्य का क्रिया से गोपन होता है। यही उससे अंतर है।

(८९) लोकोक्ति

जहाँ किसी लोक-प्रसिद्ध कहावत का किसी प्रसंग में वर्णन हो, वहाँ 'लोकोक्ति' अलंकार होता है[1]।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

[illegible], अरु बरनन रसराज[2]।
बड़े बखानत सो बन्यौ, "एक पंथ दो काज"॥

यहाँ "एक पंथ दो काज" वाली कहावत का वर्णन है।

२ पुनः यथा—सवैया।

यह चारहुँ ओर उदौ मुख-चंद को, चाँदनी चारु निहार लै री।
बलि जो पै अधीन भयौ पिय प्यारो तो एतो बिचार बिचार लै री॥
कवि 'ठाकुर' चूकि गयौ जो गोपाल तुही बिगरी कों सँभार लै री।
अब रैहै न रैहै यहौ समयो "बहती नदी पाँव पखार लै री"॥

—ठाकुर (प्राचीन)।

यहाँ भी "बहती नदी पाँव पखार लै" लोकोक्ति कही गई है।

३ पुनः यथा—सवैया।

ऊधोजू! सूधो गहौ वह मारग ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है।
कोऊ नहीं सिख मानिहैं ह्याँ इक स्याम की प्रीति प्रतीति खरी है॥
ये ब्रजबाल सबै इकसी 'हरिचंदजू' मंडिली ही बिगरी है।
एक जो होइ तो ज्ञान सिखाइए "कूपहि मैं यहाँ भाँग परी है"॥

—भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र।

यहाँ भी "कूप में भाँग पड़ना" लोकोक्ति है।

---

१ यहाँ कहावत के शब्द ज्यों के त्यों रखे जाने में काव्य अधिक चमत्कृत होता है। २ शृंगार रस।

(९०) छेकोक्ति

जहाँ 'लोकोक्ति' का वर्णन किसी अभिप्रायांतर से गर्भित हो, वहाँ 'छेकोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

गोचारी गोरस हर्‍यौ, भो ब्रज गोप-कुमार।
पै गिरि धार्‍यौ तब लख्यौ, "तिनके-ओट पहार"॥

यहाँ "तिनके-ओट पहार" लोकोक्ति का वर्णन इस अभिप्रायांतर से युक्त है कि जब श्रीकृष्ण ने गोवर्धन उठाया, तब सब लोगों को उनके माया-मनुष्य शरीर की ओट में सर्व-शक्तिमान् परमात्मा दिखाई पड़ा।

२ पुनः यथा—सवैया।

तापसै भेट्यौ बिभीषन जाइ क्यौं ? रावन या अनुमान अरै है।
बोल्यौ प्रहस्त प्रभाव न तू रघुनाथ को जानत जानि परै है॥
या जग मैं उपखान प्रसिद्ध सही 'लछिराम' कथा बगरै है।
चोर को चोर सुजानै सुजान जती को जती पहिचानि परै है॥
—लछिराम।

यहाँ भी रावण के प्रति मंत्री प्रहस्त के द्वारा चतुर्थ चरणगत 'लोकोक्ति' का वर्णन होना इस अर्थांतर से गर्भित है कि तू दुराचारी और विभीषण सदाचारी है।

(९१) वक्रोक्ति-अर्थ

जहाँ वक्ता के अभिप्राय में श्रोता अर्थ-श्लेष द्वारा अन्यार्थ की कल्पना करे, वहाँ 'अर्थ-वक्रोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

लघु भ्रात लख्यौ कहुँ तू निज अग्रज अज्ञ अभागे को राज लियौ?।
कल ही गढ़-लंक को राम-कृपा तें बिभीषन के सिर छत्र छयौ ॥
किहिं भूपति भिच्छुक-बेष माँगी बन भीख? सिया की कुटी जो गयौ
इमि अंगद राजकुमार को राच्छस-राज तें आज बिबाद भयौ ॥

यहाँ अंगद के प्रति रावण के दो प्रश्न श्रीरामचंद्रजी एवं बाली पर और केवल रघुनाथजी पर कटाक्ष-सूचक हैं कि अपने अभागे बड़े भाई का राज्य छीन लेनेवाला छोटा भाई तुमने कहीं देखा है? और किसी राजा ने भिक्षुक-वृत्ति से वन में भीख माँगी है? इनके अंगद ने और ही अर्थ कल्पित करके "कल ही गढ़-लंक को राम-कृपा तें बिभीषन के सिर छत्र छयौ" एवं "सिया की कुटी जो गयौ" वाक्यों से उलटे रावण पर ही उन्हे घटित कर दिया। यहाँ यदि 'लघु भ्रात' आदि शब्दों के स्थान पर 'अनुज' आदि पर्याय-वाची शब्द रख दिए जायँ तो भी श्लेष बना ही रहेगा अतः अर्थ-श्लेष-मूला वक्रोक्ति है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

एरी सुकुमारी! रखवारी-बृच्छ बारी यह,
कौन की?, हमारी, यामैं कैसे फल-फूल हैं?।
श्रीफल हैं, ये तो रहे राउरे उरस्थल मैं,
कदली सखंभ, जंघ उनही के तूल हैं॥
आछे अरबिंद, वे हैं बदन बिसाल नैन,
कुंद-कलिका, ते मंजु मुख मैं समूल हैं।
आम हैं अमी से, इन ओठन सरीसे पै न,
लेहु पांथ! प्यारे! ये तिहारे अनुकूल हैं॥

यहाँ भी किसी पथिक के पूछने पर बाग-रक्षिका (मालिन) ने कहा कि मेरे बाग में श्रीफल, सखंभ कदली, अरविंद, कुंद-कलिका एवं आम्र हैं। इन सब शब्दों में उक्त पथिक ने क्रमशः कुच, जंघा, मुख एवं नेत्र, दाँत और ओष्ठ के अन्यार्थ स्थापित किए हैं।

सूचना—'वक्रोक्ति' दो प्रकार की होती है, जिनमेंसे 'शब्द-वक्रोक्ति का वर्णन शब्दालंकारों के अंतर्गत कर आए हैं, और इस 'अर्थ-वक्रोक्ति' में वाक्य एवं शब्दों का एक ही अर्थ दो पक्षों में घटित होता है तथा इनके पर्याय रख देने से भी अलंकार ज्यों का त्यों बना रहता है।

(६२) स्वभावोक्ति

जहाँ मनुष्यादि जाति के किसी रमणीय स्वभाव के धर्म, क्रिया आदि का वर्णन हो, वहाँ 'स्वभावोक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

पाँय दबाइ सुवाइकै सोवति साथ, प्रभात हि जागि जगावै।
पथ्य पियूष से स्वादु सदा उनकी रुचि के चि पाक बनावै॥
बात कहै कोउ प्रीतम की तो 'कहा कह्यौ ?' यों कहि फेर कहावै।
प्रान भए परिछाँहीं फिरैं, पति दीखत ही दृग भेंट चढ़ावै॥

यहाँ स्वकीया नायिका के पति के चरण चाँपने आदि अनेक रमणीय धर्म एवं क्रियाएँ वर्णित हैं।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

लाभ लहरान लेखि, हानि हहरान पेखि,
पारद-प्रभा पै बर बह्नि-भा बन्यौ करै ।
लोक कुल बेद के बिचार को बिराव[1] बारि,
संभु-जटा-बारि गंग-धार मैं सन्यौ करै ॥
जानि जग पान सो अमान जग मानवनि,
पानि पकरे की कान प्रान पै तन्यौ करै ।
बीर बखतावर ! सुबीरन की यहै बृत्ति,
सिर पै बनैहै ताकों गिरि पै गिन्यौ करै ॥

—स्वामी गणेशपुरीजी (पद्मेश) ।

यहाँ भी वीर पुरुषों के बहुत से स्वाभाविक गुणों का वर्णन है ।

३ पुनः यथा—

जलज अलग जल सौं जस रहतौ, तस ब्राह्मन जग-त्यागी ।
निरत सदा सत करम भजन-हरि, बुधि उपकार सु पागी ॥
चिंतित चित्त दूसरन सुख-हित, माया-बन मग कीन्हौं ।
मान-मूर्ति नृप देखि उठत तिन्ह, तबहुँ न मानहिं चीन्हौं ॥

—पं० शिवरत्न शुक्ल (भरत-भक्ति) ।

यहाँ भी अयोध्या-निवासी ब्राह्मणों के श्लाघनीय स्वाभाविक धर्म-कर्मों की उक्ति है ।

सूचना—कुछ ग्रंथों में रूप, वेष और भूषण-रचना के वर्णन में 'जाति' नामक अलंकार की भिन्न गणना हुई है और कुछ में 'स्वभावोक्ति' में ही इसका अंतर्भाव किया गया है। हमारे विचार से इसमें ऐसी भिन्नता नहीं ज्ञात होती कि जिससे भिन्न अलंकार माना जाय; अतः यहाँ इसका दिग्दर्शन मात्र करा देते हैं—

---

1 घोष ।

जाति १ उदाहरण यथा—कवित्त ।

पायल अनौट बाँक बिछिया प्रिया के पाँय,
जेहर, जराव-जरी रसना[1] रसीली की ।
बलय-बलित कर कंकन कलित तापै,
राजै रुचि चारु चुरियान चमकीली की ॥
झूलत हमेल हार, बेसर करनफूल,
माँग-मुकता पै छबि चूड़ामनि नीली की ।
स्यामल घटा मैं ज्यौं चमंक चपला की चारु,
नीले दुपटा मैं त्यौं दमंक दुति पीली की ॥

यहाँ श्रीराधिकाजी के पायल आदि आभूषण, नील वस्त्र एवं पीत अंग-द्युति का वर्णन हुआ है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

नृप-द्वार कुमारि चलीं पुर की अँगराग सुगंध उड़ै गहरी ।
सजि भूषन अंबर रंग बिरंग उमंगन सौं मन माहिं भरी ॥
कवरीन मैं[2] मंजु प्रसून-गुछे दृग-कोरन काजर-लीक परी ।
सित भाल पै रोचन-बिंदु लसै पग जावक-रेख रची उछरी ॥
—पं० रामचंद्र शुक्ल (बुद्ध-चरित्र) ।

यहाँ भी पुरवासिनी कुमारिकाओं का अंगरागादि से शृंगार करना वर्णित है ।

(६३) भाविक

जहाँ भूत अथवा भावी भाव (घटना) का वर्तमानवत् वर्णन किया जाय, वहाँ 'भाविक' अलंकार होता है । इसके दो भेद हैं—

१ करधनी । २ वेणियों में ।

१ प्रथम भविक, भूतार्थ-वर्णन का

१ उदाहरण यथा—भुजंगप्रयातार्द्ध ।

करी सत्य है छत्रियों की बिभूती । पृथीराज की आज भी राजपूती ॥

यहाँ बीकानेर-नरेश के द्वारा भारत-सम्राट् पृथ्वीराज की भूत-कालिक रजपूती (घटना) का प्रत्यक्षवत् किया जाना वर्णित है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

साहसकै बसकै रिसकै जब माँगी बिदेस-बिदा मृदु बानि सौं ।
सो सुनि बाल रही मुरझाइ दही बर बेलि ज्यौं धीर दवानि सौं ॥
नैन गरो हियरो भरि आयौ पै बोल न आयौ कछू वा सुजानि सौं ।
सालैं अजौं हिय माँझ गड़ी वे बड़ी अँखियाँ उमड़ी अँसुवानि सौं ॥

—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी प्रवत्स्यत्पतिका नायिका के भूत-कालिक आँसू भरे नेत्रों का प्रोषित नायक के वर्त्तमान में सालना वर्णित है ।

३ पुनः यथा—हरिगीतिका ।

हमको विदित थे तत्त्व सारे नाश और विकास के ।
कोई रहस्य छिपे न थे पृथ्वी तथा आकाश के ॥
थे जो हजारों वर्ष पहले जिस तरह हमने कहे ।
विज्ञान-वेत्ता अब वही सिद्धांत निश्चित कर रहे ॥

—बाबू मैथिलीशरण गुप्त ।

यहाँ भी भारतवर्ष के दिव्य-दर्शी महर्षियों ने पदार्थ-विद्या के जिन तत्वों का सहस्रों वर्ष पहले वर्णन किया था, उन्हीं का वर्त्तमान के पाश्चात्य-विज्ञान-वेत्ताओं द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव किया जाना वर्णित है ।

महारुद्र के नृत्य करने रूपी भविष्यत् प्रलय के धर्मों का यवनों पर प्रत्यक्षवत् संचार होने का वर्णन हुआ है।

(६४) उदात्त

जहाँ किसी पदार्थ का महत्व वर्णन किया जाय, वहाँ 'उदात्त' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम उदात्त

जिसमें समृद्धि की अत्युक्ति वर्णित हो।

१ उदाहरण यथा—भुजंगप्रयात।

वहाँ ओर चारौं रचा स्वर्ग सा है। मनो इंद्र-आराम[1] ही आ बसा है॥
बनाया नया कोट श्रीलाल नामी[2]। लगे लाल पाषान हैं लाल-दामी[3]॥
लसैं लाल ही लाल प्रासाद भारी। रचे सौध स्वर्गीय-सौंदर्य-हारी[4]॥

यहाँ श्रीबीकानेर-महाराज के राज-महलों के वर्णन में उनकी संपत्ति की अत्युक्ति वर्णित हुई है।

२ पुनः यथा—दोहे।

हरित मनिन्ह के पत्र-फल, पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति, मन बिरंचि कर भूल॥
सौरभ[5]-पल्लव सुभग सुठि, किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर[6] मरकत-घवरि[7], लसत पाटमय डोरि॥

—रामचरित-मानस।

यहाँ भी श्रीराम-जानकी के बिवाह के रत्नमय मंडप के वर्णन द्वारा राजा जनक की अलौकिक समृद्धि की अत्युक्ति वर्णित हुई है।

---

१ नंदन वन। २ लालगढ़। ३ रत्नों के समान मूल्यवान्। ४ स्वर्ग के राजमहलों की सुंदरता को हरनेवाले। ५ आम्र-वृक्ष। ६ मंजरी। ७ गुच्छा।

२ द्वितीय उदात्त

जिसमें किसी महान् पुरुष को अंग-भाव में मानकर उनके चरित्रों से अंगी को महत्व प्राप्त होने का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

यह सरजू सरिता वही, पावनि पूरनि काम ।
पैठि पधारे राम, जिहिं, पुरजन-सह निज धाम ॥

यहाँ श्रीसरयू के वर्णन में श्रीरामचंद्रजी को अंग-भाव से रखकर उनके प्रजा-समेत वैकुंठ-धाम पधारने के उदार चरित्र से अंगी सरयू को महत्व प्राप्त होना वर्णित है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

कैटभ सो नरकासुर सो पल मैं मधु सो मुर सो जिहिं मार्‍यौ ।
लोक-चतुर्दस-रच्छक 'केसव' पूरन बेद-पुरान बिचार्‍यौ ॥
श्रीकमला-कुच-कुंकुम-मंडित पंडित देव-अदेव निहार्‍यौ ।
सो कर माँगन कौं बलि पै करतार हु के करतार पसार्‍यौ ॥
—केशवदास ।

यहाँ भी श्रीवामन-भगवान् के हाथ के वर्णन में उनको अंग-भाव में मानकर उनके उदार चरित्रों से अंगी दैत्यराज बलि को महत्व प्राप्त होना वर्णित है ।

३ पुनः यथा—दोहा ।

निकसत जीवहिं बाँधिकै, तासौं राखति बाल ।
जमुना-तट वा कुंज मैं, तुम जु दई बन-माल ॥
—मति राम ।

यहाँ भी सखी द्वारा श्रीकृष्णजी से नायिका के विरह-निवेदन में श्रीकृष्ण को अंग-भाव में रखकर उनकी दी हुई माला को महत्व प्राप्त होने का वर्णन है ।

(९५) अत्युक्ति

जहाँ रोचकता के लिये शौर्य्य आदि का मिथ्यात्व पूर्वक वर्णन हो, वहाँ 'अत्युक्ति' अलंकार होता है। हम इसके पाँच भेद लिखते हैं—

१ शौर्यात्युक्ति

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सुनि बल, प्रलय-पतंग ह्वै, अंबर चढ़्यौ उतंग।
सिंधु लाँघि, पुर जारि, सिय,-सुधि लायौ बजरंग॥

यहाँ जांबवान् से अपना बल सुनकर श्रीहनुमानजी के प्रलय-कालिक प्रचंड मार्तंड की भाँति आकाश में चढ़ने रूपी रोचक अतथ्यार्थ का वर्णन हुआ है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

चाली नृप भीम पै कराली नृप-भीम-चमू,
नक्रमुखी तोपन के चक्र-चरराटे ह्वाँ।
आपनौर औरन को सोर न सुनात, दौर,
घोरन की पोरन के घोर घरराटे ह्वाँ॥
मीर[1] हमगीरन[2] के तीर-तरराटे बर,
बीरन-बपुच्छद[3] के बाज बरराटे ह्वाँ।
हूर-हरराटे धर-धूज-धरराटे सेस-
सीस-सरराटे कोल[4]-कंध-करराटे ह्वाँ॥

—स्वामी गणेशपुरीजी 'पद्मेश'।

---

१ शूरवीर। २ साथियों। ३ कवच। ४ वराह।

यहाँ भी राजपूताने के राजा भीमसिंह की युद्ध-यात्रा तथा संग्राम-वर्णन में चतुर्थ चरणोक्त रमणीय असत्य वर्णित है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

हरि-सुत-श्रौन हरि-श्रौन हरि दैहैं कर,[१]
घरी-घरी घोर धनु-घंट-घननाटे तैं।
भेरि-रव भूरि भट-भीर-भार भूमि भरि,
भूधर भरैंगे भिंदिपाल[२]-भननाटे तैं॥
खप्पर-खनक ह्वै न खेटक के खप्पर ह्वाँ,[३]
खेटकी[४] खिसकि जैहैं[५] खग्ग-खननाटे तैं।
चूकि जैहैं जान-धर[६] जान को चलान, बान,
बान-धर[७] मेरे पान-बान[८]-सननाटे तैं॥
—स्वामी गणेशपुरीजी 'पद्मेश'।

यहाँ भी कर्ण के कथन में उसकी वीरता की अत्युक्ति है।

४ पुनः यथा—सवैया।

दिन द्वै निसि एक जुरी नहिं द्रोन की संधि-उपासन-अंजुलिका।
बहु बीरन पांडुन के बरिबे उतरी कोउ अच्छर-आवलिका॥
बरमाल के कारन हेरत ही फिरते परे पाँयन मैं फलका।
सुरराज के बाग सु नंदन मैं कहा पुष्प जहाँ न मिलै कलिका॥
—बारहठ स्वरूपदास साधु।

यहाँ भी द्रोणाचार्य के युद्ध-वर्णन में रमणीय असत्य कथन पूर्वक वीरता की अत्युक्ति है।

---

१ अर्जुन और घोड़ों के कानों को भगवान् हाथों से ढाँकेंगे। २ गोफन। ३ खप्पर की खनखनाहट नहीं होगी क्योंकि ढालों के खप्पर होंगे। ४ ढालोंवाले। ५ भाग जायँगे। ६ सारथी। ७ अर्जुन। ८ हाथ का बाण।

२ उदारतात्युक्ति

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

अधिक एक तें एक भे, अहैं अनेक उदार ।
देखे सुने न आन, पै, नाथ ! नारि-दातार ॥

यहाँ सुदामा को श्रीकृष्ण द्वारा त्रैलोक्य की लक्ष्मी देते देख श्रीरुक्मिणीजी के इस कथन में कि "अपनी स्त्री का दान देने-वाला न देखा न सुना" आश्चर्योत्पादक अतथ्य का वर्णन हुआ है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

चलत पाइ निगुनी-गुनी, धन मनि मोती-माल ।
भेट भए जयसाहि सौं, भाग चाहियत भाल ? ॥

—विहारी ।

यहाँ भी जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह के द्वारा याचकों को ('भाग चाहियत भाल ?' काकूक्ति से) उनके प्रारब्ध में न होने पर भी पर्याप्त द्रव्य प्राप्त होने की अत्युक्ति है ।

३ पुनः यथा—कवित्त ।

दीन्ही द्विजराजन कौं आपुनी पुनीत भक्ति,
अरियन कंपा, अनुकंपा[1] आतुरन कौं ।
सेठपनवारे नंदराम ! पनवारे[2] सदा,
दीन्हें पनवारे सदाचारी संतजन कौं ॥
भारत कौं नगर[3] नवीनो रचि दीन्हौं एक,
न्याय तें कमायौ धन दीन्हौं तनयन कौं ।
जस दै दिगंतन कौं, तन पंच-भूतन कौं,
दीन्हौं तैं उदार मन राधिका-रमन कौं ॥

—केडिया-जातीय-इतिहास ।

---

१ कृपा । २ प्रणवीर । ३ रतननगर (बीकानेर) ।

यहाँ भी ग्रंथकर्त्ता के पितामह सेठ नंदरामजी के अपना सर्वस्व दान कर देने की अत्युक्ति का वर्णन है।

३ सौंदर्यात्युक्ति

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

गोल-गोल गोरी गरबीली की बिलोकि ग्रीव,
संख सकुचाइ जाइ सिंधु मैं तच्यौ करै[1]।
पोक-लीक दीखति गिरत गल गोरे, कल-
कंठ-समता लौं कूकि कोकिला पच्यौ करै॥
बिन ही बिचारे सुनि सहज उचारे मृदु-
बचन बिचारे कवि रचना रच्यौ करै।
भारी भई भीर वा अहीर बृषभानु-भौन,
बीर! बरसाने सामबेद सो बँच्यौ करै॥

यहाँ श्रीराधिकाजी के गले में गिरती हुई पान की पीक के बाहर से दिखाई पड़नेवाली सुंदरता का अतथ्य वर्णन हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

वाहि लखै लोयन लगै, कौन जुवति की जोति?।
जाके तन की छाँह-ढिग, जोन्ह छाँह सी होति॥
—बिहारी।

यहाँ भी नायिका के शरीर की छाँह के सामने चाँदनी का छाँह की भाँति हो जाने की सुंदरता का मनोहारी[2] अतथ्य वर्णन है।

---

१ तपा करता है। २ सुंदर।

३ पुनः यथा—कवित्त ।

मंद ही चँपें तें इंद्र-बधु के बरन होत,
प्यारी के चरन नवनीत हू तें नरमैं ।
सहज ललाई बरनी न जाति 'कासीराम'
चुई सी परति, कवि हू की मति भरमैं ॥
एड़ी ठकुराइन की नाइन गहत जबै,
ईंगुर सो रंग दौरि आवै दरबर मैं ।
दीयौ है कि दैबो है बिचारै सोचै बार-बार,
बावरी सी ह्वै रही महावरि लै कर मैं ॥
—काशीराम ।

यहाँ भी नायिका के चरण किंचित् चाँपने से ही लाल हो जाने आदि के वर्णन में सौंदर्य की अत्युक्ति है ।

४ विरहात्युक्ति

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

सजन ! सँदेसे बिपति के, कहौ कहै किमि कोइ ? ।
पानि परसि कागद, कलम, मसि हु बिरह-बस होइ ॥

यहाँ पत्र लिखते समय प्रोषित-पतिका नायिका के कर-स्पर्श से कागज, कलम और स्याही इन जड़ पदार्थों के विरह-विवश हो जाने के रूप में वियोग-दशा का असत्य वर्णन है ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

बैठी थी सखिन-संग पिय को गवन सुन्यौ,
सुख के समूह मैं बियोग-आग भरकी ।
'गंग' कहै त्रिबिध सुगंध लै पवन बह्यौ,
लागत ही ताके मन भई बिथा जर की ॥

प्यारी कों परसि पौन गयौ मानसर पहँ,
लागत ही औरैं गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयौ,
जल जरि गयौ पंक सूख्यौ भूमि दरकी ॥
—गंग।

यहाँ भी वियोगिनी नायिका के देह से स्पर्श करके गया हुआ पवन मानसरोवर को लगने से उस सरोवर तक के सूख जाने की अद्भुत अत्युक्ति है।

३ पुनः यथा—कवित्त।

'संकर' नदी नद नदीसन के नीरन की,
भाप बन अंबर तें ऊँची चढ़ जाइगी।
दोनों ध्रुव-छोरन लौं पल मैं पिघलकर,
घूम-घूम धरनी धुरी सी बढ़ जाइगी ॥
झारैंगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति,
जारैंगे, ख-मंडल मैं आग मढ़ जाइगी।
काहू बिधि बिधि की बनावट बचैगी नाहिं,
जो पै वा बियोगिनी की आह कढ़ जाइगी ॥
—पं० नाथूराम शंकर शर्मा।

यहाँ भी वियोगिनी नायिका की आह से नद्यादि के जल की भाप बनकर आकाश से ऊँचे चढ़ जाने आदि की अद्भुत अत्युक्ति है।

५ कीर्ति की अत्युक्ति

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

तोषत रहत कर[1]-कोषन तें बिप्र-बृंद,
पोषत कविंद-कुल-कैरव कुपंक मैं।
पाइकै पियूष-बृत्ति पथिक अनाथ रंक,
लाखन चकोर होत निरखे निसंक मैं ॥

---

१ हाथ और किरण।

नासिकै अबिद्या-अंधकार, जस को प्रकास,
छायौ सो न मायौ तिहुँ लोकन के अंक मैं ।
देख्यौ गै न एक अग्रवाल मारवाड़ियों के,
अंक अनुदारता को "मानस-मयंक मैं" ॥

यहाँ अग्रवाल मारवाड़ियों के यश का प्रकाश तीनों लोकों में न समाने का विचित्र वर्णन हुआ है ।

२ पुनः यथा—कवित्त ।

आजु यहि समै महाराज सिवराज ! तुही,
जगदेव जनक जजाती अंबरीक सो ।
'भूषन' भनत तेरे दान-जल-जलधि मैं,
गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक[1] सो ॥
चंद-कर-किंजलक, चाँदनी-पराग, उड़-
बृंद-मकरंद-बुंद-पुंज के सरीक सो ।
कंद[2] सम कयलास, नाक-गंग[3] नाल, तेरे,
जस-पुंडरीक को अकास चंचरीक सो ॥
—भूषण ।

यहाँ भी शिवाजी के यश रूप श्वेत कमल के अंग—चंद्र-किरण केसर, चाँदनी पराग, तारे मकरंद-बूँद, कैलास मूल, मंदाकिनी नाल और आकाश भ्रमर के रूप में वर्णित हुए हैं, जिसमें मनोग्राही अत्युक्ति है ।

सूचना—(१) पूर्वोक्त 'उदात्त' अलंकार के प्रथम भेद में संपत्ति की; और यहाँ शौर्यादि अन्य अनेक प्रकारों की अत्युक्ति वर्णित होती है ।

---

१ तिनका । २ जड़ । ३ आकाश-गंगा ।

(२) पूर्वोक्त 'असंबंधातिशयोक्ति' में कुछ सत्य और यहाँ सर्वथा मिथ्या वर्णन होता है। यही भिन्नता है।

(३) इस अलंकार के उक्त पाँच भेदों के अतिरिक्त 'प्रेमात्युक्ति' आदि और भी कई भेद हो सकते हैं।

(९६) निरुक्ति

जहाँ किसी नाम का किसी योग-वश प्रसिद्ध अर्थ त्यागकर व्युत्पत्ति द्वारा अन्यार्थ कल्पित किया जाय, वहाँ 'निरुक्ति' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मोह न राख्यौ मातु मैं, 'मोहन' नाम-प्रभाव।
कहा चली अपनी अली !, अब समुझी यह भाव॥

यहाँ 'मोहन' नाम मोहनेवाले का है; किंतु व्रजबासियों को त्यागकर चले जाने के योग-वश कवि ने व्युत्पत्ति द्वारा 'जिसके मोह न हो' अन्यार्थ कल्पित किया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

ज़िन निकसत अरथिन अरथ, मुख-नृप-'मान' नकार।
नाम पितामह रावरो, दीन्हौं बड़े बिचार॥
—कविराजा मुरारिदान।

यहाँ भी जोधपुर-नरेश महाराजा जसवंतसिंह के नामांतर 'मान' का वास्तविक अर्थ 'सम्मान के योग्य' है, जिसका कवि ने उनकी उदारता के योग से, मा = नहीं करना और न = नाँही, अर्थात् "नाहीं न करने" का अन्यार्थ किया है।

निरुक्ति-माला १ उदाहरण यथा—दोहा।

पनघट जाते पन घटै, पनघट वाको नाम।
कहिए पन कैसे रहै?, पनिहारिन के धाम॥

—अज्ञात कवि।

यहाँ 'पनघट' का 'पानी भरने का घाट' और 'पनिहारिन' का 'पानी भरनेवाली' प्रसिद्धार्थ है; परंतु कवि ने निर्लज्जता का स्थान होने के कारण क्रमशः 'प्रण घटने का' और 'प्रण हरनेवाली' अन्यार्थों की कल्पना की है; अतः माला है।

(९७) प्रतिषेध

जहाँ किसी पदार्थ का निषेध प्रसिद्ध होते हुए भी पुनः अभिप्रायांतर से गर्भित निषेध किया जाय, वहाँ 'प्रतिषेध' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

तुम एक हि अघहरन, हौं, बहु अधमन-सिरताज।
द्विरद न जानहु, जाइगी, बरद! बिरुद की लाज॥

यहाँ किसी भक्त की भगवान् से व्यंग्योक्ति है। वह मनुष्य है, उसका द्विरद (गज) न होना प्रसिद्ध ही है; किंतु 'द्विरद न जानहु' वाक्य से "मैं गज से अधिक पापात्मा हूँ" इस अभिप्रायांतर से गर्भित पुनः निषेध किया है।

२ पुनः यथा—छप्पय।

पद पखारिबे चह्यौ जबहिं बैदर्भ-कुमारी।
तबहिं सकुचि द्विज कह्यौ नाथ! हम दीन भिखारी॥

अस आदर मम करहु नाथ! सो कहा मरम गुनि ?।
हम न होहिँ सुकदेव, ब्यास नहिं गर्ग कपिल मुनि ॥
नहिं भृगु नहिं नारद हुते, दुरबासा मत जानिए।
हम तो सुदामा रंक हैं, अजहुँ नाथ! पहिचानिए॥
—हलधरदास।

यहाँ भी यद्यपि सुदामा का मुनि शुकदेव आदि न होना प्रसिद्ध ही है, तथापि उसने श्रीकृष्ण और रुक्मिणी द्वारा अपना विशेष आदर होने की अयोग्यता के अभिप्राय से पुनः निषेध किया है।

(६८) विधि

जहाँ विधि-प्रसिद्ध (जिसका पहले ही विधान प्रसिद्ध है) पदार्थ का अभिप्रायांतर से गर्भित पुनः विधान किया जाय, वहाँ 'विधि' अलंकार होता है।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सुर-दुरलभ तनु लहि बृथा, खोइ रहे सब कोइ।
हरि भजि भव तरि जात जो, मनुज, मनुज सो होइ॥

यहाँ विधि-प्रसिद्ध 'मनुज' शब्द का हरि भजकर भव तरने के अभिप्रायांतर से गर्भित पुनर्विधान हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

जैसी पावस मैं सजै, ऐसी अब कछु नाहिँ।
केकी है केकी, करै, जब केका ऋतु माहिँ॥
—राजा रामसिंह (नरवलगढ़)।

यहाँ भी प्रसिद्ध 'केकी' (मयूर) शब्द का वर्षा-ऋतु में उसकी केका (वाणी) अधिक चित्ताकर्षक होने के अभिप्राय से फिर विधान किया गया है।

विधि-माला १ उदाहरण यथा—शार्दूलविक्रीडित।

या राका शशिशोभना गतघना सा यामिनी, यामिनी।
या सौन्दर्य्यगुणान्विता पतिरता सा कामिनी, कामिनी॥
या गोविन्दरसप्रमोदमधुरा सा माधुरी, माधुरी।
या लोकद्वयसाधिनी तनुभृतां सा चातुरी, चातुरी॥
—अज्ञात कवि।

यहाँ विधान-सिद्ध 'यामिनी' शब्द का "या राका शशिशोभना गतघना" विशेषण पदों से पूर्ण प्रकाशित होने के अभिप्रायांतर से गर्भित पुनर्विधान किया गया है। इसी प्रकार शेष तीनों चरणों में भी समझ लेना चाहिए। सब मिलाकर चार विधान हैं; अतः यह माला है।

(६६) हेतु

जहाँ हेतु (कारण) का कार्य-सहित वर्णन हो, वहाँ 'हेतु' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—

१ प्रथम हेतु

जिसमें कारण-कार्य का एक साथ वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

ललित-किसोरी ललन की, जुग जोरी के अंग।
सुचि रुचि तें सुमिरें, सकल, होत अमंगल भंग॥

यहाँ श्रीराधा-माधव के युगल-रूप के अंगों का स्मरण करना कारण एवं अमंगल भंग होना कार्य दोनों का साथ वर्णन हुआ है।

प्रथम हेतु-माला १ उदाहरण यथा—कवित्त।

दरस किए तें दुख दारिद दलत, पाँय,
परस किए तें पाप-पुंज हरि लेत है।
जल के चढ़ाएँ जम-जातना न पाएँ कभी,
चंदन चढ़ाएँ चित चौगुनो सचेत है॥
कहत 'कुमार' कुंद कुसुम कनीर कंज,
कनक चढ़ाएँ देत कनक निकेत है।
त्रिदल चढ़ाएँ तें त्रिलोचन त्रितापन कों,
त्रिगुनी त्रिबेनी की तरंगैं करि देत है॥

—शिवकुमार 'कुमार'।

यहाँ समस्त पद्य में शंकर के दर्शन करने आदि ६ कारणों और दुःख-दारिद्र्य के दलन आदि ६ कार्यों का वर्णन है; अतः यह माला है।

२ पुनः यथा—कवित्त।

पूरब प्रलै के नृत्य-तांडव के पेखिबे की,
इच्छा भै उमा के उर भव पै भनै नहीं।
जानि लागे नाचन नगन ह्वै मगन सिव,
ठाट ठाटैं ठीक-ठीक ठीक पै ठनै नहीं॥
ताकि-ताकि खंड-खंड ह्वैबो तारा-मंडल को,
त्र्यंबक तें तमकि त्रिसूल ह्व तनै नहीं।
धारत बनै न पग पुहुमी पै प्रलै पेखि,
ब्योम बीच बारन बगारत बनै नहीं॥

—पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'साहित्य-रत्न'।

यहाँ भी शंकर का पार्वती की इच्छा का ज्ञात होने आदि तीन कारणों एवं नृत्य करने आदि तीन कार्यों का वर्णन होने के कारण यह माला है।

सूचना—(१) प्रायः ग्रंथों में 'प्रथम हेतु' एवं पूर्वोक्त 'अक्रमातिशयोक्ति' के लक्षण समान प्रतीत होते हैं; किंतु 'अक्रम' शब्द के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ से ही स्पष्ट सिद्ध है कि वहाँ कारण और कार्य का पौर्वापर्य क्रम के विना एक साथ हो जाना वर्णित होता है; और यहाँ दोनों का वर्णन मात्र होता है।

(२) पूर्वोक्त 'काव्यलिंग' अलंकार में ज्ञापक कारण द्वारा कथितार्थ का समर्थन किया जाता है; किंतु यहाँ समर्थन नहीं, वरन् एक साथ वर्णन होता है। यही इनमें अंतर है।

२ द्वितीय हेतु

जिसमें कारण-कार्य की एकात्मता (अभिन्नता) का वर्णन हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सब्दादिक इंद्रिय-बिषय, बय तन मन धन धाम।
जोग भोग सरबस्व सुख, गोपिन के घनस्याम॥

यहाँ श्रीकृष्ण कारण एवं इंद्रिय-विषय आदि अनेक कार्यों की इस प्रकार एकता वर्णित हुई है कि गोपियों के श्रीकृष्ण ही सर्वस्व हैं।

२ पुनः यथा—दोहा।

श्रीबृंदाबन मधि लसै, नित-बय-नवल-किसोर।
गौर-स्याम अभिराम तनु, दंपति संपति मोर॥

—अलंकार-आशय।

यहाँ भी किसी भक्त द्वारा श्रीराधा-माधव कारण से संपत्ति कार्य की एकात्मता का वर्णन हुआ है।

३ पुनः यथा—दोहा ।

नैननि को आनंद है, जिय की जीवनि जानि ।
प्रगट दर्प कंदर्प को, तेरी मृदु मुसुकानि ॥
—मतिराम ।

यहाँ भी नायिका की मुस्कान (कारण) से नेत्रों का आनंद, प्राणों का आधार एवं काम का गर्व (कार्यों) की एकता का वर्णन हुआ है ।

(१००) प्रमाण

जहाँ किसी अर्थ का प्रमाण अर्थात् यथार्थ का अनुभव होना (अमुक पदार्थ ऐसा या इतना है) वर्णित हो, वहाँ 'प्रमाण' अलंकार होता है । इसके आठ भेद हैं—

१ प्रत्यक्ष-प्रमाण

जिसमें पाँच इंद्रियों और मन इन छहों में से किसी एक के, एक से अधिक के अथवा इन सबके विषय का यथार्थ अनुभव हो ।[१]

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

सुनि बल, प्रलय-पतंग है, अंबर चढ़यौ उतंग ।
सिंधु लाँघि, पुर जारि, सिय,-सुधि लायौ बजरंग ॥

यहाँ जांबवान् से अपने बल की प्रशंसा सुनकर श्रीहनुमानजी को श्रवणेंद्रिय के विषय का यथार्थ अनुभव होना वर्णित है ।

१ कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका और मन के विषय क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और संकल्प-विकल्प हैं ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

सखि ! नंद के द्वार सिँगार-समै सब गोप-कुमार खरे हितकै ।
वह सूरति ईठ निहारन कों सब दीठि लगाइ रहे चित दै ॥
पुनि खोलत ही पट, मोहन की छबि देखत ही इक बार सबै ।
चहुँ ओर तें ग्वार पुकारि उठे, ब्रज-दूलह नंद-किसोर की जै ॥

—अलंकार-आशय ।

यहाँ भी श्रीनंद-नंदन के शृंगार-दर्शन से गोप-मंडली द्वारा नेत्रों के विषय का प्रत्यक्ष-प्रमाण होना वर्णित है ।

२ अनुमान-प्रमाण

जिसमें किसी साधन[1] द्वारा किसी साध्य[2] पदार्थ का निश्चयात्मक अनुमान हो[3] ।

१ उदाहरण यथा—कवित्त ।

आसन जो देहुँ तो सुभासन है नंदी, दीप,
देत कोटि सूरज-समीप सकुचानो मैं ।
डमरू-निनाद ही तें प्रगटे समस्त सब्द,
न्यारे कहौ कौन कैसे बिरुद बखानो मैं ? ॥
सेस ससि गंगा से न आभूषन आन ठौर,
यातें एक और उपचार[4] अनुमानो मैं ।
दीनन दयाकै दै भए हो मल-हीन आपु,
देहुँ सोइ लेहु प्रभु ! पायक पुरानो मैं ॥

१ जिस वस्तु द्वारा सिद्ध किया जाय । २ जिस वस्तु को सिद्ध किया जाय । ३ जैसे—विद्युत् (साधन) के द्वारा वर्षा (साध्य) का ज्ञान होता है । ४ सामग्री ।

यहाँ उत्तरार्द्ध में "शंकर का मन-हीन होना" साध्य है, जिसका "उनका मन कृपया दीनों के प्रति 'दिया जाने" के साधन द्वारा भक्त ने यथार्थ अनुमान किया है।

२ पुनः यथा—दोहा।

सुनत पथिक-मुँह माह-निसि, लुएँ चलति उहिँ गाम।
बिन बूझे बिन ही सुने, जियति बिचारी बाम॥
—बिहारी।

यहाँ भी प्रोषित नायक ने अपने घर पर अपनी स्त्री के जीवित रहने के साध्यार्थ का उस ग्राम में माघ-मास की रात्रि के समय वियोगाग्नि से संतप्त उसके शरीर के स्पर्श द्वारा लूएँ चलने के साधन से निश्चय किया है।

३ उपमान-प्रमाण

जिसमें उपमान के सादृश्य से ही बिना देखे हुए उपमेय का निश्चय हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

सरद-सुधाकर सो सदा, पूरन-कला-निधान।
मुख मंजुल जाको लसत, सो राधिका सुजान॥

यहाँ श्रीराधा-मुख के उपमान 'शरद-सुधाकर' की समानता से ही श्रीराधारानी उपमेय का निर्णय होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—दोहा।

मन्मथ सम सुंदर लसै, रवि-सम तेज बिसाल।
सागर सम गंभीर है, सो दसरथ को लाल॥
—मतिराम।

यहाँ भी मन्मथ (काम) आदि उपमानों की समानता से विना देखे हुए श्रीरघुनाथजी उपमेय के प्रमाणित होने का वर्णन है ।

४ शब्द-प्रमाण

जिसमें शास्त्र अथवा महाजनों के वचन का प्रमाण वर्णित हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

इहिँ असार संसार मैं, सार चार कह ब्यास ।
गंग-सलिल सतसंग सिव, - सेवन कासी - बास ॥

यहाँ महर्षि वेद्व्यास-भगवान् के वचनों का प्रमाण वर्णित हुआ है ।

२ पुनः यथा—सवैया ।

संकर से मुनि जाहि रटैं, चतुरानन आनन चार तें गावैं ।
सो हिय नैंक हि आवत हीं, मति-मूढ़ महा 'रसखानि' कहावैं ॥
जापर देव अदेव भुजंगम, बारत प्रानन बार न लावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ को नाच नचावैं ॥
—रसखान ।

यहाँ भी श्रीकृष्ण के परम-ब्रह्म होने के कारण श्रीशंकर एवं ब्रह्माजी द्वारा इनके गुण गान करने का शब्द-प्रमाण वर्णित हुआ है ।

५ आत्म-तुष्टि-प्रमाण

जिसमें अपने अंतःकरण के विश्वास से किसी अर्थ का प्रमाण वर्णित हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

दृढ़ भरोस उर, इष्ट हर, अवसि हरहिं भव-भार ।
मैं अनन्य-आधार, वे, निरधारन-आधार ॥

यहाँ किसी भक्त का अपने इष्ट श्रीशंकर पर आत्मिक विश्वास होने के कारण जन्म-मरण को अवश्य निवृत्त करने के प्रमाण का वर्णन है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

मोहिं भरोसो जाउँगी, स्याम किसोरहिं ब्याहि ।
आली ! मो अँखियाँ नतरु, इती न रहती चाहि ॥
—भिखारीदास 'दास' ।

यहाँ भी श्रीवृषभानु-नंदिनी के श्रीनंद-किशोर से ब्याहे जाने का प्रमाण अपनी आत्मा के विश्वास पूर्वक वर्णित हुआ है ।

६ अर्थापत्ति-प्रमाण

जिसमें किसी अर्थ का प्रमाण अन्यार्थ के योग से वर्णित हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

पाँय न जाके दूत को, सब मिलि सके हटाइ ।
है ताको यह खेल, तोहि, जीति सियहिं लै जाइ ॥

यहाँ रावण के प्रति रानी मंदोदरी के कथन में—"श्रीरघुनाथजी तुमको जीतकर जानकीजी को अवश्य ले जायँगे" इस अर्थ को "उनके दूत (अगद) का भी पैर तुम सबसे नहीं हिलाया गया" इस अन्यार्थ के योग से प्रमाणित किया गया है ।

२ पुनः यथा—रोला छंद ।

कैसे हिंदी के कोउ सुद्ध सब्द लिखि लैहैं ? ।
अरबी-अच्छर बीच, लिखेहुँ पुनि किमि पढ़ि पैहैं ? ॥

निज भाषा को सब्द लिखो पढ़ि जात न जामैं।
पर-भाषा को कहौ पढ़ै कैसे कोउ तामैं ? ॥
—पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'।

यहाँ भी उत्तरार्द्ध में "अरबी-लिपि में अन्य भाषा के शब्द का न पढ़ा जाना" इस अर्थ का "अपनी भाषा (अरबी) का शब्द भी नहीं पढ़ा जा सकता" इस अन्यार्थ के योग से प्रमाणित होना वर्णित है।

३ पुनः यथा—रोला छंद।

नीच नीच थल सोह सृष्टि-क्रम हू यह लग भल।
ताल रहत जल-सरथ बड़ो अजगर परवत-तल ॥
रघु-कुल-रवि की नारि राम-माता गौरव बड़।
त्यहि सौं भो अस काम ? करत ना कोउ जीव हु जड़ ॥
—पं० शिवरत्न शुक्ल भरत-भक्ति)।

यहाँ भी वन में श्रीरघुनाथजी के प्रति कैकेयी के वचन में "कोई मूर्ख जीव भी ऐसा नहीं कर सकता" इस अन्यार्थ के द्वारा "रघु-कुल-रवि की धर्मपत्नी और राम की माता ऐसा अनुचित कार्य कभी नहीं कर सकती" इस अर्थ को प्रमाणित किया है।

अर्थापत्ति-प्रमाण-माला १ उदाहरण यथा—सवैया।

बालि बली न बच्यौ पर-खोरहि क्यों बचिहौ तुम आपनी खोरहि।
जा लगि छीर-समुद्र मथ्यौ कहि [illegible] ॥
श्रीरघुनाथ गनौ असमर्थ न देखि बिना रथ हाथिन घोरहि।
[illegible] संकर को जेहि सोऽब कहा तुव लंक न तोरहि ॥
— केशवदास।

यहाँ "स्वयं राम के अपराधी तुम कैसे बचोगे ?" इस अर्थ को "पर (सुग्रीव) का अपराधी बालि उनके द्वारा मारा गया" इस

अन्यार्थ के योग से प्रमाणित किया गया है। इसी प्रकार द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में भी यही अलंकार है; अतः माला है।

सूचना—पूर्वोक्त 'काव्यार्थापत्ति' अलंकार में भी एक अर्थ के द्वारा दूसरे अर्थ की सिद्धि होती है; किंतु वहाँ सिद्ध किया जानेवाला अर्थ वस्तुतः अकथित होता है और उसका कुछ शब्दों द्वारा केवल निर्देश कर दिया जाता है। जैसे—वहाँ के प्रथम उदाहरण में कर्म, भक्ति और ज्ञान का निर्देश मात्र है; पर यहाँ सिद्ध होनेवाला अर्थ स्पष्टतया वर्णित होता है। यथा—यहाँ के प्रथम उदाहरण में श्रीरघुनाथजी द्वारा रावण को जीतना स्पष्ट वर्णित है। यही इनमें अंतर है।

७ अनुपलब्धि-प्रमाण

जिसमें किसी अर्थ की अप्राप्ति में उसके अभाव का प्रमाण वर्णित हो।

१ उदाहरण यथा—सवैया।

करि नेह चले तजि गेह अबैं अकुलात हैं गात लगे जरने।
बिनु नीर न धीर धरै मछली जिमि नैनन नीर लग्यौ ढरने॥
यह रीति नहीं बिपरीत बड़ी करि प्रीति अनीति लगे करने।
कहा सोच करैं दुख-धौस भरैं, बिधि-लेख लिखे सो नहीं टरने॥

यहाँ अपने स्वामी के मन में प्रीति-रीति का अभाव होने का प्रमाण प्रोषित-पतिका नायिका द्वारा विधाता के लेख का अमिट होना वर्णित है।

२ पुनः यथा—चतुष्पदी छंद।

गुन-गन-प्रतिपालक रिपु-कुल-घालक बालक ते रनरंता।
दसरथ-नृप को सुत मेरो सोदर लवनासुर को हंता॥

कोऊ द्वै मुनि-सुत काक-पच्छ-जुत, सुनियत है तिन मारे।
यहि जगत-जाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे॥
—केशवदास।

यहाँ भी लव-कुश द्वारा शत्रुघ्न का मारा जाना सुनकर उसके न रहने में श्रीरघुनाथजी द्वारा "काल की घटनाओं का कुटिल होना" प्रमाण वर्णित हुआ है।

८ संभव-अलंकार

जिसमें किसी अर्थ के संभव[1] होने का प्रमाण वर्णित हो।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

मित्र राहु राकेस अरु, अरि दिनेस बुध होइ।
केतुहिं जग-हितकर करै, हरि जो चाहै सोइ॥

यहाँ राहु-चंद्रमा में मित्रता, सूर्य-बुध में शत्रुता तथा धूमकेतु (पुच्छल तारा) में जगत् का कल्याण करने की शक्ति होना हरि-इच्छा द्वारा संभव होने का प्रमाण वर्णित हुआ है।

२ पुनः यथा—दोहा।

ता कहुँ प्रभु! कछु अगम नहिं, जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभाव बड़वानलहिं, जारि सकइ खलु[2] तूल॥
—रामचरित-मानस।

यहाँ भी श्रीहनुमानजी के कथन में वाड़वाग्नि को रूई द्वारा जलाए जाने की संभवता श्रीरघुनाथजी के प्रताप से प्रमाणित की गई है।

---

१ यहाँ 'संभव' शब्द से कथितार्थ का अवश्य सिद्ध हो जाना अभिप्रेत नहीं है; वरन् संभावितार्थ के वर्णन से तात्पर्य है। २ निश्चय।

सूचना—ईश्वरादि का निर्णय करने के लिये प्रमाण माने गए हैं, वैशेषिक-शास्त्रकार 'कणाद' मुनि ने एवं बौद्ध-मतावलंबियों ने उक्त आठों भेदों में से प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण माने हैं, सांख्य-शास्त्र में भगवान् कपिल मुनि ने प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीन प्रमाण माने हैं, न्याय-शास्त्रकार महर्षि गौतम ने प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान चार माने हैं, मीमांसा-शास्त्रकार 'एकदेशी प्रभाकर' ने प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान और अर्थापत्ति पाँच माने हैं तथा मीमांसकभट्ट एवं वेदांत-शास्त्र के भाष्यकारों में से अद्वैतवादियों ने प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि छः प्रमाण माने हैं।

भगवान् वेदव्यासादि ने पुराणों में प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, संभव और ऐतिह्य आठ प्रमाण माने हैं। महाराज भोज ने भी 'सरस्वती-कंठाभरण' ग्रंथ में उक्त आठों का उल्लेख किया है। अनुमान होता है कि इसी आधार पर कुवलयानंदकार अप्पय दीक्षित एवं कई भाषा-ग्रंथकारों ने भी आठों का ग्रहण किया है।

यद्यपि चार्वाक (नास्तिक) लोग एक प्रत्यक्ष को ही मानते हैं; और कविराजा मुरारिदान ने 'प्रमाण' अलंकार सर्वथा नहीं माना, तथापि हमारे विचार से आठों ही मानने योग्य हैं।

प्रायः ग्रंथों में 'प्रमाण' अलंकार का अष्टम भेद 'ऐतिह्य' लिखा है; किंतु उसमें 'लोकोक्ति' के अतिरिक्त कुछ भी विशेषता नहीं ज्ञात होती; अतः हमने उसके स्थान पर 'आत्म-तुष्टि' को रखा है। कुछ अन्य अलंकार-ग्रंथों में भी इसका उल्लेख है।

उभयालंकार

कभी-कभी काव्य में एक ही स्थल (छंद या वाक्य आदि) में एक से अधिक अलंकारों का मिश्रण या संयोग देखने में आता है, उसे 'उभयालंकार' कहते हैं। इसके 'संसृष्टि' और 'संकर' ये दो प्रकार माने गए हैं—

(१) संसृष्टि

जहाँ एक से अधिक अलंकार एक ही स्थान पर "तिल-तंडुल-न्याय"[1] से स्थित रहते हुए एक दूसरे की अपेक्षा के विना, स्वतंत्र रूप से भिन्न-भिन्न भान होते हों, वहाँ 'संसृष्टि' होती है। इसके तीन भेद हैं—

१ शब्दालंकार-संसृष्टि

जिसमें केवल 'शब्दालंकार' मिले हुए हों।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

पादप-लतान हू को जीवन-अधार-धार,
पोषे निज वोरै आप माहिं कबहूँ नहीं।
बार[2] कृषिकार जो सँवार बार-बार करैं,
वे ही उन खेतन को खाहिं कबहूँ नहीं॥

---

१ जैसे—एक पात्र में तिल एवं चावल मिलाए जाने पर भी अपने-अपने आकार से पृथक्-पृथक् प्रतीत होते रहते हैं।

२ बाड़, खेत के चारों ओर रक्षा के लिये काँटेदार झाड़ियों की दीवार सी बनाई जाती है।

देख्यौ करैं राम के पवित्र चित्र औ चरित्र,
याद मरयाद जासौं जाहिं कबहूँ नहीं।
छत्र-पति छत्रिन की छत्र-छाँह माहिं रहैं,
तिनकी हरैं ते छत्र-छाँह कबहूँ नहीं ॥※

यहाँ छः शब्दालंकार पृथक्-पृथक् प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं—(१) श्लेष—'जीवन' का अर्थ जिंदगी और जल एवं 'आप' का अर्थ स्वयं और जल होने के कारण दो श्लेष हैं। (२) यमक—'अधार धार' में 'धार' का और 'याद मरयाद' में 'याद' का इस प्रकार दो यमक हैं। (३) वृत्ति अनुप्रास—"बार कृषिकार जो सँवार" में एवं "पवित्र चित्र औ चरित्र" में। (४) वीप्सा—'बार-बार' में। (५) छेकानुप्रास—'खेतन कों खाहिं', 'जासौं जाहिं' और 'छत्र-पति छत्रिन' में। (६) लाटानुप्रास—'छत्र-छाँह' का।

२ पुनः यथा—दोहा।

चलिय चखनि पथ पूत करि, हरैं-हरैं धरि पाय।
चाहे मत ही चल, चलत, जहँ-तहँ जीव-निकाय ॥

यहाँ भी चकार और पकार के 'छेकानुप्रास', 'हरैं-हरैं' शब्दों से 'वीप्सा' और 'चल' शब्द का 'लाट' ये तीनों शब्दालंकार भिन्न-भिन्न प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं।

२ अर्थालंकार-संसृष्टि

जिसमें केवल 'अर्थालंकार' मिले हुए हों।

※ कुछ दिन हुए, महाराणा-उदयपुर ने अग्रवाल-जाति के दुलहे पर छत्र फिरने का परंपरा-प्राप्त अधिकार छीनने का विचार किया था, जिसके विरोध में उनका ध्यान आकृष्ट करने के लिये यह पद्य बनाया गया था।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

योगिन के अभिमान नहिं, नहिं सतीन के दीठ ।
द्रव्य उदारन के नहीं, नहिं बीरन के पीठ ॥

यहाँ चार जगह 'नहीं' क्रिया-शब्द होने में 'पदार्थावृत्ति-दीपक' और प्रथम चरण को छोड़कर शेष तीनों में तीन 'प्रथम पर्यायोक्तियाँ' होने के कारण 'पर्यायोक्ति' की माला है । ये दोनों अर्थालंकार अपने-अपने रूप से भिन्न-भिन्न भान होते हैं; अतः अर्थालंकार-संसृष्टि है ।

२ पुनः यथा—दोहा ।

कष्ट दियौ प्रहलाद कों, मर्यौ दनुज अघ-खान ।
सर्बनास करि देत है, साधुन को अपमान ॥

यहाँ भी विशेष का सामान्य से समर्थन होने में 'प्रथम अर्थांतरन्यास' और दनुज (हिरण्यकशिपु) का साभिप्राय विशेषण 'अघ-खान' होने में 'परिकर' है । ये दो अर्थालंकार पृथक्-पृथक् स्पष्ट दिखाई देते हैं ।

३ शब्दार्थालंकार-संसृष्टि

जिसमें शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों मिले हुए हों ।

१ उदाहरण यथा—दोहा ।

कटत करम, प्राकृत भरम, दुरित छूटत दुख-दान ।
मिटत जनम-जम-जनित भय, हरि-चरनन के ध्यान ॥

यहाँ हरि-चरणों का ध्यान करना कारण और कर्मों का कटना आदि कार्य वर्णित होने में 'प्रथम हेतु' (अर्थालंकार) और दकार

एवं जकार की समता के 'वृत्ति अनुप्रास' (शब्दालंकार), दोनों प्रकार के अलंकार भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, अतः शब्दार्थालंकारसंसृष्टि है ।

२ पुनः यथा—पद ।

चित जब राम-चरन अनुरागै ।
तरुनि-तनय-तन-धन-मय-मायिक,-जगत-स्वप्न तें जागै ।
गरुड़ ज्ञान-हित मान त्यागि नित, मानत गुरु करि कागै ॥
भक्ति-बिवेक-बिकास होत हिय, बिषय-बासना भागै ।
बिषय-विषम-बिष-बलित-लता मैं, अमल अमिय-फल लागै ॥

यहाँ भी प्रथम अंतरे में 'रूपक' अंतिम अंतरे में 'पंचम बिभावना' ये दो अर्थालंकार हैं । 'छेकानुप्रास' चारों अंतरों में, यमक 'तन' शब्द का और बकार का 'वृत्ति अनुप्रास' अंतिम अंतरे में ये शब्दालंकार हैं । ये सब भिन्न-भिन्न भान होते हैं ।

---

(२) संकर

जहाँ एक से अधिक अलंकार क्षीर-नीर-न्याय[१], से मिले हुए हों, वहाँ 'संकर' होता है । इसके तीन भेद हैं—

१ अंगांगी-भाव-संकर

जिसमें बीज-वृक्ष-न्याय[२] द्वारा एक अलंकार अंग-भाव से और दूसरा अंगी-भाव से वर्णित हो ।

---

१ जैसे दूध और पानी मिल जाने से उनकी पृथक्ता नहीं ज्ञात होती ।
२ अन्योन्याश्रित अर्थात् अंग के द्वारा अंगी की सिद्धि और अंगी से अंग का उपकार हो ।

१ उदाहरण यथा—दोहा।

बचन-सुधा मुख श्रवत इत, कोकिल-कंठ लजात।
होत बिरह-बिष-बस अधिक, उत अलि! स्यामल गात॥

यहाँ 'बचन-सुधा' एवं 'बिरह-बिष' 'रूपक' अंग द्वारा अमृत से विष के वश होना' 'विरोध' अंगी सिद्ध हुआ है; और 'विरोध' ही 'रूपक' में अत्यंत चमत्कृति का कारण है; अतः इनके परस्पर में अंगांगी-भाव है।

अंगांगी-भाव-संकर-माला १ उदाहरण यथा—दोहा।

बदन-सुधाधर श्रवत तव, सबिष बिसिख से बैन।
कढ़त कमल-दल-जीह तें, बचन कठैठे पैन॥

यहाँ 'बदन-सुधाधर' रूपक अंग से पूर्वार्द्धगत पंचम विभावना अंगी और 'कमल-दल-जीह' लुप्तोपमा अंग से उत्तरार्द्धगत पंचम विभावना अंगी सिद्ध हुई है; अतः माला है।

२ संदेह-संकर

जिसमें एक से अधिक अलंकारों की एक स्थल पर संदेहात्मक[1] स्थिति हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त।

"कैसे पिय पाओं अंग अंगनि मिलाओं" ऐसे,
बैठी मिलिबे के ही बिचारै उपचार है।
अंग-अरबिंद-गुन बरनै, पिया के ध्यान,
भूले खान-पान, भार भासत सिँगार है॥

---

[1] किसी एक के सिद्ध होने में संदेह हो।

ऐसी अकुलानी जाकी जानी हू न जाति आनी,
रोवै हँसि धावै ना सुहावै घर-बार है।
दीरघ उसास नैन नीर, प्रतिमा सी भई,
दसम दसा न कहौं नीरस अपार है॥

यहाँ विरहिणी नायिका की दसों दशाओंके वर्णन में "अंग-अरविंद" पद में रूपक और उपमा, इन दोनों अलंकारों में से किसी एक की सिद्धि होने में संदेह है; अतः 'संदेह-संकर' है।

२ पुनः यथा—सवैया।

डील बड़ो सबतें बल कोऽरु, बड़ाई बड़ी जग माँझ करी है।
फौज-सिँगार है तेज अपार, झरै मद सावन की सी झरी है॥
भूपति के हियरा मैं बसै नित, संपति सागर की सिगरी है।
डारत धूरि रहैं सिर पै सु कहा गजराज! कुटेव परी है॥
—अलंकार-आशय।

यहाँ भी यह संदेह होता है कि प्रस्तुत हाथी के वर्णन में समान विशेषणों की सत्ता से केवल एक लांछन-युक्त किसी सर्वगुण-संपन्न महापुरुष के अप्रस्तुत वृत्तांत की प्रतीति होने में 'समासोक्ति' है? अथवा केवल एक लांछन-युक्त किसी सर्वगुण-संपन्न महापुरुष प्रस्तुत को सूचित कराने के लिये अप्रस्तुत हाथी का वृत्तांत वर्णित करने से 'अन्योक्ति' (अप्रस्तुत-प्रशंसा का एक भेद) है? इस प्रकार दोनों अलंकारों की स्थिति संदेहात्मक है।

सूचना—हमारे विचार से संदेह-संकर अर्थालंकारों में ही होता है, शब्दालंकारों में नहीं, क्योंकि शब्दों का चमत्कार बहुत स्पष्ट होता है, अतः वहाँ पर संदेह नहीं हो सकता।

३ एकवाचकानुप्रवेश-संकर

जिसमें नृसिंह-न्याय[1] से एक ही पद वा वचन में शब्दार्थालंकार दोनों की स्थिति हो।

१ उदाहरण यथा—कवित्त—चरण।

पाँचों इंद्रियन के औ मन के अनेक, एक,
नैनन नलिन-नैनी नाटक नचावै री।❀

यहाँ 'नलिन-नैनी' एक ही पद में 'लुप्तोपमा' अर्थालंकार और 'अनुप्रास' शब्दालंकार, दोनों की स्थिति है; अतः एकवाचकानुप्रवेश-संकर है।

२ पुनः यथा—दोहा।

श्रीवृंदावन बसि बढ़ै, उर अनन्य अनुराग।
करिय कृपा मो पर, मिलै, प्रभु - पद - पदम - पराग॥

यहाँ भी चतुर्थ चरण में अर्थालंकार 'परंपरित रूपक' और शब्दालंकार 'वृत्ति अनुप्रास' तथा 'पद' शब्द का 'यमक', इस प्रकार इन तीन अलंकारों की स्थिति है।

---

१ एक शरीर में मनुष्य एवं सिंह की स्थिति के समान।

❀ पूरा पद्य 'कारक-दीपक' में देखिए।

अलंकारों के विषय

प्रायः अलंकारों के लिये कुछ विशिष्ट विषय उपयुक्त समझे गए हैं। यद्यपि इस बात का कोई निराकरण नहीं किया जा सकता कि अमुक अलंकार में अनिवार्य रूप से कोई अमुक विषय ही होना चाहिए और न निश्चित रूप से यही कहा जा सकता है कि सदा प्रत्येक अलंकार का कोई विशिष्ट विषय होता ही है, तथापि पाठकों की जानकारी के लिये हम नीचे एक संक्षिप्त सूची देते हैं, जिससे यह पता चल जायगा कि इन अलंकारों में से किस अलंकार का मुख्यतः कौन सा विषय होता है अथवा होना चाहिए।

(१) 'रूपक' में गौणी-सारोपा-लक्षणा होती है।

(२) 'परिणाम' में गौणी-सारोपा-लक्षणा होती है।

(३) 'रूपकातिशयोक्ति' में गौणी-साध्यवसाना-लक्षणा होती है।

(४) 'निदर्शना' के द्वितीय भेद में सारोपा-लक्षणा होती है।

(५) 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' में साध्यवसाना-लक्षणा होती है।

(६) 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' के कारण-निबंधना भेद द्वारा प्रायः विरह-निवेदन होता है।

(७) 'आक्षेप' के तृतीय भेद द्वारा प्रायः प्रवत्स्यत्भर्तृका नायिका का वर्णन होता है।

(८) 'विभावना' के द्वितीय भेद में प्रायः विच्छित्ति-हाव होता है।

(९) 'विशेषोक्ति' द्वारा प्रायः गुरुमान का वर्णन होता है।

(१०) 'असंगति' के द्वितीय भेद में प्रायः विभ्रम-हाव होता है।

(११) 'समुच्चय' के प्रथम भेद में प्रायः किलकिंचित्-हाव होता है।

(१२) 'ललित' में साध्यवसाना-लक्षणा होती है।

(१३) 'विषादन' द्वारा प्रायः अनुशयाना नायिका का वर्णन होता है।

(१४) 'उत्तर-उन्नीत-प्रश्न' द्वारा प्रायः स्वयं-दूती नायिका का वर्णन होता है।

(१५) 'सूक्ष्म' में प्रायः बोधक-हाव और क्रिया-विदग्धा नायिका का वर्णन होता है।

(१६) 'पिहित' द्वारा प्रायः सादरा-धीरा नायिका का वर्णन होता है।

(१७) 'व्याजोक्ति' द्वारा प्रायः गुप्ता नायिका का वर्णन होता है।

(१८) 'गूढोक्ति' द्वारा प्रायः वचन-विदग्धा नायिका का वर्णन होता है।

(१९) 'युक्ति' में प्रायः मोट्टायित-हाव होता है।

(२०) 'स्वभावोक्ति' में प्रायः मौग्ध्य-हाव होता है।

(२१) 'अत्युक्ति' के शौर्य, औदार्य और कीर्ति इन तीन भेदों में प्रायः राज-रति-भाव-ध्वनि होती है।

(२२) 'हेतु' के द्वितीय भेद में गौणी-सारोपा-लक्षणा होती है।

(२३) 'प्रत्यक्ष-प्रमाण' द्वारा प्रायः साक्षात्-दर्शन का वर्णन होता है।

(२४) 'अनुमान-प्रमाण' द्वारा प्रायः स्वप्न-दर्शन या लक्षिता नायिका का वर्णन होता है।

(२५) 'उपमान-प्रमाण' द्वारा प्रायः चित्र-दर्शन का वर्णन होता है।

(२६) 'शब्द-प्रमाण' द्वारा प्रायः श्रवण-दर्शन का वर्णन होता है।

(२७) 'अनुपलब्धि - प्रमाण' द्वारा प्रायः अज्ञात-यौवना नायिका का वर्णन होता है।

ग्रंथ-निर्माण-समय

सवैया।

सर सिद्धि निधी ससि बिक्रम-संबत[1]
माघ को पाछलो पाख सुहायौ।
गुरुवार बसंत की पंचमी भारती
के अवतार को बासर[2] भायौ॥
नृप अग्र के बंसज केडिया अर्जुन-
दास ने काव्य-कला-गुन गायौ।
मन-भावन भाव-नवीन-बिभूषित
"भारती-भूषन" ग्रंथ बनायौ॥

१ संवत् १९८५। २ श्रीसरस्वती का जन्म-दिन।

अलंकारों की भिन्नता-सूचक सूचनाओं की सूची

—:०:—

सूचना—इस सूची में ३७५ उदाहृत-पद्य हैं, जिनके कवियों या ग्रंथों के १११ नाम दिए गए हैं। इनमें १८ पद्यों के कवि अज्ञात हैं और 'अलंकार-आशय' के ३१ पद्यों के भी भिन्न-भिन्न कवि हो सकते हैं। इस प्रकार कुल संख्या १६० हुई; पर एक ही कवि के कई पद्य भी हो सकते हैं, अतः मोटे हिसाब से कह सकते हैं कि १२५ कवियों के उदाहरण इस ग्रंथ में आए हैं।

सहायक ग्रंथों की सूची

संस्कृत-ग्रंथ

(१) अग्निपुराण—भगवान् वेदव्यास ।

(२) अमरकोष—अमरसिंह ।

(३) अलंकार-तिलक—भानुदत्त ।

(४) अलंकार-रत्नाकर—शोभाकर ।

(५) अलंकार-शेखर—केशव मिश्र ।

(६) अलंकार-सर्वस्व—राजानक रुय्यक ।

(७) अलंकारोदाहरण—यशस्क ।

(८) कवि-कंठाभरण—क्षेमेंद्र ।

(९) काव्य-प्रकाश—मम्मटाचार्य ।

(१०) काव्यादर्श—दंडी ।

(११) काव्यालंकार—रुद्रट ।

(१२) काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति—वामनाचार्य ।

(१३) कुवलयानंद—अप्पय दीक्षित ।

(१४) चंद्रालोक—पीयूषवर्षी जयदेव ।

(१५) ध्वन्यालोक—आनंदवर्द्धनाचार्य ।

(१६) नाट्य-शास्त्र—भगवान् भरताचार्य ।

(१७) न्याय-विंदु—भासर्वज्ञ ।

(१८) न्याय-शास्त्र—महर्षि गौतम ।

(१९) पिंगल-सूत्र—नागराज पिंगलाचार्य ।

(२०) बृहद्वाचस्पत्यकोष—तर्कवाचस्पति तारानाथ ।

(२१) मनुस्मृति—भगवान् मनु ।

(२२) महाभारत—भगवान् वेदव्यास ।

(२३) महाभाष्य—भगवान् पतंजलि ।
(२४) मीमांसा-वार्तिक—कुमारिल भट्ट ।
(२५) मीमांसा-शास्त्र—अन्यतम आचार्य प्रभाकर ।
(२६) मेदिनीकोष—मेदिनीकर ।
(२७) रस-गंगाधर—पंडितराज जगन्नाथ त्रिशूली ।
(२८) रामरक्षा-स्तोत्र—बुधकौशिक ऋषि ।
(२९) रामस्तवराज—भगवान् सनत्कुमार ।
(३०) वाक्यपदीय ब्रह्मकांड—महाराज भर्तृहरि ।
(३१) वाग्भटालंकार—वाग्भट ।
(३२) वेदांत-परिभाषा—व्येंकटाध्वरि ।
(३३) वैशेषिक-शास्त्र—महर्षि कणाद ।
(३४) श्रीमद्भगवद्गीता—भगवान् वेदव्यास ।
(३५) श्रीमद्भागवत—भगवान् वेदव्यास ।
(३६) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—आदिकवि वाल्मीकि ।
(३७) श्रीशुक्लयजुर्वेद-संहिता—
(३८) सरस्वती-कंठाभरण—भोजराज ।
(३९) सर्वदर्शन-संग्रह—सायण माधव ।
(४०) सांख्य-शास्त्र—कपिल मुनि ।
(४१) साहित्य-दर्पण—विश्वनाथ ।
(४२) साहित्य-सार—अच्युतराय ।

हिंदी-ग्रंथ

(१) अलंकार-आशय—उत्तमचंद भंडारी ।
(२) अलंकार-दर्पण—राजा रामसिंह (नरवलगढ़) ।
(३) अलंकार-प्रकाश—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ।
(४) अलंकार-मंजूषा—लाला भगवानदीन 'दीन' ।

(५) कविता-कौमुदी (प्रथम और द्वितीय भाग)—पं० रामनरेश त्रिपाठी ।
(६) कविप्रिया—केशवदास ।
(७) काव्य-निर्णय—भिखारीदास ।
(८) काव्य-प्रभाकर—बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ।
(९) चित्र-चंद्रिका—काशिराज ।
(१०) जसवंत-जसोभूषण—कविराजा मुरारिदान ।
(११) तर्क-शास्त्र—बाबू गुलाबराय एम्० ए० ।
(१२) नवीन पद्य-संग्रह—पं० भगवतीप्रसाद बाजपेयी ।
(१३) भाषा-भूषण—राजा जसवंतसिंह ।
(१४) रसिक-मोहन—रघुनाथ ।
(१५) रामचरित-मानस—गोस्वामी तुलसीदास ।
(१६) रामचंद्र-भूषण—लछिराम ।
(१७) ललितललाम—मतिराम ।
(१८) लाल-चंद्रिका—लल्लूलाल ।
(१९) शिवराज-भूषण—भूषण ।
(२०) शिवसिंह-सरोज—शिवसिंह सेंगर ।
(२१) साहित्य-प्रभाकर—पं० रामशंकर त्रिपाठी ।
(२२) साहित्य-लहरी—महात्मा सूरदास ।
(२३) हिंदी-अलंकार-प्रबोध—अध्यापक रामरत्न ।
(२४) हिंदी-शब्द-सागर—काशी नागरी-प्रचारिणी सभा ।

सम्मतियाँ

संस्कृत में—

(१)

सर्वतंत्र-स्वतंत्र, साहित्यदर्शनाचार्य, दार्शनिकसार्वभौम, न्यायरत्न, तर्करत्न, गोस्वामी श्रीदामोदरलाल शास्त्रीजी की सम्मति—

क्षेमास्पदेन मारवरत्ननगराभिजनेन केडियोपाख्येन श्रीमता श्रेष्ठि श्रीमदर्जुनदासगुप्तेन हिन्दीभाषायां निर्मितं साहित्याङ्गालंकारनिरूपण-प्रवणं भारतीभूषणाभिधं निबन्धं बहुत्रालोच्य; निबन्धुः प्रकृतविषयकं वैचक्षण्यं प्रतीय; प्रमाय चोपलभ्यमानेषूक्तभाषायामीदृशपुस्तकेष्वगतार्थतां; समवधार्य चालंकृतितत्त्वं बुभुत्सूनां फलेग्रहितामितो; गभीरवस्तूपपादनापरिब्रढिम्नः संस्कृतेतरभाषासु नैसर्गिकत्वेनातादृशतायामपि नेह कर्तुरादीनक्लेशस्याप्युन्मेषः प्रत्युत वस्तुगत्या निर्मातुरलंकर्मीणतया बाढं प्रसाद्यमानमानसः [illegible] संमदं व्यनक्ति कार्यामिति, शम् ।

आषाढसिताष्टम्याम् संं० १९८७ } गोस्वामी दामोदर शास्त्री ।

(२)

महामहोपाध्याय व्याकरणाचार्य पं० सीताराम शास्त्री, लेक्चरर और प्रोफेसर कलकत्ता-विश्वविद्यालय की सम्मति—

श्रीमता सेठअर्जुनदासकेडियामहोदयेन लिखितं 'भारती-भूषण' नामकं हिन्दीभाषायामलंकारलक्षणोदाहरणप्रदर्शकं पुस्तकं दृष्टं, बाला-

किकापरीक्षान्यायेनापातत: पुस्तकमिदं परीक्षितं ततो विज्ञायते प्रकृतं पुस्तकं हिन्दीभाषा, ध्येतॄणामतीवोपकारकमनायासतोऽलङ्कारज्ञानसंपादकं सर्वेषामतीवोपकारकं स्यादिति विश्वस्यते ।

कलिकाता
६ मार्च १९३० } श्रीसीतारामशास्त्रिणः ।

अंग्रेजी में—

(३)

महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, एम्० ए०, डी० लिट्०, एल्-एल्० डी०, वाइस चांसलर प्रयाग-विश्वविद्यालय की सम्मति—

I have looked into 'Bharati Bhusana' by Arjundas Kedia. The book appears to have been carefully done and presents before the Hindi reader a fairly correct idea of the principal figures of speech. The book deserves to be carefully studied.

Allahabad
16 April 1930 } Ganganatha Jha
Vice-chancellor,
University of Allahabad

हिंदी-अनुवाद—

मैंने श्रीयुत अर्जुनदास केडिया-कृत 'भारती-भूषण' नामक ग्रंथ ध्यान से देखा। पुस्तक विचार-पूर्वक लिखी गई है और हिंदी-पाठकों के समक्ष मुख्य-मुख्य अलंकारों का स्पष्ट भाव उपस्थित करती है। पुस्तक मनन करने योग्य है।

इलाहाबाद
ता० १६ अप्रैल १९३० } गंगानाथ झा।
वाइस चांसलर प्रयाग-विश्वविद्यालय

हिंदी में—

(४)

आचार्य आनंदशंकर बापूभाई ध्रुवजी प्रोवाइस चांसलर हिंदू-विश्वविद्यालय काशी की सम्मति—

सेठ अर्जुनदास केडिया-विरचित 'भारती-भूषण' नामक ग्रंथ पढ़कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। आपने अलंकार-शास्त्र में अच्छा परिश्रम किया है और इस ग्रंथ में इसका फल सम्यक्तया प्रतीत होता है। इस शास्त्र के इतिहास के प्राय: अंतिम समय की अलंकारावलि लेकर प्रत्येक अलंकार का स्वरूप अल्पाक्षर में, किंतु विशद रूप से, बतलाया गया है और उदाहरण प्राचीन, अर्वाचीन और स्वरचित हिंदी-साहित्य से लिए गए हैं। हम इतना चाहते हैं कि इस ग्रंथ की प्रस्तावना में काव्य-लक्षण, काव्य में अलंकार-शास्त्र का स्थान, अलंकार-गुण इत्यादि के भेद और अभेद के विषय में पुराने और नवीन आचार्यों के मत, अलंकार सामान्य की और तत्तद् अलंकार विशेष की रमणीयता का बीज—इत्यादि विचारणीय विषयों का विवेचन किया जाय।

आषाढ कृष्णा एकादशी
सं० १९८७

आनंदशंकर बापूभाई ध्रुव।
प्रोवाइस चांसलर
काशी हिंदू-विश्वविद्यालय

(५)

आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, भूतपूर्व संपादक 'सरस्वती' की सम्मति—

पुस्तक देखने से मालूम होता है कि इसके प्रणेता केडियाजी बड़े गहरे अलंकार-शास्त्री हैं। लक्षण सीधी-सादी भाषा में सबके समझने योग्य

लिखा है। उदाहरण भी चुन-चुनकर समर्पक और सरस उद्धृत किए हैं। यह इस पुस्तक का सबसे बड़ा गुण है।

दौलतपुर
११ अप्रैल १६३० } महावीरप्रसाद द्विवेदी।

(६)

काव्यतीर्थ पं० सकलनारायण शर्मा, प्रोफेसर संस्कृत-कालेज-कलकत्ता, लेक्चरर कलकत्ता-विश्वविद्यालय एवं संपादक 'शिक्षा' की सम्मति—

हमने 'भारती-भूषण' पढ़कर बड़ी प्रसन्नता प्राप्त की। इसमें अलंकार तथा उनके उदाहरण अत्यंत स्पष्टता से समझाए गए हैं। विशेष-विशेष स्थलों पर टिप्पणियाँ हैं। उनसे ग्रंथकार श्रीयुत सेठ अर्जुनदास केडियाजी की सहृदयता, विद्वत्ता तथा प्रतिभा का परिचय उपलब्ध होता है। यह ग्रंथ हिंदी की उच्च परीक्षाओं में पाठ्य रूप से आदर पाने के योग्य है। इधर के नवीन बने हुए ग्रंथों में इसे सर्वोत्तम कह सकते हैं। छपाई-सफाई मनोहर है।

आशुतोष बिल्डिंग,
कलकत्ता-युनिवर्सिटी
६ मार्च १६३० } सकलनारायण शर्मा।

(७)

साहित्याचार्य पं० शालग्राम शास्त्री की सम्मति—

श्रीयुत अर्जुनदासजी केडिया के बनाए 'भारती-भूषण' नामक हिंदी-अलंकार-ग्रंथ के कई स्थल हमें ग्रंथकार के सुयोग्य पुत्र श्रीशिवकुमारजी केडिया ने सुनाए और दो-एक हमने स्वयं भी देखे। हिंदी की नवीन मुद्रित जो पुस्तकें इस विषय की हमारे देखने में आई हैं, उन सबकी अपेक्षा हम

समझते हैं, केडियाजी की प्रस्तुत पुस्तक में अधिक परिश्रम किया गया है। हम आशा करते हैं कि हिंदी-जनता इसका समुचित आदर करेगी और ग्रंथकार के श्रम को सफल करेगी।

यह तो हम नहीं कहते कि अलंकार-संबंधी लक्षणों और उदाहरणों का विवेचन इसमें संस्कृत-ग्रंथों के समान परिष्कृत, परिमार्जित और तात्त्विक हुआ है, न हिंदी में वैसा अभी संभव ही है, परंतु जो कुछ है वह हिंदी की वर्तमान स्थिति को देखते हुए ग़नीमत है। घोर अंधकार में एक दीपक भी बड़े काम की चीज़ है और सैकड़ों जुगनुओं से बेहतर है। हम आशा करते हैं कि विद्या-विनय-संपन्न विचारशील केडिया महानुभाव यदि उचित समझेंगे तो यथा-समय इसमें और भी परिमार्जन करने का यत्न करेंगे।

लखनऊ
वैशाख शुक्ला ४, सं० १९८७ } शालग्राम।

(८)

सुप्रसिद्ध समालोचक पं० रामचंद्र शुक्ल, लेक्चरर हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी की सम्मति—

हिंदी के पुराने साहित्य में अलंकार के ग्रंथों की कमी नहीं है। पर वे ग्रंथ वास्तव में काव्य-ग्रंथ हैं, अलंकार-निरूपण के ग्रंथ नहीं। वे अधिकतर सरस पद्यों के निर्माण की दृष्टि से लिखे गए हैं, अलंकारों के स्वरूप-विवेचन की दृष्टि से नहीं। स्वरूप-विवेचन सम्यक् प्रकार से गद्य में ही हो सकता है; अतः हिंदी-गद्य के पूर्ण विकास के उपरांत जब से शास्त्रीय पद्धति से हिंदी-साहित्य की शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान गया तभी से अलंकार की ऐसी पुस्तकों के अभाव का अनुभव होने लगा जिनमें अलंकारों के स्वरूप और उनके सूक्ष्म भेद आदि स्वच्छ और

परिष्कृत भाषा में समझाए गए हों और उदाहरण भी पर्याप्त दिए गए हों। उक्त अभाव की पूर्ति के ध्यान से जो दो-एक पुस्तकें निकलीं वे दो ढंग की हुईं। कुछ में संस्कृत के प्रामाणिक ग्रंथों के आधार पर पर्याप्त लक्षण और स्वरूप-निर्णय का प्रयास दिखाई पड़ता है; पर हिंदी-कवियों के उदाहरणों की बहुत कमी है। जिनमें हिंदी के उदाहरणों की भरमार है उनमें स्वरूप-निर्णय और शास्त्रीय विवेचन का प्रायः अभाव सा है।

इस दशा में श्रीयुत् सेठ अर्जुनदासजी केडिया के इस नये अलंकार-ग्रंथ 'भारती-भूषण' को देख बड़ी प्रसन्नता हुई क्योंकि इसमें उक्त दोनों बातें साथ-साथ पाई जाती हैं—अलंकारों के स्वरूप तथा एक दूसरे से उनके सूक्ष्म भेद भी अच्छी तरह समझाए गए हैं और नये पुराने हिंदी-कवियों के रचित सरस और मनोहर उदाहरण भी प्रचुर परिमाण में रखे गए हैं। सारांश यह कि अलंकार की शिक्षा के लिये हिंदी में जैसा ग्रंथ होना चाहिए था यह वैसा ही हुआ है, इसमें कोई संदेह नहीं। सेठजी ने अपनी विज्ञता, श्रम, समय और धन का जो सुंदर उपयोग किया है इसके लिये वे हिंदी-प्रेमी मात्र के धन्यवाद के पात्र हैं। अलंकार-शास्त्र के अध्ययन के अभिलाषी तथा सरस काव्य के प्रेमी दोनों की पूर्ण तुष्टि इस पुस्तक से होगी, इसका हमें पूरा विश्वास है।

दुर्गाकुंड, काशी
२ अप्रैल, १९३०

रामचंद्र शुक्ल।

(६)

काव्य-मर्मज्ञ सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, प्रणेता 'अलंकार-प्रकाश' एवं 'काव्य-कल्पद्रुम' की सम्मति—

यों तो हिंदी-भाषा में बहुत से अलंकार-विषयक ग्रंथ प्राचीन एवं अर्वाचीन दृष्टिगत हो रहे हैं; किंतु प्राचीन ग्रंथों में तो प्रायः यह एक

बड़ी भारी त्रुटि है कि उनमें पद्य में लिखे हुए लक्षण और उदाहरणों को समझाने के लिये गद्य में कुछ भी स्पष्टता नहीं की गई है। फल यह हुआ है कि उन ग्रंथों से अलंकारों का यथार्थ स्वरूप समझने में बड़ी कठिनता उपस्थित होती है। अवश्य ही कुछ प्राचीन ग्रंथों पर टीकाएँ उपलब्ध हैं; पर उन टीकाओं ने मूल को और भी जटिल बना दिया है। किसी-किसी ग्रंथ के टीकाकार ने तो बड़ा ही दुःसाहस किया है, यहाँ तक कि साहित्य-विषय से स्वयं अनभिज्ञ होकर भी टीका लिखने की अनधिकार चेष्टा की है। खेद है कि ऐसे ग्रंथों से लाभ के स्थान पर पाठकों को हानि हो रही है। अस्तु।

अर्वाचीन ग्रंथ जो वर्तमान लेखकों के लिखे हुए हैं, उनके विषय में भी विवशतया यही कहना पड़ता है कि, वे ग्रंथ भी प्रायः अनधिकारियों द्वारा ही लिखे गए और लिखे जा रहे हैं। कुछ ग्रंथों की आलोचनाएँ इस क्षुद्र लेखक ने की हैं, जिनके द्वारा ज्ञात हो सकता है कि हिंदी-साहित्य में वर्तमान लेखकों द्वारा अलंकार-विषय की किस प्रकार शोचनीय छीछालेदर हो रही है। किंतु बड़े हर्ष का विषय है कि उपर्युक्त अवस्था के ठीक विपरीत हमारे मरुस्थलीय रत्ननगर के देदीप्यमान उज्वल रत्न कविवर सेठ अर्जुनदासजी केडिया ने 'भारती-भूषण' की स्व-रचना प्रकाशित की है। 'भारती-भूषण' वस्तुत: भारती-भूषण है। इसमें अलंकारों के लक्षण वार्तिक में देकर और पद्यात्मक उदाहरणों का लक्षण से समन्वय गद्य में लिखकर विषय को अच्छी प्रकार समझा दिया है। उदाहरण रूप में जो ग्रंथकर्ता की रमणीय कविता दी गई है, उसे पढ़कर सचमुच तत्काल राजपूताने के प्रसिद्ध महाकवि मिश्रण सूर्यमलजी और स्वामी गणेशपुरीजी आदि की परिमार्जित कविता का स्मरण हो आता है। बड़ा ही अपूर्व आनंद प्राप्त होता है। वस्तुत: आपकी कविता बड़ी उच्च श्रेणी की है। हाँ, इस ग्रंथ के विषय में भी यह कहना कि यह सर्वथा निर्दोष है, केवल पक्षपात समझा जायगा। बात यह है कि साहित्य-विषय

बड़ा गहन है। एक दूसरे आचार्यों के विभिन्न मतों के विवादों से व्याप्त है। संभव है कि आलोचकों को इसमें भी कुछ दोष प्रतीत हों; पर जहाँ तक हम ध्यान देते हैं इसकी रचना-शैली, काव्य-माधुर्य एवं विषय-विवेचना स्तुत्य और प्रणेता के साहित्य-विषयक ज्ञान के परिचायक हैं। आशा है यह ग्रंथ हिंदी-साहित्य-संसार में उपादेय समझा जायगा।

मथुरा
वैशाख कृष्णा १२, सं० १९८७ } कन्हैयालाल पोद्दार।

(१०)

सिद्धहस्त समालोचक पं० पद्मसिंह शर्मा, भूतपूर्व सभापति हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का पत्र—

प्रिय केडियाजी,

पुस्तक मुझे अच्छी मालूम हुई, परिश्रम और पांडित्य से लिखी गई है। निस्संदेह हिंदी में वर्तमान समय में अलंकार-विषय पर जितनी पुस्तकें अबतक निकली हैं, यह उन सबसे अच्छी है। मुझे आशा है इसका यथेष्ट प्रचार और आदर होगा। इसके लिये हिंदी-साहित्य आपका ऋणी रहेगा। 'भारती-भूषण' पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

काव्यकुटीर
नायकनगला, चाँदपुर (बिजनौर)
ता० २१ मई, १९३० } भवदीय—
पद्मसिंह शर्मा।

(११)

साहित्याचार्य लाला भगवानदीन 'दीन' लेक्चरर हिंदू-विश्वविद्यालय, एवं संस्थापक हिंदी-साहित्य-विद्यालय काशी की सम्मति—

श्रीयुत सेठ अर्जुनदासजी केडिया-कृत 'भारती-भूषण' नामक अलंकार-ग्रंथ मैंने मनोनिवेश-पूर्वक पढ़ा। ग्रंथ मुझे बहुत अच्छा जँचा।

लेखन-शैली से सेठजी की कुशलता स्पष्ट प्रकट है। गद्यमय परिभाषाएँ बहुत सोच-विचारकर लिखी गई हैं। उदाहरण देकर विवृत्ति-सहित परिभाषा के मर्म से मिलान दर्शाया गया है। उदाहरण प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियों के भी हैं और स्वयं सेठजी-कृत भी हैं। प्रसिद्ध और प्रामाणिक संस्कृत-ग्रंथों से पूरी सहायता ली गई है, जिससे प्रामाणिकता में संदेह नहीं रह जाता।

सेठजी ने जिस प्रकार तन, मन और धन तथा अपना भजन का अमूल्य समय लगाकर इस ग्रंथ को तैयार किया है, वैसी ही सुंदर सफलता भी उन्हें प्राप्त हुई है। यह ग्रंथ मुझे तो वर्तमान समय में प्रचलित ग्रंथों से अच्छा ही जँचता है। मैं आशा करता हूँ कि हिंदी-प्रेमी इसे अपनावेंगे। कालेजों के विद्यार्थीगण इस पुस्तक से अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

इस वृद्धावस्था में भी सेठजी हिंदी-साहित्य की श्रीवृद्धि कर रहे हैं, इस हेतु मैं उन्हें अनेक धन्यवाद देता हूँ।

साहित्य-भूषण कार्यालय, काशी
२३ मार्च, १९३० } भगवानदीन (दीन)।

(१२)

हास्यरसावतार पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, भूतपूर्व सभापति हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की सम्मति—

बीकानेर-रत्ननगर के रत्न, केडिया-कुल-कलाधर श्रीयुत सेठ अर्जुनदासजी केडिया-कृत 'भारती-भूषण' पुस्तक देखकर परम प्रसन्नता हुई। ऐसे समय में जब प्राचीन काव्यालंकार-शास्त्रों पर कुठाराघात हो रहा हो केडियाजी का कमर कस मैदान में आना सत्साहस का काम है। इसमें अलंकारों का सोदाहरण विशद वर्णन है। आवश्यकतानुसार यथा-स्थान टीका-टिप्पणियाँ भी बड़े मार्के की हैं। भाषा ऐसी सरल है कि सबकी

समझ में आ सकती है। प्रतिभापूर्ण विवेचन उनकी विद्वत्ता तथा गंभीर अध्ययन का परिचायक है। वास्तव में केडियाजी ने हिंदी-साहित्य के एक बड़े भारी अभाव की प्रशंसनीय पूर्ति की है। यह विद्यार्थियों के काम की वस्तु तथा पाठ्य-पुस्तक होने के योग्य है। ऐसी अच्छी और उपयोगी पुस्तक लिखने के लिये केडियाजी को बधाई है।

खैरा (मुंगेर)
वैशाख शुक्ला ३, सं० १९८७ } जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।

(१३)

कविवर पं० रामनरेश त्रिपाठी की सम्मति—

मैंने यह पुस्तक ध्यान से पढ़ी है। यह पुस्तक अलंकार-शास्त्र का अलंकार है। हिंदी में अबतक जितनी पुस्तकें इस विषय की निकली हैं, मैं उन सबसे इसे अधिक पूर्ण और उपयोगी मानता हूँ। हिंदी में जहाँ कहीं अलंकार-शास्त्र की शिक्षा दी जाती हो, सर्वत्र इस पुस्तक को उपयोग में लाने की सम्मति मैं देता हूँ। इससे विद्यार्थियों को बड़ा लाभ पहुँचेगा। श्रीसेठ अर्जुनदासजी केडिया ने ऐसी सर्वांग-सुंदर पुस्तक लिखकर हिंदी-साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की है। इसमें अलंकारों के जो उदाहरण दिए गए हैं वे बहुत ही सच्चे, सुरुचिपूर्ण और सरल हैं। उनकी जो व्याख्याएँ हैं, उनसे अलंकारों के समझने में बड़ी ही सहायता मिलती है। फुटनोट और सूचनाओं में सेठजी ने ऐसी बहुत सी नवीन बातें लिखकर पुस्तक की उपयोगिता और बढ़ा दी है, जो हिंदी के अन्य अलंकार-ग्रंथों में नहीं मिलतीं। इनसे लेखक के अलंकार-विषयक प्रचुर ज्ञान का प्रमाण तो मिलता ही है; साथ ही पुस्तक के पाठकों को कितनी ही नई बातें जानने को मिल जाती हैं। ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखने के लिये मैं सेठजी को बधाई देता हूँ।

हिंदी-मंदिर, प्रयाग
३० जनवरी, १९३० } रामनरेश त्रिपाठी।

शुद्धि-पत्र

भूमिका—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४	१२	दृष्टगत	दृष्टिगत

वक्तव्य—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२	१७	अथलंकार	अर्थालंकार
४५	९	तीन	चार
४५	१६	आवश्यतानुसार	आवश्यकतानुसार

मूल ग्रंथ—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९	२३	वृत्तांत	छंद, वृत्तांत
३७	१४	निबारै	निवारै
३९	७	हो तिहै	होति है
४०	१	बीप्सा	वीप्सा
४०	४	बीप्सा	वीप्सा
४०	१६	बीप्सा	वीप्सा
११०	२२	भ्रम	भ्रम
११२	३	फलानी	फनाली
११४	५	पंथी	पंथी !
११८	१९	निवृत्त	निवारण
११९	१६	मिलि	मृग
११९	२०	मनुष्यों	मृगों
१३०	१८	पाट-सुधाधर	पाट सुधाधर
१४४	१९	जानैं	जानै
१४६	१/२	गया ।	गया है ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५१	१४	धा-कन	सुधा-कन
१५४	२२	दोनों	दोनों के
२०२	२०	अर्थों के	अर्थों में से किसी के
२२१	७	द्रव्या	द्रव्यों
२२५	२	उनकी	उसकी
२३८	१०	दरसै	दरसैं
२३८	११	तरसै	तरसैं
२४५	२१	कर	करने
२४९	१४	आधार की	आधार को
२५१	२	भरम	मरम
२५४	१७	बृंद	बृंद
२६२	७	धरम	धर्म
२६३	१७	मोह	मोहिँ
२७३	११	उनका	उनको
३०२	११	सक्षात्	साक्षात्
३११	१८	जंसवंत	जसवंत
३१२	६	हाँ	जहाँ
३२४	२	संसग	संसर्ग
३४६	१८	चि	सुचि
३४९	१	भविक	भाविक
३६५	५	व्युत्पति	व्युत्पत्ति